।। श्री रामः शरणं मम्।।

।। श्री गुरुः शरणं मम्।।

।। ॐ हँ हनुमते नमः।।

।। सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।

प्रेमावतार त्रय–समन्वित

(श्री भरत जी, श्री लक्ष्मी निधि जी एवं श्रीराम हर्षणदास जी)

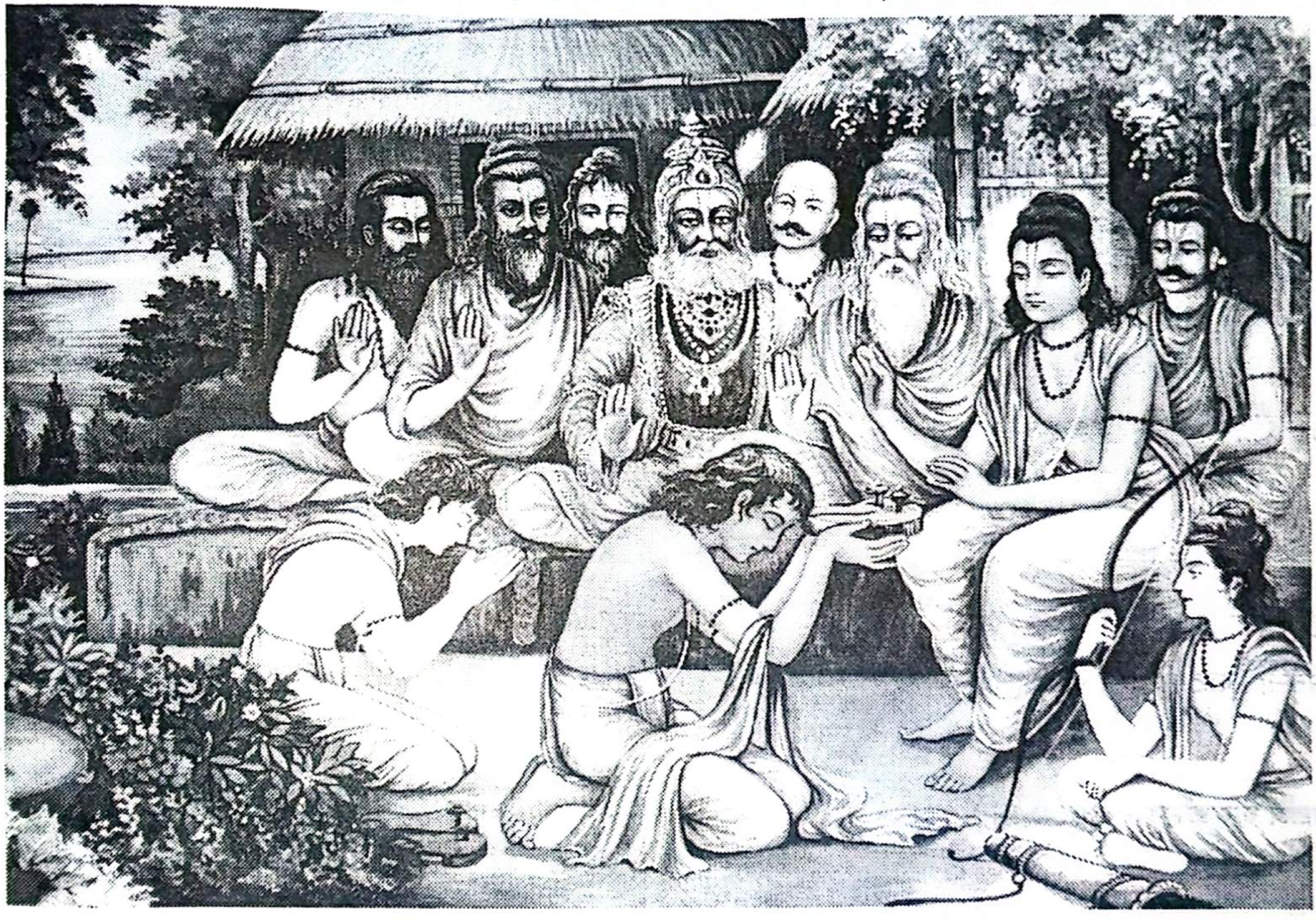

लेखक :–

स्वामी श्री रामहर्षण दासानुदास

कौशल किशोर दास (सुरेन्द्र रामायणी)

पुस्तक परिचय

प्रकाशक एवं वितरक -

श्रीराम हर्षण मंडल, नेह निंकुज, वामन नगर, उत्तरी पतेरी, पो. महदेवा, जिला-सतना (म.प्र.) पिन - 485 002

पुस्तक प्राप्त होने के अन्य पते -

1. श्री रुद्र सिंह यादव सचिव मानस-मित्र संस्थान, मु. पो. देवेन्द्र नगर, जिला-पन्ना (म.प्र.), पिन - 488333 मोबाइल नं. 9981390261
2. श्री रमेशकुमार त्रिपाठी, सिंचाई विभाग, रीवा

   (अ) रीवा मँझियार रोड, अनंतपुर, जिला-रीवा (म.प्र.)

   (ब) किशोरी तीर्थ सदन, गुढ़ महादेवन टोला, रीवा, पिन - 486001, मो. 900925471
3. श्री दुर्गाप्रसाद अग्रवाल श्री राघव सदन 313, रास गर्वा मैदान, समता कॉलोनी, रायपुर, पिन - 492001, मो. नं. 9329764621 (छत्तीसगढ़)
4. श्री बाबूलाल विश्वकर्मा, अर्जुननगर, दक्षिणी पतेरी, पो. महदेवा, जिला-सतना (म.प्र.), पिन - 485 002 मोबाइल नं. 9993099915

मुद्रक -

सतना आर्ट प्रिंटर्स, कैलाश टाकीज के सामने, सतना, फोनः 07672-234969, 230375

प्रथम संस्करण - 1000 प्रति

न्योछावर - 100/- एक सौ रुपये मात्र

प्रकाशन तिथि - श्री सीताराम विवाह पंचमी, अगहन शुक्ल 5 श्री आचार्य पीठ पौड़ीधाम

सीता राम चरण रति मोरे । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे ।।

डॉ. (श्रीमती) ज्ञानवती अवस्थी
एम.ए., पी.एच.डी., "मानस रत्न"
सेवानिवृत्त प्राचार्य
शासकीय महाविद्यालय

बोदा बाग रोड
(हाउसिंग बोर्ड कालोनी के पास)
रीवा, म.प्र. 486001
फोन-07662-241193

स्वस्ति-प्रशस्ति

अनन्तश्री विभूषित प्रेमावतार पंचारसाचार्य संत प्रवर श्रीरामहर्षणदास जी के कृपापात्र श्री सुरेन्द्रकुमारजी 'रामायणी', सेवानिवृत्त प्राचार्य एक संस्कारी परम वैष्णव संत स्वभाव वाले भावुक भक्त हैं। आप श्रीरामचरित मानस के ओजस्वी एंवं सरस वक्ता हैं। भारतवर्ष के सैकड़ों व्यासपीठों को आपने सुशोभित किया है। रामवन के अतिरिक्त अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं की सेवा आप निरन्तर करते रहते हैं। वीररस एवं करूणा रस की व्याख्या आपके द्वारा जब होती है तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। 'मानस' पर आपका अध्ययन एवं अधिकार है। आप भगवत-रस-रसिक प्रेमी संत हैं। श्रीभरत चरित्र पर आपके प्रवचन सुनकर भक्तजन भावविभोर होकर मुग्ध हो जाते हैं।

*ऐसे सुपात्र के द्वारा- **"सब विधि भरत सराहन जोगू"**- शीर्षक के रूप में श्री भरतलालजी का वर्णित चरित्र अपूर्व बन पड़ा है। श्रीभरतजी के चरित्र का वर्णन कर सकना सबके वश की बात नहीं है- तुलसीदासजी महाराज कहते हैं- "कवि कुल अगम भरत गुन गाथा"। लेखक श्री सुरेन्द्र कुमार जी स्वयं भरतजी जैसी रहनी में रहते हैं। श्रीराम प्रेम में डूबे नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते रहते हैं। आपमें भावुकता एवं विद्वता दोनों का संमिश्रण है।*

ग्रंथ के छठवें अध्याय में श्रीरामजी एवं श्रीभरतजी का तुलनात्मक विवेचन बहुत सुन्दर किया गया है। लेखक की कुछ व्याख्यायें बेजोड़ हैं- 'प्रयागराज तो चार पदार्थ भक्तों को प्रदान करते हैं किन्तु श्रीभरतजी लोकोत्तर प्रयाग हैं जो पंचम पुरूषार्थ-प्रभु प्रेम- सुलभ कराने वाले हैं।

श्रीरामजी का वाण प्राण लेकर दिव्य धाम पहुँचाता है किन्तु श्रीभरतजी का वाण सदेह श्रीराम के पास पहुँचा देता है।– इस प्रकार के सैकड़ों सुन्दर भाव लेखक ने अपने ग्रंथ में भरे हैं।

अनेक ग्रंथों के उद्धरण के साथ लेखक ने स्वयं निर्मित छप्पय में भी अपूर्व भाव भरे हैं– जैसे पंचामृत का छप्पय बहुत सुन्दर है – (नवम् अध्याय में)

अमृत दुर्लभ तत्व परम आनन्द प्रदाता,
विश्व मॉहि नहिं सुलभ गुप्त रचि दियों विधाता ।
सोइ तुलसी ने मानस में पंचामृत कीन्हों ।।
कथा नाम अरू रूप, कृपा को अमृत दीन्हों ।
प्रभु वचनामृत हरिहिं सम, प्रेम सुधा सुखदायिनी ।
पिवहु भक्तजन कर्णपुट, कह सुरेन्द्र रामायणी ।।

इस प्रकार लेखक के अनेक छप्पय रस और भावों की पुष्टि करते हैं।

अध्याय सत्रह में लेखक की व्याख्या बहुत मार्मिक है ।

हिन्दी भाषा में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने वाले ग्रंथ रचयिता की भाषा बहुत प्रांजल एवं सरस है ।

भावुक भक्तों, रसिक प्रेमियों को तो यह ग्रंथ रससिक्त अवश्य करेगा इसके साथ ही हिन्दी साहित्य के विद्वानों एवं अध्येताओं को अनेक गूढ़ भाव एवं अनूठी व्यंजनाओं के दर्शन होंगे।

यह ग्रंथ लेखक सुरेन्द्र कुमारजी की तपस्या का फल है उन्होंने परिश्रम करके अपने अन्तर्हित प्रेम–भावों को अभिव्यक्ति प्रदान कर प्रेमियों का बहुत बड़ा कल्याण किया है इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं ।

अगम भरत चरित्र को सुगम बनाने वाले वैष्णव संत पूर्व प्राचार्य श्री सुरेन्द्र कुमारजी स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें तथा अपनी रसमयी वाणी एवं रससिक्त लेखनी से रसिक जनों को रससिक्त करते रहें, प्रभु राघवेन्द्र सरकार से यही कामना करती हूँ।

|| श्री रामः शरणं मम ||

मानस केसरी
आचार्य अवध किशोरदास

श्री रामहर्षण कुंज
परिक्रमा, नयाघाट
श्री अवधधाम,
जिला–साकेत (उ.प्र.)

"नास्ति येषां यशः काये, जरामरणजं भयम्"

रससिद्ध कवीश्वरों के काव्य में मनीषियों ने जरामरण जन्य विनाश के भय को स्वीकार नहीं किया। रस–मर्मज्ञ गृहस्थ सन्त श्री सुरेन्द्र जी की इस कृति में भी मुझे आदि से अन्त तक प्रत्येक शीर्षक के माध्यमसे व्यक्त महात्मा श्री भरत के "सब बिधि भरत सराहन जोगू" चरित्र में सर्वत्र काव्य की ही रसमयता के दर्शन हुए। जिस स्तम्भ में ही प्रवेश किया बिना आद्यन्त पढ़े विराम नहीं लग पाया।

श्री मन्मानसकार ने श्री भरत चरित्र को दिव्य प्रयाग निरुपित करते हुए, एक नूतन त्रिवेणी, का वहाँ दर्शन कराया है। श्री सुरेन्द्र कुमार जी की इस कृति में भी एक अभिनव त्रिवेणी का प्राकट्य है। प्रेमावतार श्री भरत, प्रेम विग्रह युवराज लक्ष्मी निधि एवं प्रेम रसावतार श्री स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज की चरित्रत्रयी रसधारा में लेखक का रसोर्मिलि अन्तःकरण ऐसे प्रवाहित हुआ है, कि सामान्य पाठक भी उसमें डूबे बिना नहीं रह सकता।

श्री सुरेन्द्र कुमार जी इस पंक्तियों के लेखक के रामायणी मित्र भी हैं। कई दशकों तक ये किशोर –युगल देश के मानस मंचों में साथ–साथ आहूत होते रहे। श्री सुरेन्द्र जी की यह कथायात्रा मानस–मंचों में वीर रस के यशस्वी वक्ता के रूप में स्थापित हुई। द्रवित अन्तःकरण को जब से प्रेम रामायण और प्रेमरामायणकार के चरित्रों का साक्षात्कार हुआ, तब से उनके चरित्र में, एक आत्म–तुष्टि युक्त प्रेम–सुधा–सिन्धु का अवतरण हुआ। उनकी इस कृति में उसी अमृत–सरोवर की त्रिधा –रसतरंगिणी का उदय हुआ है।

श्री सुरेन्द्र जी की लेखनी में प्रेषणीयता, साहित्यकता, रसमयता, परिष्कृत–अभिव्यक्ति का अनूठा संगम है। भाषा में प्रौढ़ साहित्यिक अभिव्यक्ति तो है ही, प्रसंगो के चित्रण में जो सरस–रस प्रवाह है, वह भाषा को बोझिल होने नहीं देता।

जैसे गंगावतरण में अनेक अवरोधों के पड़ावों को तोड़ते किसी भागीरथ के संकल्प ने अन्ततः उसे धरा में ला ही दिया, उसी प्रकार यह कृति भी न जाने कहाँ–कहाँ गई, और न जाने कितने कितने वर्षों तक कहाँ–कहाँ विश्राम लेती रही, परन्तु यह भगवत्कृपा का ही फल है कि आज यह पाठकों के हाथों में आ रही है। श्री सुरेन्द्र जी की इस कृति से जहाँ साहित्यिकों को साहित्यिक रसास्वाद प्राप्त होगा, भावुकों की अश्रुधाराओं को प्रवाह मिलेगा, वहीं शोधार्थियों को भी प्रचुर सामग्री प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी लिये मुझे कहना पड़ रहा है कि, यह कालजयी कृति है, जिसमें जरा–मरणज–भय नहीं है।

कृति के लिये तथा कृतिकार के लिये अन्तःकरण की समस्त शुभ–कामनायें। कृतिकार को अनन्त मंगलाशीषों के साथ साधुवाद देते हुये।

श्री अयोध्याधाम

अवध किशोर दास
(भइया जी)

॥ श्री गुरुः शरणं मम॥

हरिगोविन्द द्विवेदी
साहित्याचार्य
एम.ए. (हिन्दी एवं इंग्लिश)

श्रीराम कृष्ण मंदिर
उपरहटी, रीवा (म.प्र.)

शुभाकांक्षा

सच्चिदानन्द रूपं तं प्रेम ब्रह्म परात्परम्।
प्रेमादर्शेषु सुव्यक्तं वन्दे तत्वं सनातनम्॥

श्री सुरेन्द्र कुमार जी रामायणी द्वारा प्रणीत अभिनव ग्रन्थ ''सब बिधि भरत सराहन जोगू'' (प्रेमावतार त्रय–समन्वित) का अवलोकन किया। ग्रन्थ महामहिम विभूतियों के आदर्श प्रेम का चित्रांकन है। ''अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्''। अतः यह अनिर्वचनीय प्रेम तत्व आदर्श रूप में जिनके जीवन में उतरा हो, तो वे चरित्र भी अनिवर्चनीय ही होंगे। अस्तु अनिर्वचनीय को वचनीयता में लाने वाला भी कोई विलक्षण ही होना चाहिये।

इस ग्रन्थ में श्री रामायणी जी ने प्राचीन और अर्वाचीन आदर्शों का एक बड़ा ही सुन्दर संगम प्रकट किया है। परमप्रेमस्वरूप श्री भरत जी, जिनके आदर्श भ्रातृ–प्रेम, तज्जन्य त्याग और रहनी के कथन के सम्बन्ध में महामनीषी यथा श्री वशिष्ठ जी, श्री जनक जी, श्री शारदा जी और स्वयं पूर्ण ब्रह्मावतार श्रीराम जी ने असमर्थता का अनुभव किया हो, उनके विषय में कुछ टिप्पणी देना कहाँ तक समीचीन होगा ? इधर श्री ज्ञान–शिरोमणि श्री विदेह जी के पुत्र श्री लक्ष्मी निधि जी भी श्रीराम भाम–प्रेम के महादर्श है। अर्वाचीन आदर्श प्रेमी श्रीरामहर्षण दास जी भी महादर्शों में अन्यतम हैं। वे प्रेमावतार हैं। मनीषियों ने श्रीमहाराज जी के प्रेममय जीवन में श्री भरत, श्री लक्ष्मीनिधि और श्री चैतन्य महाप्रभु का ही आदर्श विद्यमान पाया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री राम चरितमानस (श्री तुलसी कृत) श्री रामहर्षणदास जी महाराज का महाकाव्य ''प्रेम रामायण'', श्री हरिगोविन्द द्विवेदी द्वारा प्रणीत ग्रन्थ ''अनन्त श्री स्वामी जी श्री राम हर्षण दास जी महाराज का चतुर्धाम–यात्रावृत्त'' श्री नारद–भक्ति–सूत्र, प्रेम योग प्रभृति अनेक ग्रन्थों से प्रेम सूत्र लेकर एक ही ग्रन्थ की गागर में सागर भरने का सफल एवं स्तुत्य प्रयास किया है। मेरा विश्वास है कि महा–महिम्न प्रेमादर्शों की भाँति ही यह ग्रन्थ भी एक विलक्षण आदर्श ग्रन्थ सिद्ध होगा। यह अमर कृति लेखक श्री रामायणी जी के प्रेम चरित्र–प्रणयन

की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है, और उनकी अक्षुण्य कीर्ति का कारक भी।

वेदन को सोधि सोधि पावन पुराण ग्रन्थ,
सोधि नारदादि प्रेम वाणी रस दायिनी।
सोधि 'मानस' के वन वाटिका सुमन बाग,
सोधि प्रेम रामायण प्रेम की विधायिनी।।
ब्रह्म सारभूत प्रेमपावन को सोधि सोधि।
प्रकटी आदर्श प्रेम–मधु अनपायनी।
भाँति मधुमक्षिका के सबको कराया सुलभ,
''गोबिन्द'' धन्य–धन्य श्री सुरेन्द्र रामायणी।।

श्लोक :- सुधी बन्धु सुरेन्द्रस्य महनीयाद्भुता कृतिः।
गुरुदेव प्रसादेन महन्महनीयतां लभेत्।।
निखिल मानव लोक हितावहा
परम पावन प्रेम प्रवर्धिनी।
कवि सुरेन्द्र कुमार कृता कृतिः
भवतु मंगल–मोद विधायिका।।

हरिगोविन्द द्विवेदी
साहित्याचार्य

॥ श्री गुरु शरणं मम॥

श्री गुरुपद रेणु संत
भगवानदास

श्रीराम हर्षण कुंज
श्री अयोध्या धाम

श्री सुरेन्द्र कुमार रामायणी जी स्वतः ही एक महान भक्त तथा गुरु भक्त एवं प्रभु–प्रेमी हैं, जिनके द्वारा प्रभु–कृपा से यह "प्रेमावतार त्रय–समन्वित भाष्य लिखा गया, जिसे पढ़कर भक्तों, प्रेमियों एवं समस्त आग्रह–हीन सामाजिक प्राणियों को प्रेम की पूर्ण झलक तथा प्राप्ति निश्चित होगी, क्योंकि लेख पढ़ते समय महाभावरस में निमग्न इन त्रय प्रेमावतार महापुरुषों का काय–दर्शन नेत्रों के सामने अवश्य ही प्रकट हो जावेगा। प्रेमियों का चरित्र पाषाण– हृदय में भी प्रेम का संचार निश्चित ही कर देता है।

दास के द्वारा समग्र भाष्य पढ़ा जा चुका है, उस समय छोड़ने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। इस भाष्य की भाषा सरल तथा चरित्रनायकों के चरित्र एवं रूप में डुबाने वाली है और प्रभु प्रेमी महापुरुषों के चरित्र में डूबना ही भगवान को हृदय में अवरुद्ध कर लेना है, जो जीवन का लक्ष्य है। अतः यह श्रेय श्री भैया रामायणी को मिला है। वे जिस काव्य, कथा या रस को लेखन या वक्तव्य के द्वारा प्रस्तुत करते हैं, उसे श्रोता या पाठक के हृदय में उतार देते हैं, जो कि उन्हें पूर्णरुप से प्राप्त हैं। अस्तु इसे पाठक पढ़कर प्रेमरस की अनुभूति करें। भगवान श्री जानकीनाथ से मेरी यही प्रार्थना है।

श्री गुरुपद रेणु

भगवान दास

श्री रामाय नमः

प्रभोराम तेरे चरणों की महिमा अपरम्पपार है।

तेरी चरणतरी जोगहता उसका बेड़ापार है।।

चन्द्रदेव तिवारी
एम.ए. (हिन्दी एवं इतिहास)
साहित्यरत्न
सेवा निवृत्त व्याख्याता
शासकीय हायर सेकेण्डरी स्कूल

हनुमान मंदिर के समीप
ग्राम कुलगढ़ी
जिला–सतना (म.प्र.)

दिनांक 9.11.2009

शुंभाकांक्षी

प्रेमावतार अनन्त विभूषित श्री रामहर्षणदास जी महराज के कृपा पात्र श्री सुरेन्द्र कुमार रामायणी सेवा निवृत्त प्राचार्य एक परम श्रेष्ठ ग्रहस्थ बैष्णव सन्त एक सच्चे अर्थ में शरणागति प्राप्त भगवान् के भक्त हैं।

ममगुन गावत पुलकि शरीरा।

गदगद गिरा नयनबह नीरा।।

भगवान् राम की इस उक्ति को चरितार्थ होते हुए रामायणी जी के जीवन में प्रत्यक्ष साकार रूप में देखा जा सकता है। आप रामचरित मानस के भावुक सरस वक्ता हैं। वक्तव्य के समयकरुण रस की साक्षात प्रतिभूति के दर्शन उनमें किए जा सकते हैं। मानस का आपने विशद अध्ययन किया है और उसी के फलस्वरूप उनमें एक मौलिक विलक्षण प्रतिभा के दर्शन होते हैं। सांसारिक व्यथाओं को वे मानस के उद्धरणों द्वारा कथाओं में बदल देते हैं। उनके द्वारा व्यथाओं को हरण किया जाकर एक स्वस्थ चित्त देकर सतसंगी को विदा करना उनके दैनिक जीवन का अंग बन चुका है। रामायणी जी ने सबविधि भरत सराहन जोग में प्रेमावतार त्रय भरत जी श्री लक्ष्मी निधि जी एवं श्री रामहर्षण दास जी का अर्विचनीय प्रेम स्वरूप अपने ग्रन्थ में दर्शाया है। प्राचीन और अर्बाचीन आदर्शों का बड़ा ही सुन्दर ग्रहण करने योग्य वर्णन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में तुलसी के मानस श्री रामहर्षण महराज जी के महाकाव्य ''प्रेम रामायण'' श्री हरि गोविन्द द्विवेदी द्वारा श्री राम हर्षणदास महराज जी के चर्तुधाम यात्रा आदि ग्रन्थों से प्रेमसूल एकत्रित कर उन्हें ग्रहण करने के लिए प्रेरणादायक बनाया है। ग्रन्थ में भावुकता का ऐसा निरूपण है कि सुधीजन भावुक हुए बगैर नहीं रह सकता।

रामायणी जी का यह ग्रन्थ भावुक जन से ही महत कार्य होते हैं को चरितार्थ करता है भावुकता का सीधा सम्बन्ध आत्मा से है जो ईश्वर की अंश निरूपित की गई है आत्मा की सुख शान्ति प्रसन्नता सब कुछ ईश्वर के भजन पूजन अर्चन आराधन, कीर्ति, मनन से ही तो प्राप्त होती है।

रामायणी जी का सम्पूर्ण जीवन इन्हीं में व्यतीत हो रहा है, जब से मैं उनके सामिप्य में आया हूँ देख रहा हूँ आप आज के युग परापवाद से दूर जीवन यापन कर रहे हैं उनके सामिप्य में रहने के फल स्वरूप इस दुरूह नियम का पालन हो सकने में मुझे सफलता प्राप्त हो रही है। गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा साधक नियमावली के अन्तर्गत जो डायरी भरनी पड़ती है उसमें परापवाद त्याग का नियम न कर सकने के कारण डायरी भरना ही बंद कर चुका था।

ग्रन्थ की सफलता उपादेयता ग्रन्थकार की उज्जवल की कीर्तिअक्षुण रहने की कामना के साथ उन्हें समर्पित

परमभागवत स्नेही परमउदार
रामकथा के गायक गुण गरिमा आगार
कैसे करूँ, आपके पावन चरण कमल का बन्दन
पद रज बने आपकी मेरे विनत भाल का चन्दन।

चन्द्रदेव तिवारी
सचिव – हिन्दी साहित्य परिषद
उत्तरी पतेरी, सतना

श्री रामहर्षण मंडल की प्रमुख आरतियाँ

श्री आचार्य महाप्रभु की आरती

वैष्णव वृन्दे वन्द्यं बन्दे श्रीगुरुमधिकमुदारम्।
रसिक जनेषु वरिष्ठं भुवने, प्रेमभक्तिदातारम्।।1।।
शिव स्वरूपमहेतु कृपालुं कल्पतरूं हृदयेशम्।
सततमचिन्त्यं भजे कृपाब्धिं देवमनादिमशेषम्।।2।।
जगदुद्धर्तुं भुव्यवतीर्णं मृदु गौरांग स्वरूपम्।
प्लवमति दुस्तर संसृति जलधौ मंजुल मूर्तिमनूपम्।।3।।
कोऽपिकुतोऽपि कदापि ऋतेऽयं लभते नात्मप्रकाशम्।
स मयि करोति कृपां प्रपन्ने कुर्वन् मनसि विलासम्।।4।।
परम मलीनः अतिशय दीनः शिरसा पदे नतोऽहम्।
सिञ्चय सततमुरसि मे स्नेहं हत्वा विषय विमोहम ।।5।।

मैथिल रसाचार्य श्री लक्ष्मीनिधि जी की आरती

कुँवर वर की आरती मनहारी।
श्री लक्ष्मीनिधि कुँअर सलोने, गौर गात द्युति दमकत सोने
भये न हैं, कबहूँ नहिं होने, ऐसे प्रेम पुजारी। कुँअर......।।1।।
जन्मत ते तिलकांकित भाला, रामायुध भुज सोह विशाला,
परम भागवत रघुवर श्याला, मिथिलाराज विहारी। कुँअर....।।2।।
रामप्रेम अहलाद स्वरूपा, योग ज्ञान वैराग्य सुभूपा,
चन्द्रकीर्ति सुखधाम अनूपा, निमिकुल मंडन हारी । कुँअर ।।3।।
आदिशक्ति अग्रज सुखकारी, दुलरावत नित जनक दुलारी,
होत सदा तिनपर बलिहारी, सरसावत रसधारी। कुँअर ।।4।।

मैथिली रसाचार्या श्री सिद्धि कुँवरि जी की आरती

आरति करिये सिद्धि कुँवरि की।
महाभाव साम्राज्य स्वामिनी, प्रेम रूपिणी नव नागरिकी।।1।।
श्रीधर कन्या परमानन्या, रस स्वरूपिणी त्रिभुवन धन्या,
शीलमयी लक्ष्मी निधि भामा, रसरूपिणि निकुंज सुन्दरि की ।।2।।
अग्रज प्रिया विदेह सुता की, सरस सुधाफल प्रीतिलता की,
पुत्रवधू मिथिलाधिराज की, नयन पूतरी मिथिलेश्वरि की ।।3।।
तंत्री नाद परम आचार्या, वेणु नृत्य निपुणा परमार्या,
मैथिल जनन करणि कृत कार्या, रघुवर सरहज गुण आगरि की।।4।।
दास किशोर चरण नित ध्याऊँ, पादपीठ ढिग जनम बिताऊँ,
पदत्राण बनि चरण समाऊँ, सिय रघुनंदन प्रेम मूरि की।।5।।

मंगलमूर्ति श्री अंजनिनंदन जी की आरती

आरती श्री अंजनिनंदन की।
राम प्रेम रस-रसिक शिरोमणि, गुणागार सब जगवंदन की।
जन मन रंजन भवभय भंजन, हरण सकल जन दुख द्वन्द्वन की।
करूणानिधि सुखसिधि सुप्रेमनिधि, काव्यकला निधि रस स्यंदन की।
बाधाहरण काम परि पूरण, शरण सुखद गतिप्रद छंदन की।
'गोविंददास' प्रणतमाँगत प्रभु, परमप्रीति सिय रघुनंदन की।
(श्री रामहर्षण मंडल की आरती भावांजलि से उद्‌धृत)

अनुक्रमणिका

अध्याय क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ क्रमांक
	आत्म निवेदन	क-झ
एक	प्रेमैव परमेश्वरः	1–10
दो	प्रेम में परमेश्वर की प्रतिष्ठा	11–22
तीन	प्रेम परमेश्वर से भी विशिष्ट	23–37
चार	प्रभु के प्रेमावतार श्रीभरत	38–46
पाँच	श्रीभरत प्रेम की अनिर्वचनीयता	47–57
छह	श्रीभरत के गूढ़ प्रेम की महिमा	58–67
सात	प्रेमी श्रीभरत प्रेमास्पद श्रीराम से विशिष्ट	68–87
आठ	प्रभु प्रेमी में अन्तर्वाह्य सर्वत्र विशिष्टता-दर्शन	88–99
नौ	श्रीरामचरितमानस में पंचामृत	100–110
दस	प्रेमी भरत का स्वागत प्रभुश्रीराम से विशिष्ट	111–127
ग्यारह	प्रेमी एवं प्रेमास्पद का दिव्य मिलन	128–138
बारह	प्रेमी एवं प्रेमास्पद का विचारैक्य	139–148
तेरह	श्री प्रेमरामायण में वर्णित भरत-सिद्धांत	149–158
चौदह	श्री प्रेमरामायणान्तर्गत श्रीराम भरत-संवाद	159–165
पन्द्रह	प्रेमी श्रीभरत के लिए प्रभु का पादुकावतार	166–183
सोलह	वियोगावस्था में प्रेमी श्रीभरत की रहनि	184–192
सत्रह	परस्पर परिपूरक श्रीराम भरत	193–201
अठारह	श्रीराम प्रेम-प्रदाता दैन्य मार्गाचार्य श्रीभरत	202–209
परिशिष्ट	क्र. 1 चतुर्युग के प्रमुख प्रेमाचार्यों की स्तुति आरती	210–216
	क्र. 2 प्रेम-प्रभा-प्रकाशक श्री बाँकेसिद्व मुनि का प्रेमख्यान	217–220

ॐ गुं गुरवे नमः

रामायण दास
ज्योतिर्विद साहित्याचार्य
श्रीराम हर्षण कुंज अयोध्या

आत्म-निवेदन

परम प्रेमास्पद परमात्म-स्वरूप पाठक-वृन्द !

श्री मज्जगद्गुरू रामानन्दाचार्य वंशावतंस, भक्त–जन–मानस–राजहंस, निखिल वेद–वेदान्त –निष्णात, प्रस्थान–त्रयी–भाष्य एवं प्रपत्ति–दर्शनकार, श्रीप्रेमरामायण–महाकाव्य–रचनाकार, श्रीअयोध्या–धाम–संत–समाज द्वारा देवर्षि–शिखर–सम्मान– विभूषित, पंच–रसाचार्य, प्रेमावतार, प्रातः स्मरणीय अनंतश्रीविभूषित श्रीरामहर्षणदास जी महाराज का कृपा–पात्र बनने पर इस दास को प्रभु–प्रेम–रस के किंचित् विन्दुओं का रसास्वादन करने का परम सौभाग्य लाभ हुआ। आचार्य–पाद के श्रीचरणों में पहुँचने के पूर्व यह दास श्रीरामचरितमानस के प्रवचनकार के रूप में अनेक मंचों से अपनी वाणी को पवित्र कर चुका था, किन्तु प्रभु–प्रेम से हृदय के रस–सिक्त होने की दशा आकाश–कुसुमवत् दुर्लभ थी। यह दास केवल वैखरी वाणी से राष्ट्र एवं समाज के लिये उपयोगी श्रीरामचरित मानस की शिक्षाओं की व्याख्या करने तक ही सीमित था। जोशीली वाणी से प्रवचन करने के कारण ओजस्वी प्रवक्ता कहलाता था।

मई 1965 में छतरपुर के मानस–सम्मेलन में भारत के प्रख्यात मानस–प्रवक्ता, सरस्वती के वरद पुत्र, अनेक गद्य–पद्य–ग्रंथों के रचयिता मानस–केशरी पं. वाल्मीकि प्रसाद मिश्र, एम.ए.,एम. एड., प्राचार्य (जो अब सेवानिवृत्त होकर स्वनामधन्य संत प्रवर श्री अवधकिशोर दास हैं) से भेंट हुई। उनके ही माध्यम से मुझे प्रातः स्मरणीय आचार्य महाप्रभु की शरणागति प्राप्त होने का परम सौभाग्य–लाभ हुआ।

आचार्य श्री की अहैतुकी कृपा से अब प्रभु–प्रेम के छींटों से हृदय रस–सिक्त हुआ; तो करुण–रस की धारा में डूबने उतराने की स्थिति बनने लगी। अब यह दास श्रीभरत–चरित्र पर प्रवचन करते हुए करुणा–विगलित होने लगा। फल–स्वरूप अनेक सुधी श्रोता भी करुण–रस की धारा में भाव–विभोर होकर प्रेमाश्रु–विभूषित देखे जाने लगे । तब मुझसे प्रायः श्रीभरत–चरित्र पर प्रवचन करने का आग्रह किया जाने लगा। सन 1953 से ही श्रीरामचरित्रमानस के विविध प्रसंगों पर इस दास के लेख मानस–मणि, कल्याण, अवध–संदेश, चित्रकूट–सत्संग एवं

तुलसी—दल आदि अनेक पत्र—पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। किन्तु कभी एक ही विषय पर पुस्तक—रचना का विचार ही नहीं उठा, तो उसे कार्यरूप में परिणत करने का प्रश्न ही नहीं था।

अन्ततः शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्राचार्य पद से सेवा—निवृत्त होकर तीर्थाटन, प्रवचन एवं यदा कदा स्फुट लेख लिखने में कालयापन करने लगा। आयु के सत्तर का दशक पूर्ण करके पचहत्तरवें वर्ष में शरीर की बहुत कुछ शिथिल दशा में जैसे तैसे विश्राम करने लगा। अब मेरी समझ में मेरे लिए कोई विशेष करणीय कार्य शेष नहीं रह गया था।

ऐसे समय में मेरे कतिपय प्रेमी बन्धुवर मुझसे प्रेमाग्रह पूर्ण निवेदन कर रहे थे कि अब आप **"सब विधि भरत सराहन जोगू"** विषय पर पुस्तक लिखिये। उनका आग्रह था कि "यह कार्य केवल आप ही सम्पन्न कर सकते हैं क्योंकि इस विषय का प्रतिपादन अपनी वाणी द्वारा सफलता पूर्वक आप कर ही रहे हैं। उसी विषय को चिरस्थायी बनाने के लिए लेखनी का माध्यम अपनाइये।" शरीर की शिथिलतावश मैं आलसी प्रमादी हो गया था। अतः प्रेमियों के आग्रह को मैं बहुत समय तक टालता रह गया। नेत्र ज्योति क्षीण हो रही थी पठन पाठन लेखनादि में कठिनाई भी आ रही थी। ऐसी परिस्थिति में भी मुझे प्रेमियों के विशेष आग्रह पर लेखनी उठानी ही पड़ी। कहने का आशय यह है कि मैं स्वेच्छा से इस पुस्तक के लेखन कार्य में प्रवृत्त नहीं हुआ था, वरन् प्रेमियों के प्रेमाग्रह ने इस पुस्तक की रचना करा ली है। अतः इस रचना के मूल में प्रेमतत्व ही था। उसी प्रेमतत्व की ज्योति ने सम्पूर्ण रचना को प्रकाशित किया है। मुझे केवल माध्यम बनाया गया है।

काव्य—कलानिधि श्रीराम—रस—रसिया श्री अंजनी—नंदन की वंदना करके लेखन—कार्य में प्रवृत्त हुआ। लेखन—कार्य के लिए उत्तमकोटि की डायरी मेरे गुरु—बन्धु श्रीरमाशंकर निगम ने उपलब्ध कर दीं, जिससे मेरा कार्य सुगम हो गया। अब मैंने निरन्तर चार माह तक इसी शुभकार्य में प्रवृत्त रहने ही भावना से बाहर जाने का विचार त्याग कर कोई प्रवचन—कार्यक्रम स्वीकार नहीं किया, वैसे भी वर्षा ऋतु के कारण यदा कदा ही प्रवचन के आमंत्रण प्राप्त होते हैं।

ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय के अनुसार प्रेम—मूर्ति श्रीभरत का वैशेष्य प्रतिपादन किया जाना था एतदर्थ मैंने अपने सद्गुरूदेव प्रेमावतार आचार्यपाद के प्रेम—रस—सिद्ध महाकाव्य श्री प्रेमरामायण तथा प्रेम—रस—प्रपूरित गीतिकाव्य प्रेम—वल्लरी का आश्रय लिया, ताकि प्रेमतत्व के स्वरूप तथा

प्रेमरस–महिमा का निरूपण करने की पात्रता प्राप्त हो सके। इस सुदृढ़ आश्रय को ग्रहण कर लेने से प्रेममूर्ति भरत की रहनि का चित्रण तथा भगवान राम से उनकी विशिष्टता का दर्शन कराना सुगम हो गया। मुझे अपनी लेखनी को गतिशील बनाने के लिए निरन्तर उक्त ग्रंथ–रत्नों से मार्गदर्शन मिलता रहा।

प्रेमावतार श्री भरत की महिमा को प्रकाशित करने वाली यह रचना प्रेम–तत्व की विशद व्याख्या से प्रारंभ की गई है। प्रथम अध्याय में **"प्रेमैव परमेश्वरः"** द्वितीय अध्याय में **"प्रेम में परमेश्वर की प्रतिष्ठा"** तृतीय अध्याय में "प्रेम परमेश्वर से भी विशिष्ट" शीर्षक से इस रचना का केन्द्र–बिन्दु प्रेम तत्व को बनाया गया है। इस प्रेम–तत्व के मूर्तिमान स्वरूप प्रेमावतार श्री भरत के साथ श्रीप्रेमरामायण महाकाव्य में वर्णित प्रेमावतार श्रीरामश्यालपद प्रतिष्ठित श्रीलक्ष्मीनिधि वर्णित हुए हैं। साथ ही वर्तमान समय में प्रेमावतार आचार्यपाद स्वामी श्रीरामहर्षणदास जी का चरित्र चित्रण किया गया है, इस प्रकार यह ग्रंथ प्रेमावतार–त्रय–समन्वित प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे प्रभु–प्रेमेच्छु भावुक भक्तों को प्रेमतत्व हृदयंगम करने में सरलता होगीं। यही तो मानवजीवन का चरम लक्ष्य है।

अनेक मनस्वी विद्वानों द्वारा श्री भरत–चरित्र पर ग्रंथ रचनायें प्रस्तुत हुई हैं, किन्तु मेरे प्रतिपाद्य–विषय

दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ।।

2 / 326 / 3

पर मेरी दृष्टि में कोई पुस्तक नहीं आई है। अपने रामायणी मित्रों से भी पूछा कि क्या कोई ऐसी पुस्तक सुलभ है, जिसमें श्रीराम एवं श्रीभरत की तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की गई हो? सभी मित्रों ने नकारात्मक उत्तर दिया। अतः मेरे लिए तुलनात्मक–समीक्षा–पूर्ण यह अनुसंधानकार्य एकदम नवीन शैली से रचना करने का अनूठा प्रयास था। मैं निरन्तर चिन्तन मनन में उन प्रसंगों को स्मृतिपटल पर उभारता रहा, जिनमें श्रीराम एवं श्रीभरत की तुलना प्राप्त होती रही है। यथा–निषादराजगुह का कथन

कुसल मूल पद पंकज पेखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ।।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।।

2 / 195 / 7–8

इसी प्रकार श्रीराम के लिए केवल अतिथि कहा गया–

"मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाये" 2/125/3

जबकि श्रीभरत के लिए अतुलित अतिथि कहा गया—

कहहिं परसपर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि रामलघुभाई ।।

2/214/2

तथा

तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात ।। **2/216**

इत्यादि

यह तो पूर्व से ही निर्धारित था कि मुझे क्रमबद्ध रूप से भरत—चरित्र प्रस्तुत नहीं करना है, क्योंकि उस दिशा में मनस्वी विद्वानों द्वारा बहुत कुछ लिखा जा चुका है। निर्धारित विषय के अनुसार मेरे लिए यह प्रतिबन्ध था कि मेरे द्वारा श्रीराम एवं श्रीभरत सम्बन्धी केवल तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की जावे तथा उन प्रसंगों में जहॉ कहीं श्रीभरत की विशिष्टता श्रीरामचरित मानस में चित्रित की गई हो, केवल उन्हीं प्रसंगों को लेखनी को विषय बनाया जावे।

तुलनात्मक विवेचना पूर्ण निबन्ध होने के कारण इसमें क्रमबद्ध कथानक नहीं लिखा गया है। इसमें बाद के घटना—क्रम के प्रसंग पहले मिल जावेंगे तथा प्रारंभिक घटनायें बाद में भी मिलेंगीं। साथ ही अनेक दोहे चौपाई युक्त उद्धरणों की पुनरावृत्ति भी मिलेगी, क्योंकि तत्सम्बन्धी तुलना प्रस्तुत करने हेतु ऐसा करना आवश्यक होता है।

एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि एक प्रवचनकर्ता द्वाराप्रस्तुत यह निबन्ध प्रवचनशैली आग्रह—ग्रस्त होने के कारण किसी शब्द—विशेष, वाक्यांश या घटना—विशेष से सम्बन्धित अन्यान्य प्रसंग भी दिग्दर्शित कराते हुए आगे बढ़ता है। यथा "धाम—काम" शब्द युग्म की विवेचना प्रस्तुत करते समय तत्सम्बन्धी अनेक दृश्य चित्रित किये गये। आशा है सुधी पाठक इन तथ्यों को ध्यान में रखेंगे, तो उन्हें पूर्वापर प्रसंग—लेखन अटपटा प्रतीत नहीं होगा एवं किसी प्रसंग सम्बन्धी अनेक दृष्टांतों के उद्धरणों को वे प्रसंगान्तर प्रकरण नहीं मानेंगे। बाल्य—काल से लेकर वृद्धावस्था तक के सुदीर्घकालीन अध्ययन की पृष्ठभूमि में यह लेखन—कार्य प्रारंभ हुआ तथा इधर चार माह तक मैं निरन्तर चिन्तन, मनन, लेखन, संशोधन, परिवर्द्धन में तत्पर रहा हूँ। अतः यह निबन्ध मेरी दीर्घकालीन साहित्य—साधना तथा इस रचना से सम्बन्धित तपस्या के फलस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस बीच एक विशेष कार्य से मुझे पन्ना जिलान्तर्गत शाहनगर जाना पड़ा, जहाँ मैं कई वर्षों

तक प्रधानाध्यापक तथा प्राचार्य पद पर शिक्षण–कार्य करता रहा हूँ। वहाँ मेरे प्रिय छात्र–शिष्य श्री दामोदर प्रसाद तिवारी, एम.ए., बी.एड., ब्लाक–श्रोत–शिक्षा –समन्वयक (जो स्वयं श्रीमद् भागवत तथा श्रीरामचरित मानस पर प्रवचन करते हैं) के आवास पर धार्मिक ग्रंथों का प्रशंसनीय संग्रह है। उनके पास से श्रीमद् भागवत महापुराण तथा श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण के संदर्भित श्लोकों के उद्धरण अंकित करने की सुविधा प्राप्त हो गई। उन्होने इस निबन्ध की पाण्डुलिपि का प्रथम–दृष्टया अवलोकन किया तथा कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये, जिनके अनुसार इस निबन्ध को पुनः परिवर्द्धित किया गया।

निबन्ध को प्रामाणिक बनाने हेतु आर्ष धार्मिक ग्रंथ श्रीमद् भागवत महापुराण, श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण, श्रीमद् भगवद्गीता तथा देवर्षि रचित नारदीय भक्ति सूत्र आदि से एतद् विषयक श्लोक व्याख्या सहित प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे तो निबन्ध प्रमुखतः श्रीराम चरित मानस पर आधारित है, किन्तु उन प्रसंगों की पुष्टि हेतु गोस्वामिपाद रचित अन्यान्य ग्रंथ गीतावली रामायण, विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, वरबै रामायण आदि से संदर्भित अंश प्रस्तुत किये गये हैं। श्रीरामचरित मानस से प्रस्तुत उद्धरणों के अंकों में पहला कांड के क्रमांक का बोधक, दूसरा दोहा क्रमांक का बोधक तथा तीसरा उस दोहे के अन्तर्गत पहले आई हुई चौपाइयों का बोधक है। इन उद्धरणों के लिए श्रीरामचरित मानस ग्रंथ का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गई है, क्योंकि मूलतः निबन्ध श्रीरामचरित मानस पर ही आधारित है ।

निबन्ध के रसमय सर्वोत्तम अंश श्रीप्रेमरामायण महाकाव्य के वे प्रसंग हैं, जो आवश्यकतानुसार कतिपय अध्यायों में यथास्थान उद्धृत किये गये हैं। साथ ही अध्याय तेरह में "श्रीप्रेमरामायण में वर्णित भरत–सिद्धांत" एवं अध्याय चौदह में "श्रीप्रेमरामायणान्तर्गत श्रीराम भरत–संवाद" विस्तृत रूप से अंकित किये गये हैं। श्रीप्रेम रामायण की भाषा प्रसाद गुणयुक्त सुबोध है, जिसे समझने के लिए पाठकों को सक्षम मानकर उनकी व्याख्या प्रस्तुत करके ग्रंथ का कलेवर नहीं बढ़ाया गया है।

आचार्य महाप्रभु के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की संक्षिप्त झाँकी अध्याय दस में प्रस्तुत की गई है तथा आचार्य श्री की उपासना–पद्धति का चित्रण अध्याय पन्द्रह में प्रस्तुत किया गया है। तत्सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने हेतु संतप्रवर श्री अवधकिशोरदास रचित "श्रीरामहर्षण–लीला–पीयूष" एवं श्री हरिगोविन्ददास द्विवेदी लिखित "अनंत श्रीविभूषित स्वामी रामहर्षणदास जी महाराज का चतुर्धाम–यात्रा–वृत्त" आधार भूत ग्रंथ–रत्न बने हैं। आशा है सुधी पाठक इन अंशों के

अनुशीलन से प्रेरणा ग्रहण करके श्री प्रेमरामायण महाकाव्य को प्राप्त करके अध्ययन में तत्पर हो सकेंगे। आचार्य श्री प्रणीत प्रेम–वल्लरी एवं विनय–वल्लरी गीतिकाव्य के सम्बन्धित पद भी प्रस्तुत किये गये हैं, ताकि पाठक इन गीति काव्यों को भी प्राप्त कर समग्र अध्ययन कर सकेंगे। आचार्य श्री की रचनाओं के अतिरिक्त इस निबन्ध से सम्बन्धित अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों की रचनायें भी यथास्थान प्रस्तुत की गई हैं।

मैंने श्रीरामचरित–मानस पर अनेकानेक व्याख्याओं (मानस–पीयूष से लेकर गूढ़ार्थ–चन्द्रिका तक) तथा अनेक विद्वानों की मानस–सम्बन्धी रचनाओं का विशेष अध्ययन किया है, क्योंकि "साहित्य–रत्न" एवं एम. ए. करने हेतु महाकवि गोस्वामी तुलसीदास को ग्रहण किया था। अस्तु इस निबन्ध के चिन्तन मनन के समय वही भाव–विचार स्मृति में उभर कर लेखनी का विषय बने हैं। अतः सभी रामायणी लेखक विद्वानों एवं प्रवचनकारों के भावों का प्रसाद ग्रहण कर यह निबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। वस्तुतः "साधूच्छिष्टं हि मे सर्वम्" की सूक्ति चरितार्थ हो रही है। यह संभव नहीं है कि उन सबका पृथक् पृथक् नामोल्लेख किया जा सके। मैं उन समस्त ज्ञाताज्ञात मनस्वियों का हृदय से आभारी हूँ, तथा जिन मनस्वी विद्वानों की रचनाओं के अंश उद्धृत किये गये हैं, उनका विशेष रूप से आभारी हूँ।

मैं "युगतुलसी" उपाधि से विभूषित पद्म–भूषण पं. रामकिंकर उपाध्याय के समग्र ग्रंथों के अध्ययन में प्रवृत्त रहा हूँ। अपने प्रवचनों में भी पूज्य महाराज श्री के भावों का विशेष आधार लेता हूँ। अतः स्वाभाविक है कि इस निबन्ध में अनेक स्थलों पर पूज्य महाराज श्री के भावों की छाया दृष्टिगोचर होगी। पूज्य महाराज श्री के चरणाश्रित भक्तों द्वारा जबलपुर से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका "रामायणम् संस्कृति" के श्रद्धांजलि अंक सं. 26 माह नवम्बर 2002 में मैंने एक छप्पय द्वारा उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि प्रस्तुत की थी। इस निबन्ध के आत्मनिवेदन में उसे पुनः प्रस्तुत करके पूज्य महाराज श्री के प्रति मैं हार्दिक आभार श्रद्धांजलि प्रकट कर रहा हूँ।

हे मेरे गंतव्य गमय गामक गतिदाता ।
परम भागवत संत तत्वविद बुद्धि-विधाता ।।
हे "युग तुलसी" देन तुम्हारी अतुल अनूठी ।
जो जो देंय उपाधि सभी लगती हैं जूठी ।।
आप आप ही सम रहे, कीर्ति सकल दिशि व्यापिनी ।
श्री चरणों में कोटिशः प्रणत सुरेन्द्र रामायणी ।।

इस ग्रंथ के अठारह अध्यायों के अंत में एक परिशिष्ट "चतुर्युग के प्रमुख प्रेमाचार्यों की स्तुति आरती" शीर्षक से संलग्न किया गया है । इसका आधार श्री रामहर्षण–मंडल का अखंड–एकान्तिक–संकीर्तन कार्यक्रम है । एकान्तिक–संकीर्तन के विषय में अध्याय तेरह एवं पन्द्रह में प्रकाश डाला गया है । श्रीरामहर्षण–मंडल का परिचय गुरु–बन्धु श्रीब्रजकिशोरदास के रचित एक श्लोक में प्राप्त होता है ।

हरिनामध्वनिना झंकृतं, विपुलैर्महद्भिर्बन्दितं ।
प्रेम-स्वरूप-प्रदायकं, प्रेमामृतस्यास्वादकम् ।।
श्रीरामहर्षणदेव गुरुणा, पालितं संस्थापितं ।
प्रणमामि परमानंददं, श्रीरामहर्षण मण्डलम् ।।

श्रीरामहर्षण–मंडल के विशिष्ट आयोजन अखण्ड–एकान्तिक संकीर्तन के प्रारंभ में चारों युगों के प्रमुख प्रेमाचार्यों का षोड़शोपचार पूजन सम्पन्न किया जाता है। उसमें सभी प्रेमाचार्यों का पृथक् पृथक् आवाहन वंदना–स्तुति करके पूजनोपरान्त उनकी सामूहिक रूप में आरती सम्पन्न की जाती है। इसके लिए श्रद्धेय भइया श्री वाल्मीकि प्रसाद मिश्र मानस–केशरी जी ने दो दो पंक्तियों में स्तुतियों की रचना की थी। इन स्तुतिओं को परिवर्द्धित करके छप्पय रूप में परिशिष्ट भाग में प्रकाशित किया गया है।

श्रीरामहर्षण–मंडल के गण्यमान विद्वत्–वर्ग में रीवा के अवस्थी–दम्पति डा० गंगानारायण अवस्थी, एम.ए., एम.एड., एलएल.बी., डी.एच.पी एवं डा० श्रीमती ज्ञानवती अवस्थी, एम.ए., पी.एच.डी. उल्लेखनीय हैं। इन दम्पति द्वारा अनेक शोधार्थियों के पी. एच. डी. शोध–प्रबन्धों का निर्देशन एवं संशोधन सम्पन्न किया गया है। तदनुसार मैंने भी अपना यह लघु प्रबन्ध उनके समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने अमूल्य समय में इस प्रबन्ध का भाषागत संशोधन सम्पन्न करने की महती कृपा की। इस प्रकार इस प्रबन्ध के प्रस्तुतिकरण में संतप्रवर श्री अवधकिशोरदास जी के "श्रीहर्षण– लीला–पीयूष" वरिष्ठ गुरु बन्धुवर श्री हरिगोविन्ददास द्विवेदी जी लिखित "चतुर्धाम– यात्रा–वृत" तथा श्री अवस्थी–दम्पति का महत्वपूर्ण योगदान है। दूसरे शब्दों में यदि यह कहें कि यह श्रीरामहर्षण–मंडल का सामूहिक सत्प्रयास है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अस्तु इस विषय में आभार प्रकट करना अनौचित्यपूर्ण प्रतीत होता है, जैसे यदि अपने सिर में खुजलाहट उठे तब अपना हाथ उसे खुजला दे तो क्या सिर अपने हाथ के प्रति आभार प्रकट करे कि तुमने मुझे खुजलाकर कृतज्ञ कर दिया है ? ठीक ऐसी ही स्थिति

अपने समस्त वरिष्ठ गुरुबन्धुओं के प्रति यह दास अनुभव कर रहा है।

मेरे मान्य उक्त महानुभावें ने तथा मंडल के सकल विधि कैंकर्य–निपुण बाल ब्रह्मचारी संत श्री भगवान दास जी ने इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि का अनुशीलन करके इसके विषय में अपना शुभाशीषमय अभिमत प्रदान कर ग्रंथ को महिमा मंडन करके मुझे पुनः कृतार्थ किया है। ये चारों शुभाशीष मेरे लिए ''चारि पदारथ भरा भँडारू'' तुल्य बन गये हैं। इन्हें ग्रंथ के प्रारंभ में प्रकाशित किया गया है।

अब ग्रंथ की प्रकाशन प्रक्रिया प्रारंभ हुई। वर्षों पूर्व मेरा प्रथम ग्रंथ ''पौड़ी की श्रीसीताराम विवाहोंत्सव समैया पद्धति'' मेरी हस्तलिपि की पाण्डुलिपि से मुद्रित हो गया था। अब वैज्ञानिक विकास के युग में मुद्रकों ने पाण्डुलिपि को कम्प्यूटर पर टाइप कराकर उसकी सी.डी. समेत प्रस्तुत करने को कहा। इस कम्प्यूटरीकरण कार्य में मेरा कनिष्ठतम पुत्र चिरंजीव आनंद निपुण है। परन्तु वह रायपुर (छत्तीसगढ़) मंत्रालय में शासकीय सेवा में नियुक्त है। हम दोनों के निवास की दूरी का व्यवधान प्रकाशन के विलम्ब का कारण बना। चार छह माह में उसका सतना आना जाना हो पाता था। वह जब टाइप की हुई प्रतिलाता था, तो तीन बार के प्रयास में टाइप की हुई शुद्धप्रति तैयार हो पाई, किन्तु इस लम्बी प्रक्रिया में ग्रंथ का प्रकाशन प्रायः डेढ़ वर्ष विलम्बित हो गया। ग्रंथ के प्रकाशन का गुरुतर भार श्रीरामहर्षण मंडल सतना ने सँभाल लिया। संप्रति मंडल के सक्रिय सदस्यों में प्रमुख है श्री चिन्तामणि त्रिपाठी, श्री सनतकुमार मिश्र, श्री अनुराग द्विवेदी, श्रीरमाशंकर निगम, श्री लक्ष्मी प्रसाद गर्ग, श्री रमाकांत मिश्र, श्री छोटे लाल दुबे, श्री विकास शुक्ल, श्री विवेक श्री जगदीश खरे, श्रीमती सुधा सिंह, श्रीमती शीला दुबे आदि श्रमपूर्ण मुद्रण कार्यहेतु मेरे गुरुबन्धु श्रीरमा शंकर निगम विशेष सहायक बने। इस कार्य में मेरा द्वितीय पुत्र चिरंजीव विवेक संगीत प्रभाकर उनका सहयोगी बना।

मेरे ज्येष्ठ पुत्र चि. संतोष तथा तृतीय पुत्र चि. अनुराग ने भी अपने स्तर पर सक्रिय कार्य सम्पन्न किया।

आर्थिक व्यवस्था में मेरे गुरु बन्धु श्री रमेश कुमार त्रिपाठी रीवा, श्री दुर्गा प्रसाद अग्रवाल रायपुर, श्री बाबूलाल विश्वकर्मा सतना, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त प्रधानाध्यापक श्री रुद्र सिंह यादव देवेन्द्र नगर (पन्ना) आदि ने योगदान दिया।

इस बीच सौभाग्य से श्री गणेशोत्सव समारोह में प्रवचन करते हुए मेरा सम्पर्क आवासीय सरस्वती विद्यापीठ, सतना के व्यवस्थापक महोदय श्री सम्पत कुमार धूत (माहेश्वरी) जी से हो

गया था। उनका सतना आर्ट प्रिंटर्स अनेक धार्मिक ग्रंथों का उल्लेखनीय प्रकाशन करते हुए नगर में विख्यात है। उनके सौजन्य से मेरे इस ग्रंथ का मुद्रण कार्य अल्प व्यय में भली भाँति प्रशंसनीय रूप में सम्पन्न हुआ है। तदर्थ मैं हार्दिक रूप से उनका आभार प्रकट करता हूँ।

श्री आचार्य महाप्रभु की अहैतुकी कृपा से लिखे गये इस ग्रंथ को श्रीरामहर्षण–मंडल की सेवा में समर्पित करते हुए संतों की यह उक्ति स्मृतिपटल पर उभरी–

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।

तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ।।

तदनन्तर महात्मा दादूदयाल की यह उक्ति सटीकलगी–

तन भी तेरा, मन भी तेरा, तेरा पिण्डरु प्रान ।

सब कुछ तेरा, तू ही मेरा, यह दादू का ज्ञान ।।

पुनः वैष्णवरत्न रूपकला जी के शब्दों में जब भक्त का सब कुछ प्रेमास्पद का ही है, तो वह उसे क्या अर्पण करे ।

प्राण तोर, मैं तोर, मन, बुधि, चित, यश तोर सब ।

एक तु ही तो मोर, काह निवेदौं तोहिं पिय ।।

इस ग्रंथ के लेखन काल में मुझे निरन्तर श्रीभरत–चरित्र लेखन के बहाने उन प्रेममूर्ति महाभागवत के चिन्तन में निरत रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं धन्यातिधन्य बन गया । मेरा विश्वास है कि जो सुधी पाठक इस निबन्ध का दत्तचित्त होकर पूर्णमनोयोग से अनुशीलन करेंगे, वे भी श्रीभरत–चरित्र की फलश्रुति के अनुसार प्रभु–प्रेम प्राप्त कर परम श्रेय के भागी बनेंगे।

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।

सीयराम पद प्रेमु, अबसि होइ भवरस बिरति ।। 2/326

प्रेमोन्मत्तानां किंकरः

कौशल किशोर दासः

(सुरेन्द्र रामायणी)

प्रभु पाँवरी उपासक श्रीभरत जी

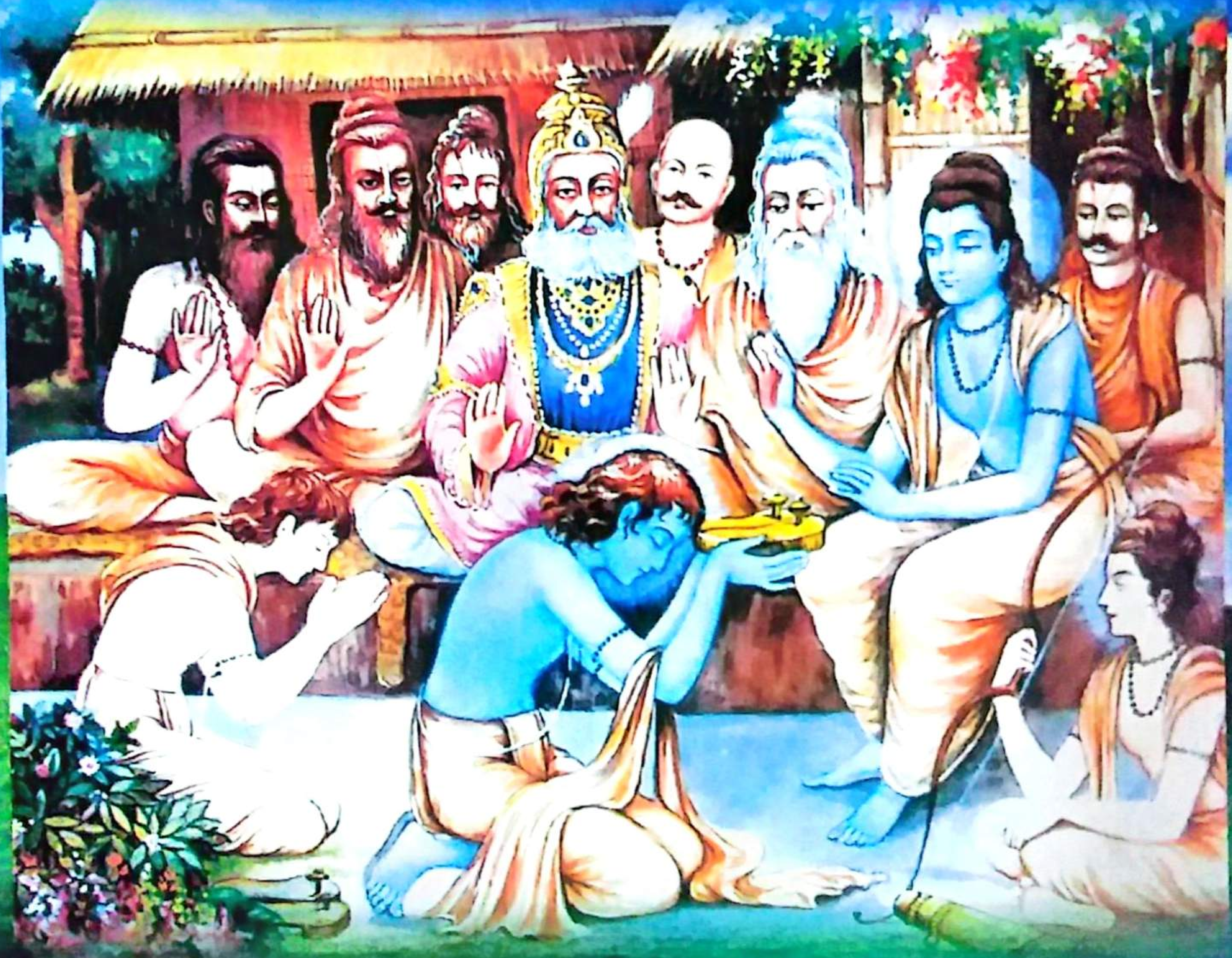

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।

प्रभु पनहियों की उपासना मैं संलग्न
श्री लक्ष्मीनिधि व सिद्धि जी

वन्दे तं हि रसाकारं रामोपानत्प्रपूजकम

ॐ गुं गुरवे नमः

सब बिधि भरत सराहन जोगू

अध्याय – एक

प्रेमैव परमेश्वरः

श्रीराम पादद्वय पादुकान्तं, संसक्तचित्तं कमलायताक्षम्।
श्यामं प्रसन्न वदनं कमलावदाभं, शत्रुघ्नयुक्तमनिशं भरतं नमामि।।

ब्रह्म अनिवर्चनीय है। वह "एकमेवाद्वितीयम्" है। अर्थात् उस जैसा कोई नहीं है। अस्तु अनुपमेय है। श्रीमद् भगवद्गीता में जिज्ञासु अर्जुन ने भगवान कृष्ण का विराट विश्वरूप देखने के पश्चात् आश्चर्यचकित दशा में निवेदन किया।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोन्यो, लोकत्रयेऽप्यप्रतिम प्रभाव। 11/43

अर्थात् हे अनुपम प्रभाव वाले परम पुरूष तीनों लोकों में आपके समान दूसरा कोई नहीं है। फिर अधिक तो कोई कैसे हो सकता है। यजुर्वेद में भी यही उद्घोष है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति नाम महयशः। यजुर्वेद 32/3

श्रीमद्भागवतमहापुराण में परम हंस शुकदेव जी कहते हैं।

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्जयाऽऽत्त, लीलातनोरधिक साम्य विमुक्त धाम्नः।
रक्षोवधोजलधिवन्धनमृस्त्रपूगैः, किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ।। 9/11/20

अर्थात् हे परीक्षित् भगवान के समान प्रतापशाली और कोई नहीं है। फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओं की प्रार्थना से ही यह लीला विग्रह धारण किया था। ऐसी स्थिति में रघुवंश शिरोमणि भगवान श्री राम के लिये यह कोई बड़े गौरव की बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र शस्त्रों से राक्षसों को मार डाला या समुद्र पर पुल बाँध दिया। भला, उन्हें शत्रुओं को मारने के लिये बंदरों की सहायता की भी आवश्यकता थी क्या ? यह सब उनकी लीला ही है। श्रीरामचरित मानस में तपोपूत महर्षि अत्रि यही बात कहते हैं –

जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ताकरसील कस न अस होई।। 3/6/8

श्री राम के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए श्री काकभुसुंडि अपने श्रोता गरूड़ जी से इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं।

निरूपम न उपमा आन, राम समान रामु निगम कहै ।
जिमि कोटिसत खद्योत सम रबि, कहत अति लघुता लहै।। 7/92 /छंद

जब महाराज स्वायंभुव मनु की सुदीर्घकालीन तपस्या से द्रवित होकर परात्पर परब्रह्म सर्वव्यापी परमप्रभु ने उनके मनोवांछित स्वरूप सौन्दर्य सुधा सागर कोटिकाम कमनीय नयनाभिराम श्रीरामरूप दर्शन कराने के उपरान्त बरदान माँगने को कहा, तब स्वायंभुव मनु ने याचना की

दानि शिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सति भाउ ।
चाहउँ तुम्हहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ ।। 1/149

प्रत्युत्तर में कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुं समर्थ प्रभु भगवान राम स्वयं उनके पुत्र रूप में अवतार ग्रहण करने का वचन देते हैं।

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ।। 1/150/2

उदार शिरोमणि प्रभु ऐसा अनुपम वरदान देकर भी संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने विचार किया कि महाराज मनु की याचना में तो समान पुत्र की चाह है। यदि मैं अकेला गया अपने समान पुत्र न ले गया तो याचनानुसार शब्दशः पूर्ति न होगी। निदान उन्होंने विचार किया कि भक्तगण मेरे प्रेमतत्व को मेरे प्रतिरूप तत्सम मान्यता देते हैं। प्रसिद्ध उक्ति है–

प्रेम हरी को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
दोनों मिलकर यों लसैं, ज्यों सूरज अरू धूप।।

चैतन्य चरितामृत में प्रेम को पंचम पुरूषार्थ या परम फल कहा गया है –

पंचम पुरूषार्थ सेई प्रेम महाधन ।
कृष्णेर माधुर्य रस कराय आस्वादन ।।

अर्थात् भगवान कृष्ण के माधुर्य रसास्वादन का एकमात्र साधन प्रेम है। अतः उसे चारों पुरूषार्थों से भी परे पंचम पुरूषार्थ अथच परम पुरूषार्थ कहा गया है।

जाको लहि कछु लहन की चाह न हिय महँ होय ।

जयति जगत पावन करन, प्रेम बरन यह दोय ।।

सत्य नारायणं "कविरत्न" – ने कहा है –

निरत विचारन जोग, रूचत उपदेश यही उर ।

परमेसुर मय प्रेम, प्रेम मय नित परमेसुर ।।

जब भक्त ईश्वर कृपा से शुद्ध प्रेम के दिब्य प्रकाश को पाकर बिषयाभिमुखी प्रवृत्ति को ईश्वराभिमुखी करने में समर्थ हो जाता है, तब हृदय की सहज प्रवृत्ति राग की वासनात्मक अवस्था का उन्मुखीकरण करके भावनात्मक अवस्था में अनुराग स्थित हो जाता है। उस अवस्था की संज्ञा "प्रेम" है। "त्वं" का "अहं" पर उत्सर्ग अर्थात् "त्वं" का "अहं" के लिये प्रयोग "मोह" है। और "अहं" का "त्वं" के लिये उत्सर्ग अर्थात् "अहं" का "त्वं" की सेवा में नियोजित कर देना "प्रेम" है। मोह में स्वार्थ और लोभ छिपा रहता है, जब कि प्रेम में त्याग और उदारता की भावना रहती है। मोह वासना प्रधान होता है, प्रेम समर्पण प्रधान। स्वत्व की समाप्ति जितनी अधिक होगी प्रेम उतना ही तीव्र होगा। प्रेम में अहं भाव का लेश मात्र भी स्थान नहीं है।

पीवा चाहै प्रेम रस – राखा चाहै मान।

एक म्यान में दो खड़ग – देखा सुना न कान।।

प्रीति सु ऐसी जान – काँटे की सी तौल है।

तिल भर चढ़े गुमान – तौ मन सूई डगमगै।।

प्रेम एक महायज्ञ है। समस्त स्वार्थ इस महायज्ञ में आहुत करने को तत्पर हुए बिना प्रेम यज्ञ पूर्ण नहीं होता प्रेम ही मानव चेतना का विकास करके उसे विश्व चेतना में प्रतिष्ठित करता है। प्रेम से ही मानव महामानव बन जाता है। साधक जब पंच कोशों—अन्नमय कोश, मनोमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश की साधना सम्पन्न करने के उपरान्त अंतिम आवरण आनन्दमय कोश का अनावरण करने में समर्थ हो जाता है तब उस आनन्द मय कोश के केन्द्र बिन्दु प्रेमानन्द' को प्राप्त करता है। यह प्रेमानन्द ब्रह्मानंद से अनन्त गुना श्रेष्ठ होता है।

आचार्य श्री रूप गोस्वामी अपने "हरिभक्ति रसामृत सिन्धु" में प्रतिपादित करते हैं कि ब्रह्म की आयु के पचास वर्ष पर्यन्त समाधि में ब्रह्मानन्द का अनुभव भक्ति–सुधा– समुद्र के लघुतम् परमाणु के बराबर तुलनीय नहीं है।

ब्रह्मानन्दों भवेदेष चेत्पराई गुणी कृतः ।

नैति भक्ति सुखाम्भोद्यैः परमाणु तुलामपि ॥

अस्तु प्रेम भूलोक का अमृत है। इसकी एक बूँद भी प्राप्त हो जाने पर जीवन धन्य हो जाता है। जबकि इससे तृप्ति तो होती ही नहीं है। सत्यनारायण "कवि रत्न" प्रेम के लक्षण अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं।

अगम अनिर्वचनीय परे जासों कछु बसना ।

बरनत रस रमनीय रहत रसना में रसना ।

अचला अवसि रतन गर्भा बसुमती सुहावति ।

किन्तु प्रेम रस मती धारि यह रसा कहावति ॥

अर्थात् यह प्रेम रस अगम्य है, वर्णनातीत है। इस रमणीय रस का पूर्ण वर्णन करने में रसना भी असमर्थ है। वर्णन इस लिये सम्भव नहीं कि वर्णन करते समय रसना ने तो प्रेम रस का रसास्वादन किया ही नहीं है। तो वह रसहीन रसना प्रेम तत्व का रसास्वादन अन्य को कैसे करावे। पृथ्वी नाना रत्नों की आकर होने से अवश्य ही रत्नगर्भा बसुमती संज्ञा से सुशोभित है। किन्तु इसे "रसा" संज्ञा तो प्रेम रस से ओत प्रोत होने के नाते ही प्राप्त हुई है।

प्रेम रस इसलिये भी वर्णनातीत है कि प्रेम की प्राप्ति हुए बिना तो कोई शुद्ध प्रेम को जानता नहीं और प्रेम प्राप्ति हो जाने पर वह अपने मन से हाथ धो बैठता है। अब वर्णन करे तो कौन? इसी प्रकार जैसे जल में ऊपर ही ऊपर डूबने उतराने वाला तो बोल सकता है, पर जो गहरे जल में निमग्न है वह कैसे बोलेगा।

डूबै सो बोलै नहीं - बौले सो अनजान ।

गहरो प्रेम समुद्र कोउ डूबै चतुर सुजान ॥

प्रेम रस के वर्णनातीत होने के तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस सर के मधुर जल की उपमा देते हुए इस प्रकार भावाभिव्यक्ति की है।

प्रेम भगति जो बरनि न जाई ।

सोइ मधुरता सुसीतलताई ॥ 1/36/06

प्रेम लक्षणा भक्ति की ब्याख्या महात्मा सुन्दर दासजी के शब्दों में

कबहूँ हंसि उठि नृत्य करै, रोवन फिर लागै ।

कबहूँ गदगद कंठ शब्द निकसै नहिं आगै ।।
कबहूँक हृदै उमंग बहुत ऊंचे सुर गावै ।
कबहुँक हवै मुख मौन गगन जैसों रहि जावै ।।
चित्त बित्त हरि सों लग्यो सावधान कैसे रहै ।
यह प्रेम लक्षणा भक्ति है, शिष्य सुनो "सुन्दर" कहै ।।

बिना मौत के ही जीवन मरण के बीच की दशा है किन्तु क्या यह दशा भूत–ग्रस्त की भाँति दुख दायक है ? ऐसा सोचना भी महान अनर्थकर होगा। अरे प्रेमी भक्त का रोना भी तो आनंद परिपूर्ण होता है। उसके तीव्र ताप और ज्वाला की जड़ में एक रसमयी शीतलता ही है। उसका दुख व वेदना भी प्रेम भाव की अनुभूति ही है। हर दशा में सदा सर्वदा प्रेमानंद ही है यह प्रेम का नशा चढ़ने पर अन्य किसी नशे की आवश्यकता नहीं रह जाती। महात्मा कबीर के शब्दों में –

कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय ।
रोम रोम में रम रहा और अमल क्या खाय ।।

देववाणी संस्कृत का कवि जब काव्य रस की नाना भाव तरंगों का निरूपण करता है तो वह देखता है कि प्रेम में तो काव्य के सभी रस एवं भाव समाहित हो गये हैं। कथन दर्शनीय है।

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंग इव वारिधौ ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेम संज्ञकः ।।

उक्त कथन सचमुच प्रेम रस का सच्चा परिचायक है। यथार्थ ही प्रेम में समस्त रस तथा समस्त भाव उसी प्रकार तरंगित होते रहते हैं जैसे समुद्र में नाना लहरें उठती तथा लय होती रहती हैं। प्रेम इस एक शब्द में ही समस्त जीवन की परिधि आ जाती है। यह एक शब्द ही बृहद् ग्रन्थ के समान है। प्रेमी के एक आँसू में विशाल वारिधि लहराता है। उसकी एक–एक आह विशाल बवण्डर उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखती है। उसका स्पर्श मात्र विद्युत के समान प्रभावशाली होता है। उसके एक–एक क्षण का मूल्य एक कल्प के समान होता है। क्या अनोखा सामंजस्य है ? आनंद और वेदना दोनों का केन्द्रीकरण एक साथ देखना है, तो प्रेम को देखें। वस्तुतः प्रेम में ही जीवन का हर पहलू है। दूसरे शब्दों में प्रेम और जीवन एक ही वस्तु के दो

नाम हैं। रसखान के अनुसार प्रेम अपरिमेय सागर ही तो है जो सभी रसों का आकर है। इसमें निमग्न होने पर वापिस निकलने का प्रश्न ही नहीं रहता है।

प्रेम अमिय अनुपम अमित – सागर सरिस बखान ।
जो आवत एहि ढिंग बहुरि – जात नहीं रस खानि ॥

ऐसी एक निष्ठ, कामना शून्य, अव्यभिचारी, अनन्य गतिक भावदशा में अन्य के लिये तिलमात्र स्थान नहीं। रहीम जी के शब्दों में –

प्रीतम छबि नैनन बसी – पर छवि कहाँ समाय ।
भरी सराय रहीम लखि – पथिक आप फिरि जाय ॥

महात्मा कबीर के शब्दों में –

कबिरा काजर रेख हूँ – अब तो दई न जाय ।
नैननि प्रीतम रमि रहो – दूजो कहाँ समाय ॥

काजल तो फिर भी साकार था। उन अनन्यानुरागी आँखों में निराकार नींद तक के लिये स्थान नहीं रह जाता।

आठ पहर चौंसठ घरी – मेरे और न कोय ।
नैनों माँही तू बसै – नींदहिं ठौर न होय ॥

यह दिव्य प्रेम–पथ किसी सीमा, मर्यादा, देशकाल, रूपरंग जाति वर्ण आदि के बन्धन में नहीं बँधा। प्रेम कोई व्यवधान मानता ही नहीं। कर्म कांडादिक अन्य साधनों की भाँति–अधिकारी अनाधिकारी का प्रश्न नहीं उठाता। सभी संकीर्णताओं से परे वह सर्वकाल में सुलभ, सर्वदेशीय, सार्वजनिक एक रस अचल साधन है।

संत सभा की अनुपम आम्र वाटिका में श्रद्धा की सुहावनी बसंत ऋतु के समागम से विविध विधान युक्त भक्ति निरूपण एवं तत्संबंधी सद्‌गुण क्षमा, दया, दम आदि से रचित लता–मंडप में, शम, यम, नियम के मंगलमय पुष्प खिले, फलस्वरूप कल्याणकारी ज्ञान फल का प्रादुर्भाव हुआ। स्वाभाविक है कि इस दिव्य फल का रस अनुपम, मधुरतम एवं अलौकिक होगा। इस अमृतोपम रस की संज्ञा है "हरि पद रति"। स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है कि हरि पद रति सीधे शब्दों में भगवत्प्रेम ही ज्ञान–फल का रस क्यों निरूपित किया गया है ? इसे समग्र कर्मकाण्ड के पुष्प से उत्पन्न ज्ञान फल का रस क्यों माना गया है ?

सम यम नियम फूल फल ग्याना – हरिपद रति रस वेद बखाना ।।

1/37/14

इस रति शब्द पर विचार करते हुए यह देखना है कि इसका पर्यायवाची प्रेम कैसे बनता है?

समस्त जड़ चेतन जगत में प्रभु का दर्शन करने का भाव आ जाने पर मानव अन्तःकरण की सहज वृत्ति राग परिष्कृत होकर प्रेम बन जाती है। द्वेष का पूर्ण अभाव हो जाता है। उस दशा में उन तत्वों से उन तत्वों के नाते राग द्वेष न रहकर भगवद्धारणा करते हुए तत्सम्बन्ध के कर्त्तव्य पालन में जीव प्रवृत्त होता है। तब वह अपने लिये कार्य नहीं करता प्रभु का कार्यवाहक बन जाता है। फलस्वरूप जो रति जगत विषयक होने पर सबसे निम्न भाव की है, वही रति जब भगवद् विषयक हो जाती है, तो सबसे ऊपर की स्थिति को जाती है।

इस प्रेम–पथ पर अग्रसर होने वाला विश्व प्रेमी ही ईश्वर का अनन्य भक्त कहलाता है। स्वयं प्रभु राम ने अपने श्री मुख से योग्यतम अधिकारी पवन–पुत्र हनुमान को इस महामंत्र का उपदेश दिया है।

सो अनन्य जाके असि– मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।। 4/3

इस प्रेम में दूसरों के दुर्गुण नहीं सद्‌गुण दिखाई देते हैं। दोष–दर्शन जो सारे झगड़ों की जड़ है, स्वतः दूर हो जाता है। जब सभी उसके प्रेमास्पद ही हैं, तो क्या उनमें भी वह दोष देखेगा। वह तो चातक की भाँति बन जाता है।

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की तातें नाप न जोख ।। दोहावली–281

प्रेमी को गुण दोष देखने का अवकाश ही कहाँ है। प्रेम तो तीनों गुणों के दायरे से परे गुणातीत होता है, जिसमें अंधकार है ही नहीं, केवल पूर्ण प्रकाश है। अज्ञान नहीं है, ज्ञान का ही साम्राज्य है। शोक का लवलेश नहीं, अखण्ड आनंद है। यह दृष्टि यदि आज विश्व में व्याप्त हो जावे तो सारे अनर्थों का विवाद शान्त हो जावे। पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, व्यक्तिवाद, आदि विविध वादों का एवं सभी प्रकार की संकीर्णताओं का एक मात्र समाधान यदि कहीं है तो यही उत्सर्ग भावना से ओतप्रोत प्रेम है। युद्ध की विभीषिका से ग्रस्त विश्व को यदि कहीं शान्ति

की धारा प्रवाहित प्रतीत होती है, तो वह इसी दिव्य प्रेम तत्व में है। प्रेम ही मानव चेतना का विकास करके उसे विश्व चेतना में प्रतिष्ठित करता है। प्रेम से ही व्यक्ति महामानव बन जाता है। इस प्रेम में मेरा–तेरा, गरीब–अमीर, ऊँच–नीच, जाति–पाँति, भाषावाद, प्रान्तीयवाद, संकीर्ण राष्ट्रवाद आदि का कोई व्यवधान ही नहीं रह जाता। इस प्रेम–पथ पर अग्रसर होने वाला विश्व प्रेमी ही ईश्वर का अनन्य भक्त कहलाता है –

सो अनन्य जाके असि - (पूर्वोक्त)

इस सबंध में महर्षि पतंजलि योग विद्यापीठ के संस्थापक आचार्य स्वामी रामदेव के विचार मननीय हैं।

"प्रेम जीवन का उपहार है जीवन की आवश्यकता है। प्रेम जब हृदय से स्फुटित होता है तो जीवन में सहज समर्पण होता है। प्रेम के प्रतिरूप हैं करूणा, ममता, वात्सल्य, सेवा, सद्भाव, धैर्य और माधुर्य। इसलिये माँ बच्चे से प्रेम करती है और अपनी ममता, वात्सल्य, करूणा व समर्पण से उसको सींचती है। गुरू–शिष्य, पिता–पुत्र, और दो मित्रों का प्रेम हमारी सामाजिक अध्यात्मिक व्यवस्था का हिस्सा है। दुर्भाग्य से प्रेम की जगह आज वासना ने ले ली है। प्रेम में जीवंतता है, वासना प्रेम की हत्या है। प्रेम का केन्द्र हृदय है, वासना का केन्द्र भोगेन्द्रियाँ हैं। प्रेम जीवन स्तर को उठाता है, वासना गिराती है। प्रेम होशपूर्ण अवस्था है वासना विवेक शून्यता है। प्रेम में प्रसाद है, वासना में अवसान है। प्रेम से ही जीवन का सन्तुलन है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी जीवन लक्ष्यों में भी संतुलन जरूरी है। संतुलन बिगड़ने पर धर्म के पागलपन से उन्माद, अर्थ के पागलपन से भ्रष्टाचार, काम के पागलपन से व्यभिचार एवं मोक्ष के प्रति पागलपन से पलायनवाद पैदा हो जायेगा।"

प्रेम द्वैत–अद्वैत दोनों से विलक्षण स्थिति है। वह द्वैत होते हुए भी अद्वैत एवं अद्वैत होते हुए भी द्वैत तो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता ही है। यह अलौकिक अनिर्वचनीय अवस्था है। यहाँ न भेद है न अभेद, दोनों से परे फलरूपा स्थिति है। ऐसे ही अन्तर्बाह्य ऐक्यमय प्रेम की रहीम सराहना करते हैं।

रहिमन प्रीति सराहिए मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै तजै सफेदी चून ।।
रहिमन प्रीति न कीजिए जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला- भीतर फाँकें तीन ।।

प्रेमी प्रेमास्पद की यह तदाकारता, तन्मयता अद्वैत से विलक्षण है। इसी भाव को देवर्षि नारद अपने भक्ति सूत्र में

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव श्रृणोति तदेव भाषयति ।
तदेव चिन्तयति ॥ सं. 55

द्वारा प्रकट करते हैं, जिसकी व्याख्या हेतु प्रेम रस से ओत प्रोत दोहे दृष्टव्य हैं।

कहि न जाय मुख सौं कछू – स्याम प्रेम की बात ।
नभ, जल, थल, चर, अचर सब – स्यामहिं स्याम दिखात ॥
ब्रह्म नहीं माया नहीं, नहीं जीव यह काल ।
अपनी हूँ सुधि ना रही – रह्यो एक नंद लाल ॥
को कासों केहि विधि कहो – कहै हृदय की बात ।
हरि हेरत हिय हरि गयो – हरि सर्वत्र दिखात ॥

प्रेम में दो जीव निर्जीव की भाँति एक और एक दो नहीं बनते, प्रत्युत् सजीव होने के नाते एक और एक मिलकर ग्यारह बन जाते हैं। बल्कि यह कहें कि प्रेमानन्द सागर में निमग्न होने पर दो आत्मायें एक ही हो जाती हैं। प्रेमी का अस्तित्व प्रेम पात्र के अस्तित्व में समाहित हो जाना ही प्रेम है। इसे प्रेमाद्वैत या रसाद्वैत भाव कहते हैं। प्रेम, प्रेमी, प्रेमास्पद देखने में तीन होने पर भी वास्तव में एक हो जाते हैं।

त्रिधाप्येकं सदागम्यं गम्यमेक प्रभेदने ।
प्रेम प्रेमी प्रेम पात्रं त्रितयं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥

शास्त्रों में "प्रेमैव परमेश्वरः" कहा गया है। प्रेम और ईश्वर की समरूपता के विचारक दोनों को अनिर्वचनीय मानते हैं। दोनों "नेति–नेति" शब्दों द्वारा अग्राह्य हैं। ईश्वर को अखिल विरूद्ध धर्माश्रयी" कहा गया है। एक ओर वह "अणोरणीयान्" है तो साथ ही "महतोमहीयान्" है। श्रुतियाँ उसे "तददूरेतदन्तिके" अत्यन्त दूर साथ ही अत्यन्त पास एवं तदेजति तन्नेजति (ईशावास्योपनिषद नं. 5) कहती है।

ठीक ऐसे ही प्रेम भी अखिल विरूद्ध धर्माश्रयी है। उसकी गति विचित्र है भक्त भगवत्रसिक कहते हैं।

अरबरात मिलिबे कहँ निसिदिन

मिलेहिं रहत मानों कबहुँ मिले ना ।

"भगवत रसिक" रसिक की बातें

रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना ।।

इस प्रकार प्रेम में संयोग एवं वियोग अर्थात् सुख एवं दुख का परिपूर्ण रसास्वाद एक साथ होता है। अतएव प्रेम में ईश्वर की तरह ही समस्त विरोधाभास एक साथ दृश्यमान होते हैं।

निष्कर्ष रूप में प्रेम धाम वृन्दावन से प्रकाशित पत्रिका "प्रेम सन्देश" के मुख–पृष्ठ में उद्धृत किए जाने वाले प्रेम महिमा प्रतिपादक श्लोक के साथ इस अध्याय का समापन करते हुए प्रेम की प्रतिष्ठा विषयक महाकाव्य "प्रेम रामायण" के सन्दर्भ अग्रिम अध्याय में प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

प्रेमैव परमो धर्मः प्रेमैव परमागतिः ।

प्रेमैव परमं धाम प्रेमैव परमेश्वरः ।।

अध्याय – दो

प्रेम में परमेश्वर की प्रतिष्ठा

उल्टीं पुल्टीं करीं, अखिल जग की सब भाषा ।
पै अबलौं नहिं बनीं, प्रेम पूरी परिभाषा ।।

सत्यनारायण "कविरत्न"

प्रेम तत्व सम्बन्धी जिज्ञासा के समाधान हेतु सर्वप्रथम देवर्षि नारद प्रणीत भक्ति–सूत्र का समाश्रयण समीचीन प्रतीत होता है। अस्तु कतिपय नारदीय भक्ति सूत्रों का अवलोकन करें।

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः {1} सा त्वस्मिन परमप्रेम रूपा {2}
अमृतस्वरूपा च {3} यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धोभवति, अमृतोभवति,
तृप्तो भवति {4} यत् प्राप्य न किञ्चित् वाञ्छति, न शोचति,
न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति {5} यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति,
स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति {6} ॐ अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् ।।

अर्थात् भक्ति परम प्रेम स्वरूप है। अमृत स्वरूप है। जिसे पाकर भक्त पूर्णकाम या परिपूर्ण हो जाता है, अमर हो जाता है, चिर तृप्त हो जाता है। सिद्धि उसके लिए पूर्ण ईश्वर तन्मयता या पूर्ण ईश्वर शरणागति है। अमरता उसके लिए मृत्यु के भय से पूर्ण मुक्ति है। वह शुद्ध आत्मा हो जाता है। प्रेम कभी परिणाम नहीं है। वह चिरन्तन होता है। तृप्त अर्थात् वह सभी कामनाओं से मुक्त हो जाता है। जिसे प्राप्त करके भक्त अन्य कुछ पाने की इच्छा नहीं रखता। चिन्ता नहीं करता। किसी से द्वेष नहीं करता। किसी अन्य वस्तु से सुख की चाह नहीं रखता। और कुछ अन्य करने हेतु उत्साहित नहीं होता। जिसे जानकर भक्त मतवाला हो जाता है। जड़ पदार्थ के समान सभी क्रियाओं को छोड़ देता है और अपनी आत्मा में ही आनंद पाने लगता है। यद्यपि प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। फिर भी देवर्षि नारद प्रेम विषयक अपनी परिभाषा इस सूत्र में प्रकट करते हैं।

नारदस्तुतदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेतिच । 19

अर्थात् देवर्षि नारद का मानना है कि अपने सभी आचरणों का ईश्वर के प्रति समर्पण और उनकी विस्मृति होने पर परम व्याकुलता ही भक्ति है। अस्तु जिस प्रेमाभक्ति में जीव को अपने

देह की सुधि–बुधि नहीं रहती, वह नित्य निरन्तर परमहंस दशा में निमग्न रहता है। मन की संकल्प–विकल्प की गतियाँ रूक जाती हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहं का पूर्ण विस्मरण हो जाता है। किं बहुना स्वरूपाकार वृत्ति एवं परमानंद में निमग्नता प्राप्त हो जाती है उस प्रेमा भक्ति के सूक्ष्म स्वरूप को वाणी का विषय नहीं बनाया जा सकता। वह कहने, सुनने, समझने से परे है।

इस दुःखालयं अशाश्वतं संसार में प्रेम ही एकमात्र अजर, अमर, अपरिवर्तनशील तत्व है, जो समस्त जीवों में आत्म रूप से परिनिष्ठित अविनाशी चैतन्य सत्ता है। दूसरे शब्दों में प्रेम आत्मा का वह प्रकाश है, जिसके अवलम्बन से प्राणी इस संघर्षमय संसार में दुःख को सुख में, विष को अमृत में, मृत्यु को जीवन में, दुष्ट को सज्जन में, दानव को देव में, एवं नर्क को स्वर्ग में परिवर्तित करने में समर्थ हो जाता है। अस्तु प्रेम ही जीवन की सर्वोच्च्य प्रेरणा है।

प्रेमावतार, पंचरसाचार्य, देवर्षि शिखर संत सम्मान से विभूषित संत प्रवर श्री रामहर्षण दासजी के गीति काव्य "प्रेम–वल्लरी" में प्रभु के तत्सम स्वरूप प्रेम का विस्तृत चित्रण पदे–पदे अवलोकनीय है। कतिपय पदों को उद्धृत करना समीचीन होगा ताकि इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य देव प्रेममूर्ति भरत की झलक पाने में लेखक–पाठक दोनों पात्रता प्राप्त कर सकें। प्रेमवल्लरी के पद संख्या 88 में आचार्य चरण ने प्रभु और उनके प्रेमरस को उसी तरह अभेद निरूपित किया है, जैसे वर्फ और जल को विचारपूर्वक देखा जावे, तो दोनों एक ही सिद्ध होते हैं। प्रभु और उनका प्रेम दोनों ही सर्वसमर्थ सुखदाता हैं। प्रेम रस के बिना ज्ञान, वैराग्य, धर्म, कर्म सब तुच्छ हैं।

प्रेम प्रभुहिं को रूप सुनो भाई ।
प्रभु को जानहु प्रेम स्वरूपा, प्रेमहिं प्रभू अनूप ॥
प्रेम प्रभू है तत्व न कहियत, तनिक न देखत भेद ।
प्रेम पथिक मर्मज्ञ बतावत, संत शास्त्र वद वेद ।
यथा वर्फ अरू जल जग देखियत, एकहिं किये विचार ।
तथा प्रभू प्रगटत उर भीतर, प्रेम रूप रसवार ॥
सब समर्थ दूनहुँ सुखदायक, तिन बिन सर्वस छूँछ ।
हर्षण विरति विवेक जरै सब, धर्म कर्म सब तूछ ॥

(प्रेम वल्लरी पद सं. 88)

अध्यात्म के सभी साधन प्रेम प्राप्त कराने में एकदम असहाय सिद्ध हो जाते हैं। कर्मयोग, अष्टांग योग, ज्ञान, वैराग्य, उपासना आदि की साधना करोड़ों कल्पों तक करते रहने पर भी प्रभु प्रेम का लवलेश भी सुलभ नहीं होता। किन्तु रामकृपा का लवलेश या रसिक प्रेमीजनों का संग मिल जावे, तो हृदय प्रदेश में प्रेम का प्रकाश छा जाता है। तब रोम–रोम में रस की धारा उमड़ पड़ती है। प्रेम के स्पर्श से वज्र भी पिघलकर मोम बन जाता है। चारों ओर आनंद ही आनंद छा जाता है। वेद वर्णित "रसो वै सः" का चतुर्दिक प्रसार होता है। अहं मम का पूर्ण विसर्जन हो जाता है। ऐसी स्थिति वाणी का विषय नहीं। अनिर्वचनीय है।

प्रेम मिलै नहिं कौनेउ साधन, यत्न करै कोउ कोटि हजार ।
कर्मयोग अष्टांग सुयोगा, विरति विवेक उपासन लोगा,
करत करोड़न कल्प बितावै, लहै न प्रीतम प्यार ।।
रसिकन कृपा बिलोकनि भाई, राम कृपा लवलेशहिं पाई,
प्रेम प्रकाशत प्रेमी उर में, रोम रोम रस धार ।।
प्रियतम प्रेम परस जब पावै, वज्रहु पिघल मोम बनि जावै,
नेह नीर अम्बुधि उमड़ावत, बोरत दोउ करार ।।
आनँद आनँद आनँद एका, रहत रसहिं रस अन्यन नेका,
स्थिति करनी पार जहाँ की, "हर्षण" हम न हमार ।।

(प्रेम वल्लरी पद सं. 87)

प्रेम का आसव पीने पर परमानंद रस सिंधु में ऐसी निमग्नता प्राप्त होती है कि "जित देखौं तित श्याममई" दृष्टि बन जाती है। प्रेमी का स्पर्श करने में वासना रूपी चमारिन तथा चिंता रूपी साँपिनि असमर्थ रहती हैं। शोक, मोह, भ्रम, संशय सब समाप्त हो जाते हैं। एक अजीब मस्ती छा जाती है। वेद अपनी विधि–निषेध की मर्यादा प्रेमी पर से उठा लेते हैं। लोक व्यवहार पीछे छूट जाता है। अहं मम का विसर्जन हो जाने से स्वप्न में भी भवरस की छाया नहीं पड़ती। प्रेमी को प्रेम का आसव पिलाने वाला प्रेमास्पद हृदय में पूर्णतः छा जाता है।

आनँद आनँद आनँद आया रे, मै तो प्रेम का आसव पाया रे ।
जित देखौं तित श्याम दिखावत, नयनन नेह समाया रे ।।
चाह चमारिन, चिन्ता साँपिनि, छुअति न हमरी काया रे ।
शोक, मोह, भ्रम, संशय नसि गे, पागलपन तन छाया रे ।।

बिधि, निषेध, श्रुतियन मर्यादा, लोक रीति जो गाया रे ।
मोहिं ते शासन लियो उठाई, बाबल जानि अमाया रे ।।
मैं अरू मोर भूलिगे सिगरे, भवरस स्वप्न न भाया रे ।
"हर्षण" हृदय बस्यो सोई आई, जेहिं ने पेय पिलाया रे ।।

(प्रेम वल्लरी पद सं. 16)

प्रेम महिमा के प्रकाशनार्थ प्रेम वल्लरी गीति काव्य के मात्र तीन पदों का उल्लेख करके उसी संदर्भ में अब प्रेमावतार आचार्य महाप्रभु श्री रामहर्षण दासजी के श्री प्रेम रामायण महाकाव्य की कतिपय पंक्तियों को उद्धृत करने का लोभ भी मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। यों तो समग्र प्रेम रामायण प्रेम रस से सराबोर महाकाव्य है, क्योंकि यह प्रेम नगरी मिथिला के युवराजकुमार प्रेममूर्ति श्री लक्ष्मी निधि की प्रेम गाथा है। उसमें भी ज्ञानकाण्डान्तर्गत प्रेमरस का निरूपण अपने आप में बेजोड़ है। इस काण्ड में प्रेमास्पद भगवान राम अपने प्रिय श्याल मैथिल युवराज कुमार श्री लक्ष्मी निधि को अपने प्रेमी की रहनि दशा एवं प्रेमी की महिमा का दिग्दर्शन कराते हैं। ग्रंथ के विस्तार–भय से अविकल उद्धरण न देकर यत्र–तत्र की कतिपय चौपाइयों को उद्धरण मात्र से संतोष करना पड़ रहा है। अर्थ स्पष्ट समझ में आने के कारण उनकी व्याख्या भी प्रस्तुत नहीं की जा रही है।

तृण सों नीचे बनि रहहिं, तरू सों अधिक सहिष्णु ।
सबहिं मानप्रद भावयुत, सेवहिं जग गुनि विष्णु ।। 59
प्रेम योग रत शम दम धारे । षट् रिपु भगे मानि मन हारे ।।
हर्ष विषाद पार चित भयऊ । शोक मोह भागे भ्रम गयऊ ।।
हृदय ग्रंथि खुलि गई महानी । संशय कटे सकल दुख खानी ।।
कर्म बीज नसि भये खुआरा । निर्भय रहत सदा मम प्यारा ।।
कर्म शुभाशुभ मन सों त्यागी । मम पद प्रीति पगेउ बड़ भागी ।।
जग सों नहिं पावत उदवेगा । पर उदवेग करन नहिं रेंगा ।।

दोहा– मन क्रम बचन पवित्र बनि, रहै सदा निरपेक्ष ।
उदासीन जग सों रहै, मोहिं सों नित सापेक्ष ।। 60
पर दुख दुखी हृदय अति कोमल । पर सुख निज सुख गिनत मनोबल ।।

गुणातीत समता शुचि भारी । छोड़ि पुजापहिं बनेउ पुजारी ।। 62/6–8
प्रेम पुलकि नयनन जल धारी । श्रवत कपोलनि मम अति प्यारी ।।
तन रोमांच कंठ अवरोधा । मानहुँ नेह रूप रस सोधा ।।
प्रेम विभोर जबहिं सो होई । नृत्यन लागत मन मुद मोई ।।
त्याग लाजि गावत सुर ऊँचे । रोवत प्रलपत मम रस कूँचे ।।

दोहा– प्रेम सरोवर पैठि कै, निकसत नाहिं दिखाय ।
अनुपम भावहिं जान को, मैं इक लखऊँ सुभाय ।। 63

तन मन धन रामहिं कर मानी । रामहिं केर जगत जिय जानी ।।
सुनि सुनि प्रेममयी मम बानी । भूलि जात अपनो सब भानी ।।
मम सुख सुखी सहज सुख रासी । मम इच्छा निज चाह प्रकासी ।।
प्रेमिन्ह कह निज नयनन देखी । लिपटि लहत करि प्रीति बिशेखी ।।

दोहा– बूड़त आनँद सिंधु महँ, मम मिलनहिं जियजानि ।
करि सतसंगति सुख सनै, सब साधन फल मानि ।। 65

मम जन जो परबत महँ रहई । पत्थर मित्र बनन तेहिं चहई ।।
बान्धव बंधु बनहिं तस जेते । स्वजन सुखद मृग सावक चेते ।।
बिपति बनै सम्पति तेहि केरी । उत्सव बनत दुसह दुख ढेरी ।।

दोहा– प्रेमी हित असमाधि हूँ, अहै समाधि महान ।
बड़ दुखहूँ सुख सम्पदा, होत हिये महँ भान ।। 66

ताके कर्म अकर्महिं मानो । भुने बीज सम कुंअर सुजानो ।।
जागृत मध्य सुषुप्ति समाना । रहत सुप्रेमी भान भुलाना ।।
जीवत सो पै मृतक स्वरूपा । रहै आत्म रत भाव अनूपा ।।
प्रेमी करैं सकल आचारा । वेद शास्त्र जस कहि निरधारा ।।
कर्त्तापन निज त्यागे रहई । करतेहुँ काज अकरता अहई ।।67–2–7
शास्त्र विरोध न कर आचारा । किंचित मात्र कुँअर मम प्यारा ।।
अन्तर्मुखी वृत्ति गहि लीनी । प्रेम विभोर बुद्धि रस भीनी ।।
मम बिनु जन जिमि जल बिनु मीना । तलफन लगत प्रेम परबीना ।।
परमानंद मगन दिन राती । सोवत शांति संग रस माती ।।

दोहा– परमातम रस नित चखैं, झूलत प्रेम हिंडोर ।
उर लपटाये मोंहि रहत, हर्षण हृदय विभोर ।। 71
रोम रोम तें प्रेम सुजोती । निकसत रहत निरंतर सोती ।।
महाभाव रस छका हमारे । भक्तभाव मूरति तन धारे ।।
भीतर जस जस लहत अनंदा । निरखि निरखि मोहिं निमिकुल चंदा ।।
सो सुख केवल जानत सोई । मो कहँ दुर्लभ वा रस जोई ।।

दोहा– यह सब बरणी रसिक की, सुखद चिन्हारी भूप ।
तासु तनहिं जस चिन्ह रह, सो सब सुनहु स्वरूप ।। 72
तन सौन्दर्य तेजमय भासा । मधुमय जग महँ करै प्रकासा ।।
सकल शरीर सुगंधित होई । जानि परै जग कहँ मुद मोई ।।
रमणी पुंसा मोहन होई । सब कर चित आकर्षत सोई ।। 73–6–8
प्रेमिन पीछे हौं नित डोलौं । तिन पद रज लहि पावन बोलौं ।।
प्रेमिन पदहिं परसि सुरसरिता । होत पुनीत महामुद करिता ।।

दोहा– जहँ जहँ प्रेमी पग धरैं, तहँ तहँ तीरथ होय ।
सकल पाप मोचन करैं, मोह नसै थल जोय ।। 75
जो बोलैं सो श्शास्त्र कहावै । तेहिं पथ चलत जीव सुख पावै ।।
जो कछु कहहिं हमारे दासा । सो सत कर्म मोक्ष पर कासा ।।
प्रेमी संत सेव जो सरहीं । सो मोहिं सब बिधि वश महँ करहीं ।।
प्रेमी सत सत मोर स्वरूपा । तनिक भेद नहिं निमिकुल भूपा ।।

दोहा– बिपुल बड़ाई भक्त कहँ, देउँ जगत के बीच ।
ब्रह्मादिक पूजन करैं, सुर नर मुनि रस सींच ।। 76
अतुलित महिमा भक्त की, को जग जानन हार ।
वशी रहत तिन के सदा, हौंहू जातो हार ।। 78
प्राणाधिक मोहिं भक्त पियारे। तिनके हेतु आत्म कहँ हारे ।।
भक्तन हृदय करौं मैं बासा। हमरे हृदय सो हरषण दासा ।।

मोर रूप बनि भक्तबर, आपुहिं देवैं गोय ।। 79

प्रेमरामायणान्तर्गत प्रेमी की रहनि तथा महिमा सम्बन्धी प्रकरण का संक्षिप्त रूप में उक्त उद्धरण इसलिए प्रासंगिक बन गया है, क्योंकि इस ग्रंथ के चरित्र नायक भरत प्रभुप्रेमी के उक्त स्वरूप के मूर्तिमान श्री विग्रह हैं। उनकी रहनि में पग–पग पर इन्हीं गुणों की झाँकी का दर्शन प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

भगवत्प्रेमी की रहनि सम्बन्धी उक्त लक्षणों का चित्रण हमें महर्षि बादरायण वेद व्यास प्रणीत श्रीमद् भागवत महापुराण में स्थल–स्थल पर दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ एक श्लोक दृष्टव्य है–

क्वचिद् रूदति, वैकुण्ठ–चिन्ता–शबल चेतनः,
क्वचिद्धसति, तच्चिन्ताह्लाद, उद्गायति क्वचित् ।।
नदति, क्वचिदुत्कण्ठो, विलज्जो, नृत्यति क्वचित्
क्वचित्तद्भावना युक्तस्तन्मयोऽनुचकारह ।।

(श्रीमद् भागवत 7/4/39–40)

अर्थात् भगवत्प्रेम में पागल भक्त का हृदय कभी तो क्षुब्ध सा हो उठता है और कभी वियोगजन्य दुःख के स्मरण से रोने लगता है। कभी अपने आराध्य के चिन्तन से प्रसन्न होकर उनकी रूपसुधा का पान करते हुए हँसने लगता है। कभी निर्लज्ज होकर नृत्य करने लगता है, और कभी कभी ईश्वर चिन्तन में तन्मय होकर अपने आप ही भगवान् की लीलाओं का अभिनय करने लगता है।

इस प्रकार प्रेमी का आचरण प्रायः लोक–वाह्य होता है । उन्हें लोक की चिन्ता नहीं होती। वे बालकों की भाँति आनंद में मस्त रहते हैं। उन्हें रोने में भी मजा आता है और हँसने भी आनंद आता है। वे अपने परम प्रेमास्पद की याद में सदा बेसुध रहते हैं। कोई उन्हें उनके प्रियतम की कैसी भी चर्चा सुना दे। बस उनके अंग–अंग में सात्विक भावों का दिव्य विलास अठखेलियाँ करता दीखने लग जावेगा।

ऐसी प्रेम दशा की मस्ती महात्मा सुंदरदास से सुनिये ।

प्रेम लग्यो परमेश्वर सों, तब भूलि गयो सिगरो घर बारा ।

ज्यों उन्मत्त फिरै जित ही तित, नेक रही न शरीर सँभारा ।।

श्वाँस उसाँस उठै सब रोम, चलै दृग नीर अखंडित धारा ।

"सुंदर" कौन कहै नवधा विधि, छाकि रह्यो रस पी मतवारा ।।

न लाज तीन लोक की, न वेद को कह्यो करै ।।

न शंक भूत प्रेत की, न देव यक्ष तें डरै ।।

सुनै न काहु और की, बसी न और इच्छना ।

कहै न भूल और बात, भक्ति, प्रेम-लच्छना ।।

श्री मत्पद वाक्य प्रमाण पारावारीण परिव्राजकाचार्य परमहंस श्री मधुसूदन सरस्वती ने अपने "भक्ति–रसायन" में

"नव रस मिलिंत वा केवलं वा पुमर्थं परममिह मुकुन्दे भक्ति योगं वदन्ति" आदि अद्भुत सरस वाक्यों में भक्ति रस की अलौकिकता का निरूपण करके समस्त दार्शनिक वादों के विवाद को निर्विवाद सिद्ध कर दिया है। उन्होंने स्वयं ही प्रश्न उठाते हुए कि भक्ति श्रंगारादि नव रसों में कौन सा रस एवं धर्मादि चार पुरूषार्थों में कौन सा पुरूषार्थ है, तर्कपूर्ण उत्तर द्वारा प्रतिपादित किया है कि श्रंगारादि नवरसों का समुच्चय भक्ति रस के रूप में पर्यवसित होता है एवं धर्मादि चारों पुरूषार्थों का समन्वित पर्यवसान भक्तियोग पंचम परम पुरूषार्थ में होता है।

इस विचार भाव की परिपुष्टि नाट्यशास्त्र प्रणेता श्री भरत मुनि ने इन शब्दों में दर्शाई है।

यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्जवलम् ।

दर्शनीयं वा तत्सर्व श्रंगारेणोपमीयते ।।

वस्तुतः यहाँ प्रेमतत्व ही रस की भाषा में श्रृंगार शब्द से वर्णित किया गया है। ध्यान तन्मयता में प्रेमपात्र के ध्यान में तल्लीन हो स्वयं अपने आपको प्रेम पात्र देखने लगने में जो उत्कृष्ट प्रेमदशा जागृत होती है, उसी को आचार्य श्रृंगार कहते हैं। इसका स्थायी भाव रति है। साहित्य में प्रेम का अनुभव करने के लिये रति का निदर्शन आवश्यक है। रति प्रीति का पर्यायवाची शब्द ही है। प्रमाणार्थ मानस में –

अरथ न धरम न काम रूचि, गति न चहऊँ निरबान ।

जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन ।। 2/204

इस साहित्यिक महाभाव को दार्शनिक भाषा में इस प्रकार अभिव्यक्ति मिलती है। सच्चिदानंद

प्रभु के तीन गुणों सत्, चित् और आनंद की तीन शक्तियाँ संवित् संधिनी एवं ह्लादिनी क्रमशः पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम अथवा मधुर, मधुरतर एवं मधुरतम अभिव्यक्ति हैं। अतएव ह्लादिनी पूर्णतम रस है। जिसे भगवती श्रुति "रसो वैसः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनंदी भवति" प्रतिपादित करती है। यदि इस आनंद को दूध मानें, तो ह्लादिनी शक्ति को उसका तत्व मक्खन कह सकते हैं। वह ह्लादिनी शक्ति महाभाव स्वरूपा है। इसकी एक विशेष वृत्ति भाव या भक्ति स्वरूप में प्रकट होती है। इस वृत्ति की परिपक्वावस्था का नाम ही प्रेम है, जो अनादि, अनंत, कालातीत है, इसी स्थिति को महात्मा कबीरदास पूर्ण ज्ञान का केन्द्र मानते हैं। अतः वे बोल उठते हैं।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥ 1
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानि मसान ।
जैसे खाल लुहार की, स्वॉस लेत बिनु प्रान ॥ 2
सद्गुरू हम सों रीझि करि, एकै कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥ 3
सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय ।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥ 4

इस प्रेम दशा की प्राप्ति के लिये वे पूर्ण बलिदान, पूर्ण समर्पण एवं अहंभाव का सम्पूर्ण तिरोधान आवश्यक मानते हैं।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जो चहै, सीस देय लैं जाय ॥ 5
यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारै भुई धरै, तब पैठे या माहिं ॥ 6

इसी तारतम्य में कतिपय भक्त कवियों के प्रेम–परक उदगार दृष्टव्य है । श्री कृष्ण भक्ति में लवलीन रसखानि के अनुसार प्रेमरसलीन भक्त –

"त्यों रसखानि वही रसखानि, जो है रसखानि सों है रसखानी"

भक्त प्रवर रसखानि रचित "प्रेम–वाटिका" के कतिपय दोहे–

इक अंगी बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान ।
गनै प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान ॥ 1

अति सूच्छम कोमल अतिहिं, अति पतरो अति दूर ।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इक रस भरपूर ।। 2
रसमय स्वाभाविक बिना, स्वारथ अचल महान ।
सदा एक रस बढ़त नित, शुद्ध प्रेम रसखानि ।। 3
कोउ याहि फाँसी कहत, कोउ कहत तलवार ।
नेजा, भाला, तीर कोउ, कोऊ अनोखी हार ।। 4
पै मिठास या मार की, अंग अंग भरपूर ।
मरत जिये झुकती घिरे, बचे सो चकनाचूर ।। 5
हरि के सब आधीन हैं, हरि प्रेमी आधीन ।
याही तें हरि आपु हीं, याहि बड़प्पन दीन ।। 6

प्रेम दीवानी भक्तिमती मीराजी प्रेम के नशे में मदमस्त बिचर रही हैं ।

और सखी मद पी पी माती, मैं बिनु पिया ही माती ।
प्रेम भटी को मैं मद पीयों, छकी फिरूँ दिन राती ।।

उनके हृदय का दर्द कौन जान सकता है? विश्व का कोई वैद्य न इस रोग को समझ सकता है, न उसके पास इस अलौकिक विषम दर्द की दवा है। इस दर्द को तो वही दूर कर सकता है, जिसने अपने प्रेम में पागल करके यह दर्द पैदा किया है।

जाहु वैद घर आपने तेरा किया न होय ।
जिन यह वेदन निर्मई, भला करैगो सोय ।।

कविवर रहीम ने अपने नीतिपरक दोहों के साथ प्रेम रस पूर्ण दोहों की भी भावाभिव्यक्ति प्रकट की है। आइये, उनके उद्गारों की भी एक झलक प्राप्त कर लें।

जेहि रहीम तन मन दियो, कियो हिये बिच भौन ।
तासों सुख दुख कहन की, रही बात अब कौन ।। 1
जे सुलगे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिं ।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि के सुलगाहिं ।। 2

कविवर बोधा की दृष्टि में प्रेम पंथ तलवार की धार पर दौड़ने के समान अत्यंत कठिन है।

अति क्षीण मृणाल के तारहु तें, तेहिं ऊपर पाँव दै आवनो है।

सुई बेध को द्वार सकै न तहाँ, परतीति को टाँडो लदावनो है ।।

"कवि" बोधा अनी धनी नेजहुँ की, चढ़ि तापै न चित्त डिगावनो है ।

यह प्रेम को पंथ करारो सखी, तलवार की धार पै धावनो है ।।

इस प्रेम पंथ के पथिक की कोई स्वेच्छा नहीं। प्रेमास्पद की रूचि पर आत्म बलिदान करने वाला ही इस ओर आने का साहस करें।

यह प्रेम का पंथ भयानक है, निज हाथ पै सीस लिये रहना ।

तजना मधुशाला कदापि नहीं, नित प्रेम का प्याला पिये रहना ।।

दुख औ सुख में बने मौन रहो, उनकी रूचि जानि सहे रहना ।

कह दें मरना तो मरें रहना, कह दें किजियो तो जिये रहना ।।

"है प्रेम जगत में सार और कुछ सार नहीं" के गायक गोस्वामी बिन्दुजी का कथन भी श्रवणीय है।

नहिं अंतर में, नहिं बाहर में, नहिं आम में है, नहिं खास में है ।

नहिं योग में है, नहिं भोग में है, न विरक्ति में है, न विलास में है ।।

नहिं वेद विधान में, ज्ञान में है, नहिं संयम "बिन्दु" उपास में है ।

न पताल में है, न अकास में है, यदि प्रेम है तो प्रभु पास में है ।।

श्री रामचरितमानस में वर्णित राक्षसराज रावण के अत्याचार से त्रस्त देवगण जब भक्तभय हारी भगवान की खोज में बैकुण्ठ या क्षीरसागर तक दौड़ लगाने को विवश हो रहे थे, तब त्रिभुवन गुरू सदाशिव शंकर जी ने उन्हें यही ज्ञान देकर मार्ग सुझाया था कि परम प्रभु की खोज में अन्यत्र जाने की आवश्यकता ही नहीं है। प्रेम विह्वल स्वर में यहीं पुकार लगाइये। वे प्रेम परवश प्रभु यहीं पर तत्काल प्रकट होकर तुम्हें निर्भय कर देंगे।

तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ । अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ।।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ।।

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।।

अग जगमय सब रहित बिरागी । प्रेम तें प्रभु प्रकटइ जिमि आगी ।।

1/185/4–7

अस्तु सर्वव्यापक सर्वदेशीय, सर्व नियामक, सर्वसाक्षी, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, मायातीत, निरंजन, अजन्मा, अनादि, अनंत निर्गुण, निराकार, परब्रह्म भक्त–प्रेम परवश होकर अपने सभी

विशेषणों को भुलाकर साकार रूप धारण कर एकदेशीय बनकर भक्त की गोद में विहार करता है।

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण बिगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ॥ 1/198

अतः भगवान शंकर ने माता पार्वती को शंका के समाधानार्थ बतलाया था कि

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥

1/116/2,3

वह "प्रेम बिबस सेवक सुखदाता" परम प्रभु अपने भक्त को ही गुरू रूप में अंगीकृत करके उनके चरणों की सेवा में मोद का अनुभव करता है ।

तेई दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुरू पद कमल पलोटत प्रीते ॥ 1/226/5

परम ब्रह्म ज्ञानी गुरूदेव वशिष्ठ जी के शब्दों में–

भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । रामु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥ 2/4/8

प्रेम में इस प्रकार परमेश्वर की प्रतिष्ठा का अवलोकन करके अगले अध्याय में परमेश्वर से भी विशिष्ट प्रेम की झॉकी का दर्शन करने हेतु राम प्रेम की भिक्षा मॉगकर अध्याय का समापन।

राम प्रेम बिनु दूबरो, राम प्रेम ही पीन ।
रघुबर कबहुंक करहुगे, तुलसिहिं ज्यों जल मीन ॥ दोहावली/57

अध्याय - तीन

प्रेम परमेश्वर से भी विशिष्ट

आरत पाल कृपाल जो रामु, जेहीं सुमिरे तेहि कोतहँ ठढ़े ।
नाम-प्रताप महा महिमा, अंकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े ॥
सेवक एक तें एक अनेक, भए तुलसी तिहुँ तापन डाढ़े ।
प्रेम बदौं प्रहलादहिं को, जिन पाहन तें परमेश्वरू काढ़े ॥

कवितावली पद संख्या 127

यह है दिव्य भगवत्प्रेम की अलौकिक महिमा, जिसने वाह्यरूप से निर्जीव पाषाण से महामहिमाशाली परमेश्वर को प्रकट होने हेतु बाध्य कर दिया। अस्तु यह दिव्य प्रेमतत्व भगवान का प्रतिरूप अर्थात् उनके समकक्ष तो है ही, प्रत्युत कभी कभी उनसे विशिष्ट भी परिलक्षित होता है। भगवान भले मिल जावें, पर उनके प्रति प्रेम हृदय में न हो, तो वे भयंकर दिखलाई पड़ते हैं। जनकपुर की धनुष यज्ञ शाला में कुटिल राजाओं को भयानक मूर्ति तथा असुरों को साक्षात् काल के रूप में घातक दिखलाई पड़ते हैं।

डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी । मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा । तिन्ह प्रभु प्रगट काल समदेखा ॥

1/241/6-7

जबकि अविरल प्रेम भक्ति में तल्लीन परमप्रेमी भक्त सुतीक्ष्ण की प्रेम डोर में बँधे श्रीराम उनकी प्रेम विह्वल लीला को देखने हेतु सहज ही खिंचे चले आते हैं तथा उनके हृदय में बिराज जाते हैं।

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तरू ओट लुकाई ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भवभीरा ॥

3/10/13, 14

तदुपरान्त प्रेमीभक्त सुतीक्ष्ण से मिलने हेतु भगवान राम छटपटाने लगे। अनेक प्रयास करने पर भी जब ध्यानविभोर भक्त प्रकृतिस्थ नहीं हुआ तो भगवान ने सुतीक्ष्ण के हृदय में विराजमान अन्तर्यामी द्विभुज राम को बदल दिया। चतुर्भुज रूप प्रकट कर दिया। इस रूप

परिवर्तन से व्याकुल होकर अनन्य भक्त सुतीक्ष्ण भगवान से मिलने को छटपटाने लगे। निदान जब भक्त और भगवान दोनों एक दूसरे से मिलने को व्याकुल हो गये तो उनका मिलना संभव हो सका। उनके मिलन की शोभा के दृष्टा कवि–कुल–चक्र–चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास ने टिप्पणी की–

मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला । कनक तरूहिं जनु भेंट तमाला

।।3/10-24

साधारण दृष्टि से देखने पर कैसी उल्टी उपमा प्रतीत होती है। मुनि से मिलकर भगवान राम कैसे सुशोभित हो रहे हैं, जैसे तमाल का वृक्ष सोने के वृक्ष से मिलकर सुशोभित होता है। विचारणीय है कि सोने का वृक्ष तो सुन्दर और बहुमूल्य होता है। उसकी तुलना में तमाल का वृक्ष महत्वहीन है। इस उपमा द्वारा राम की शोभा की वृद्धि प्रेमी भक्त सुतीक्ष्ण के आलिंगन से हो रही है। महाकवि ने इस उत्प्रेक्षा द्वारा ठीक ही चित्रण किया है। वस्तुतः ईश्वर की शोभा प्रेम के मिलन से ही बढ़ा करती है। प्रेम के बिना ईश्वर एकदम अपूर्ण होता है। अस्तु मूर्तिमान प्रेम रूपी भक्त सुतीक्ष्ण को पाकर भगवान राम का विशेष शोभायमान होना उचित ही है। आश्चर्य का विषय नहीं है।

भगवान को वशवर्ती बनाने वाले प्रेम तत्व के सर्वोपरि प्रभाव को भक्तराज अम्बरीष की लीला में देवराज इन्द्र ने प्रत्यक्ष देखा था। फिर भी चित्रकूट की ओर प्रयाण करते समय प्रेम सिन्धु भरत के अपूर्व अनुराग को देखकर स्वार्थरत देवेन्द्र का मन उद्विग्न हो उठा। वे अन्य स्वार्थी देवगणों से अपना मंतव्य प्रकट करने लगे कि श्रीराम तो प्रेमपरवश हैं। प्रेमी की इच्छा के आधीन हैं। अतएव स्वाभाविक है कि प्रेम विह्वल भरत के मन में जो इच्छा होगी, तदनुसार चलने के लिए भक्त–वांछा–कल्पतरू. राम विवश हो जावेंगे। अतः राम भरत की भेंट में अवरोध उत्पन्न करने का प्रयास किया जावे।

राम सँकोची प्रेम बस, भरत सप्रेम पयोधि ।
बनी बात बेगरन चहति, करिय जतनु छलु सोधि ।। 2/217

यह है प्रेम का अप्रतिम प्रभाव, जिसने देवराज इन्द्र जैसी लोकोत्तर हस्ती के मन में भी भय उत्पन्न कर दिया। वस्तुतः प्रेम तो परमानंद प्रदाता है। किन्तु जो व्यक्ति स्वार्थ–पारायण होता है, वह अपनी क्षुद्र मनोवृत्ति के कारण ही प्रेमतत्व से भयभीत होता है । इसका निराकरण करते समय देवगुरू बृहस्पति ने समझ लिया कि देवराज सहस्त्र नयनधारी होते हुए भी वस्तुतः

मोहान्ध हैं। उन्होंने देवेन्द्र को समझाया कि राम अपने प्रति किये अपराध से तो रूष्ट नहीं होते। किन्तु यदि उनके प्रेमी सेवक के साथ छेड़खानी करोगे, तो राम की क्रोधाग्नि में जल मरोगे। तुम्हें राजर्षि अम्बरीष के साथ अकारण द्रोह करने वाले दुर्वासा मुनि की दुर्गति याद होगी। अतः कुटिलता छोड़कर परम अनुरागी भरत के श्री चरणों के प्रति प्रेम करो। भरत तो परम रामभक्त हैं। वे निरन्तर पर हित में अनुरक्त रहते हैं। वे सब प्राणियों में अपने इष्ट राम का दर्शन करते हैं। इस कारण किसी प्राणी को दुखी देखकर स्वयं दुखी हो जाते हैं। वे भक्त शिरोमणि हैं। तुम अपने स्वार्थ के कारण व्याकुल हो रहे हो। इसमें प्रेममूर्ति भरत का लेशमात्र दोष नहीं है। तुम स्वयं मोहान्ध हो रहे हो। अतः सचेत होकर प्रेमावतार भरत की सेवा में तत्पर होकर अपना परम कल्याण कर लो।

राम भगत पर हित निरत, पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत तें, जनि डरपहुं सुरपाल ।। 2/219

देवगुरू बृहस्पति द्वारा देवराज इन्द्र को इस प्रबोधन से यह सुस्पष्ट है कि भगवान को जो व्यक्ति उनके प्रेमी भक्त से सम्मिलन में बाधक बनता है, वह भगवान का कोपभाजन बन जाता है। प्रेमी भक्त ही तो भगवान का परम धन है। आइये इस तथ्य पर कुछ विस्तार से विचार कर लें कि यावत् जीवों के परम धन प्रभु की नव निधि क्या है ?

वस्तुतः श्रीराम ही सबके परम धन हैं। विनय पत्रिका में भगवान को क्षण प्रतिक्षण उसी भॉति संभालकर सुरक्षित रखने का उपदेश गोस्वामिपाद ने अपने मन को दिया है, जैसे कोई अत्यंत दरिद्री व्यक्ति अपने धन को सँभाल–सँभालकर सुरक्षित रखता है कि कोई छीन न ले जावे।

मन माधवजू को नेकु निहारिहि ।
सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों, छिन छिन प्रभुहिं सँभारिहि ।।

विनय पत्रिका पद संख्या 85

मानस में भी श्री राम समस्त मुनिवृन्द के सर्वस्व परमधन तथा भगवान शिव के भी प्राणस्वरूप कहे गये हैं ।

मुनि जन धन सर बस सिव प्राना । 1/198/2

विश्वामित्र जैसे महामुनि राम को प्राप्त कर ऐसा अनुभव करते हैं, जैसे उन्हें महानिधि मिल गई हो।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । बिस्वामित्र महानिधि पाई ।। 1/209/3

जीवन्मुक्त विदेहराज जनक भी राम को प्राप्त कर उसी भाँति परमानंदित होते हैं, जैसे जन्म जन्मान्तर का दरिद्री व्यक्ति परम निधि पा गया हो ।

सुख बिदेह कर बरनि न जाई । जनम दरिद्र मनहुँ निधि पाई ।। 1/286/3

प्रेमनगर जनकपुर वासी समस्त आबालवृद्ध नरनारीगण श्रीराम दर्शन को इस तरह समुत्सुक होकर दौड़ पड़ते हैं, जैसे अत्यंत गरीब लोग धन लूटने को दौड़ रहे हों।

धाये धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ।। 1/220/2

"धाम काम" शब्द युग्म में एक विचारणीय प्रश्न बन जाता है। "धाम काम" छोड़कर भागना लोक व्यवहार में प्रचलित न होकर "काम धाम" छोड़कर भागना बोला जाता है। यदि महाकवि ने "धाये काम धाम सब त्यागी" लिखा होता, तो लोक व्यवहार के अनुकूल शब्द युग्म बन जाते तथा पिंगल शास्त्र के अनुसार मात्रा, गति, यति का व्यवधान भी नहीं होता था। अस्तु "धाम काम" त्यागने के मर्म पर किंचित् विचार कर लें।

महाकवि तो दृष्टा बनकर दृश्य के अनुसार वर्णन चिन्हित कर रहे थे। कल्पना करें – एक हलवाई अपने ग्राहक को मिठाई तौल रहा था। तराजू को एक हाथ से पकड़ कर एक पलड़े पर बाँट रखकर दूसरे पलड़े पर उस तौल के अनुसार मिठाई रखता जा रहा था। ठीक इसी समय युगल राजकुमार उसकी दुकान के समक्ष पथ पर पहुँचे। उनके दिव्य आकर्षण से आकर्षित होकर वह बदहवाश होकर हाथ में अपना काम लिये हुए दौड़कर पथ पर पहुँचकर दर्शन में तन्मय हो गया। तब प्रायः चेतना शून्य हो जाने से तराजू हाथ से छूटकर पथ में गिर गई। उसका काम पथ पर जाकर छूटा।

राम दरश के हेतु विकल ह्वै भाग रहो हलवाई ।
गिरी तराजू, गिरे बाँट सब, बिखरी सभी मिठाई ।।

इस प्रकार उसने पहले अपनी दुकान (अपना धाम) छोड़ा। बाद में उसका काम छूटा। उसी क्रम से दृश्य चित्रित करते हुए महाकवि ने "धाम काम" शब्द युग्म प्रयुक्त किया है।

ऐसे ही एक अन्य दृश्य में एक मिथिलानी वधू स्नान करके गीले वस्त्र परिवर्तन करने का उपक्रम कर रही थी। अपने हाथ में सूखे वस्त्र ले चुकी थी। पहिनने की चेष्टा करते करते ही वह भी श्रीराम दर्शनार्थ उसी भाँति होश खोकर दौड़ पड़ी थी। उसकी सास ने पथ से जाते

हुए भुवन मोहन राम का दर्शन नहीं किया था। अतः वधू द्वारा मर्यादा भंग होते देखकर उसने अपनी वधू को डॉटा कि इस तरह तेरे भागने से तुझे अर्द्धनग्न सा देखकर लोग हमें निंदा का पात्र बनावेंगे। तब उस कुलवधू का सटीक उत्तर था।

सब कोउ देखै राम कहँ, मोहिं न देखै कोय ।

तू ही ऐसी बावरी, जो देखत है मोय ।।

महाकवि देख रहे थे कि राम दर्शन विह्वल नर नारियों के धाम पहले छूट रहे थे, बाद में उनके काम छूटते थे। अतः "काम धाम" छोड़कर भागना न लिखा, वरन् "धाये धाम काम सब त्यागी" चित्रित किया गया है।

चित्रकूट में कोल किरात भी श्रीराम की सेवा में कंद मूल फल समर्पित करने के सहारे छबि धाम राम रूपी अमूल्य धन सोना लूटने हेतु चल पड़े।

कंद मूल फल भरि भरि दोना । चले रंक जनु लूटन सोना ।। 2/135/2

इस स्थल पर ध्यान देने के बात है कि राम को केवल सोना कहा गया है, जबकि आगे भरत के लिये विदेहराज जनक की दृष्टि में साधारण नहीं प्रत्युत् "सुगंधित सोना" का प्रयोग दर्शनीय है।

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू । सोन सुगंध सुधा ससि सारू ।। 2/288/1

बन पथ पर ग्रामीण नरनारी राम को पाकर ऐसे मोदमग्न थे, जैसे ढेर ढेर भर चिन्तामणि मिल गई हों।

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रंकन्ह सुर मनि ढेरी ।। 2/214/5

बाद में जब राम आगे का मार्ग पूछते हुए चलने को तत्पर हुए, तो वे ऐसे व्याकुल हो गये थे, जैसे विधाता उन्हें मिली हुई निधि उनसे छीने लिये जा रहा है।

मिटा मोद मन भये मलीने । बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ।। 2/118/7

अन्य सभी तो इस रामरूप निधि को भगवत्कृपा से प्राप्त करते हैं, परन्तु सर्वेश्वरी जग्जननी जानकी की तो वे निज निधि हैं। उनका इस अमूल्य दुर्लभ निधि पर स्वामित्व है।

देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचानें ।। 1/232/4

भगवान राम सबके परम धन क्यों न हों? वे परमार्थ स्वरूप ब्रह्म जो हैं।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।। 2/93/7

परन्तु मजे की बात तो यह है कि वही परमार्थ स्वरूप जीवमात्र के परम धन ब्रह्म राम स्वयं प्रेम के समक्ष परम रंक बन जाते हैं। अनाम तापस प्रसंग में कविकुल–चक्र–चूड़ामणि गोस्वामिपाद ने ऐसी ही अद्भुत उत्प्रेक्षा में कहा है, जिसमें राम परम रंक हैं, जबकि प्रेम पारस है।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारस पावा ।

मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ । मिलत धरें तन कह सब कोऊ ॥ 2/111/1, 2

यह अकेले कवि की उक्ति नहीं है, वरन् इसी बात की घोषणा सभी लोग कर रहे हैं कि परमार्थ स्वरूप ब्रह्म राम ने परम दरिद्री बनकर प्रेम रूपी पारसमणि को प्राप्त कर लिया है। वैसे तो इस प्रसंग में ब्रह्म एवं प्रेम दोनों अशरीरी हैं, किन्तु तापस को हृदय से लगाकर जब राम पुलकित होते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि अशरीरी ब्रह्म तथा प्रेम दोनों शरीर धारण कर मूर्तिमान होकर प्रत्यक्ष भेंट कर रहे हैं।

इस प्रसंग में कवि कहता है कि प्रेम की गति विलक्षण रूप से अलक्षित होती है। नारद भक्ति–सूत्र में "अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप" कहा ही गया है। इसको पाकर फिर अन्य कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा मन में नहीं होती है, क्योंकि सभी साधनों का साध्य चरम फल तो प्रेम ही है। भगवान शंकर ने देवी उमा को सम्बोधित करके निष्कर्ष रूप में यही प्रतिपादित किया कि योग, जप, तप, दान, समस्त प्रकार के यज्ञ, व्रत नियमादि सम्पूर्ण साधनों से भगवान राम की वैसी कृपा प्राप्त नहीं होती है, जैसी निष्केवल प्रेम को देखकर वे रीझकर भक्त के वशवर्ती बन जाते हैं।

उमा जोग जप दान तप, नाना मख ब्रत नेम ।

राम कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम ॥ 6/117(ख)

श्री राम कथा का समापन करते हुए भगवान शंकर ने अपने इसी निष्कर्ष को पुनः दोहराया कि तीर्थाटन, साधन समुच्चय, योग, वैराग्य, ज्ञान की निपुणता, समस्त प्रकार के कर्म, धर्म, व्रत, दान, संयम, दम, जप, तप, नाना प्रकार के यज्ञ, प्राणिमात्र पर दया भाव, द्विज एवं गुरू सेवा, विद्या, विनय, विवेक की बड़ाई आदि जहाँ तक वेद वर्णित अनेक प्रकार के साधन कहे गये हैं, उन सबका परम फल भगवान की प्रेमभक्ति में लवलीन हो जाना है ।

तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ॥

विनय पत्रिका में विविध प्रकार के मलों से इन्द्रियों तथा अन्तःकरण के मलीन होने का सविस्तार वर्णन है। अनेक जन्मों से पाप में लिप्त रहने के कारण मन पाप से घृणा नहीं करता। वरन उसमें रूचि लेकर उसका अभ्यासी बन गया है। अतः अधिकाधिक मल लिपटता चला जा रहा है। विषय–संग से मन मलीन है। वासना अहंकार तथा गर्व से हृदय मलीन है। सुखस्वरूप अपने सहज स्वरूप को भूल जाने से जीव पूर्णतः मलीन बन गया है। पर स्त्री को वासनामय दृष्टि से देखने से नेत्र मलीन हो गये हैं। पर–निंदा श्रवण करते रहने से कान तथा दूसरों के दोष बखानते रहने से वचन मलीन हो गये हैं। अपने स्वामी श्रीराम के चरण कमल भूल जाने से मल का भार बहुत अधिक बढ़ गया है। वैसे तो इस पाप रूपी मल को धोने के लिये वेद ने व्रत, दान, ज्ञान, तप आदि अनेकानेक साधनों का वर्णन किया है, किन्तु वे सारे साधन शुद्धि हेतु निष्फल सिद्ध हो जाते हैं। केवल श्रीराम पादारविन्दानुराग रूपी प्रेम जल ही सारे मलों को धोकर अंतःकरण को शुद्ध करने का सक्षम साधन है। अन्यथा पाप रूपी मल का समूल नाश होता ही नहीं है। मोहान्ध जीव करोड़ों साधन क्यों न करता रहे, बिना प्रेम जल के मोह जनित मल धुलते ही नहीं हैं।

मोह जनित मल लाग विविध विधि, कोटिहुँ जतन न जाई ।
जनम जनम अभ्यास निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ।।
नयन मलिन पर नारि निरखि, मन मलिन विषय सँग लागे ।
हृदय मलिन वासना–मान–मद, जीव सहज सुख त्यागे ।।
पर निंदा सुनि श्रवन मलिन भये, बचन दोष पर गाये ।
सब प्रकार मल भार लाग, निज नाथ चरण बिसराये ।।
तुलसिदास ब्रत, दान, ग्यान, तप, शुद्धि हेतु श्रुति गावै ।
रामचरन अनुराग नीर बिनु, मल अति नाश न पावै ।।

विनय पत्रिका पद संख्या 82

इस प्रेम जल के उद्भव की संत–शास्त्र–सम्मत प्रक्रिया इस प्रकार है। वेद–पुराणादि शास्त्र ही भगवत्कथा के अगाध जलधि हैं। इस जलधि के जल में कुछ खारापन संभावित है। अतः संतगण बादल बनकर उस जलधि से जल लेकर उसे मधुर, मनोहर, मंगलकारी बनाकर श्रीरामकथा–यश की रस–वर्षा करते हैं। यह भगवान की सगुण लीला–कथा मनोमल विमोचन करके जीव को स्वच्छ बनाने का कार्य सम्पादन करती है। इसमें अनिर्वचनीय प्रेम–भक्ति की

मधुरता एवं शीतलता ओतप्रोत रहती है।

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू । बेद पुरान उदधि घन साधू ।।
बरसहिं राम सुजस बर बारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ।।
लीला सगुन जो कहहिं बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ।।
प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ।।

1/36/3-6

यह दुर्लभ प्रेम भक्ति यदि भगवत्कृपा से एक बार जीवन को धन्य बना दे, तो फिर कभी छोड़कर जाने का नाम नहीं लेती है, वरन् नित्य नूतन प्रवहमान होती है। विश्व में सभी पद भूतपूर्व हो जाते हैं। जैसे भूतपूर्व मंत्री, भूतपूर्व सांसद, विधायक, जिलाध्यक्ष आदि। परन्तु कभी भूतपूर्व प्रेमी भक्त शब्द नहीं सुना गया है। वह तो सदा के लिये अभूतपूर्व हो जाता है। मानस में जैसे प्रेम स्वरूप अनाम तापस को विदा नहीं किया गया है। वैसे ही प्रेम को परमात्मा अपने से पृथक कभी नहीं करता है। जैसे पारसमणि को पाकर परम रंक उसे छोड़ने का कभी नाम नहीं लेता, वैसे ही प्रेम को परमात्मा अपने से पृथक करने का विचार भी कभी नहीं करता है। प्रत्युत् प्रभु अपने प्रेमी को पाकर पुलकित होकर हृदय से लगाये रहते हैं। सबके परम धन होते हुए भी प्रेमी भक्त के लिए परम रंक बन जाते हैं। देखिये न प्रभु सबके हृदय में व्याप्त होते हुए भी जीव के जीवन में कोइ परिवर्तन नहीं कर पाते हैं।

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ।। 1/23/7

किन्तु जैसे ही जीव के हृदय में प्रेम का उदय होता है, वैसे ही उसका जीवन धन्य हो जाता है। वह तृप्त हो जाता है। कृत्कृत्य हो जाता है। आनंद स्वरूप बन जाता है। प्रेम ही वह पारसमणि है, जिसके स्पर्श से लोहा जैसा अधम जीव स्वर्ण जैसा अति मूल्यवान धातु के रूप में परिवर्तित होकर लोक—पितामह ब्रह्मा से भी अधिक प्रभु का परम प्रिय अर्थात् भक्ति—भावित—भक्त बन जाता है। काकभुसुंडि के प्रति प्रभु के श्रीमुख से कहे गये वचन उल्लेखनीय हैं।

भगतिहीन बिरंचि किन होई । सब जीवहुँ सम प्रिय मोहिं सोई ।।
भगतिबंत अति नीचउ प्रानी । मोहिं प्रान प्रिय असि मम बानी ।।

7/86/9,10

मसक से बिरंचि पर्यन्त सभी जीव अपने अपने अधिकार क्षेत्र में भोग परायण हैं। प्रेमी में ही उस त्याग एवं आत्मोत्सर्ग की भावना है, जिसमें वह अपने भोगसुख को अपने प्रेमास्पद के लिये

हवन करता हुआ "इंद सर्वात्मने, इंद न मम" का भाव भरता हुआ असीम तृप्ति का अनुभव करता है। यहॉ त्याग किसी वस्तु, पदार्थ, आश्रम अथवा परिस्थिति या कर्म का त्याग नहीं है, प्रत्युत् "स्व सुखेच्छा" का त्याग करके "तत्सुखे सुखित्वं" में मग्न हो जाना है। इहलोक, परलोक, दिव्य लोकादि के भोगसुख की इच्छा का लवलेश भी प्रेम में बाधक है। प्रेम में कामना, वासना, इन्द्रियसुख की इच्छा आदि किसी प्रकार की स्वसुख वांछा कलंकवत् है। केवल प्रियतम के सुख की एकमात्र सहज अभिलाषा होती है। देवर्षि नारद "यथा व्रजगोपीनाम्" निर्देशित कर उनका वंदन करते हैं। श्रीमद् भागवत महापुराण में भगवान कृष्ण के अनन्य सखा ज्ञानिनामाग्रगण्य उद्धव गोपिकाओं की चरण धूलि के आकांक्षी हैं।

आसामहो चरण-रेणु जुषामहंस्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं चहित्वा,
भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।

10/47/61

अर्थात् मेरे लिए तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावन धाम में कोई झाड़ी, लता अथवा औषधि, जड़ी बूटी ही बन जाऊँ। अहा यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा तो मुझे इन वृजांगनाओं की चरण–धूलि निरन्तर सेवन करने के लिए मिलती रहेगी। इनकी चरणरज में स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य है ये प्रेममयी गोपियाँ। देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यंत कठिन है, उन स्वजन सम्बन्धियों तथा लोक वेद की आर्य मर्यादा का परित्याग करके इन्होंने भगवान की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है।

आचार्य रूप गोस्वामी महाराज की दृष्टि में निर्वाण (मोक्ष) नीम की निबौड़ी सदृश कटु रस है। अस्तु हम उसका परित्याग करके उस दिव्य मधुर रस का पान करते हैं, जिस श्यामसुंदर की रूपसुधारस को गोपियाँ अपने नेत्र के चुल्लू से पीती हैं। तो उनकी चुल्लू से जो रस का जल टपकता है, उनका वह उच्छिष्ट रस ही हमारा मधुरतम पेय है।

निर्वाण निम्बरसमेव रसानुभिज्ञा, सूचन्तु रसतत्वविदो वदन्तु ।
श्यामामृतम् मदन मन्थर गोपरामा, नेत्रांजली सुरूचिता वसिता पिबामः ।।

गोस्वामिपाद तुलसीदास "विनय पत्रिका" में प्रेममयी गोपी–वृन्द की महिमा का अभिनंदन विरंचिपूज्य के रूप में करते हैं।

तो महात्मा कबीर जैसे निर्गुणवादी संत के मुख से इस रूप में वाणी निःसृत हो रही है ।

कबिरा कबिरा क्या करे, वा जमुना के तीर ।
इक गोपी के प्रेम में, बह गये कोटि कबीर ।।

निर्गुण निराकार का उपासक अपने अद्वैत ज्ञान से केवल ब्रह्म में रमण करता है। अष्टांग योगी योगपंथ से परमात्मा में लीन होता है। इन दोनों पंथों के संतों का आराध्य निस्पृह, निरीह, तटस्थ रहता है। वह तो भगवत्प्रेमी का प्रियतम भगवान है जो अचिंत्य, अनिर्वचनीय अनंत सच्चिदानंद घन परब्रह्म होते हुए भी अपने प्रेमी भक्त के लिए सौन्दर्य माधुर्यनिधि परमानंद स्वरूप बनकर नित्य निरंतर प्रेम रसास्वादन करने कराने में प्रवृत्त रहता है। वे सर्वलोक महेश्वर सर्वतंत्र स्वतंत्र होते हुए भी प्रेमी के प्रेमाधीन रहते हैं। वे प्रेमी को ही अपना प्रेम पात्र बना लेते हैं। वह प्रेमास्पद अपने को महान प्रदर्शित करके प्रेमी से नहीं मिलता, वरन् प्रेमी पर बलिहार हो जाता है। अपने महान रूप में तो वह तत्ववेत्ता ज्ञानियों से अभिन्न बना करता है। प्रेमी के सम्मुख तुच्छ बनने में वह आनंद की अनुभूति करता है। प्रेमातुर होकर प्रेमरस हेतु अधीर बनकर दौड़ पड़ता है। प्रेमी के प्रेमरस हेतु व्याकुल होकर भागा चला आता है। तब वह भगवान जो अपने परब्रह्म स्वरूप में सुख दुख से रहित है, वही अपने प्रेमास्पद रूप में अपने प्रेमी भक्त के दुःख से स्वयं दुखी हो जाता है। प्रेमी भक्त के मधुरतम प्रेमरस का आस्वादन करने को लालायित रहता है और प्रेमी के वासना, कामना विष रहित मधुरातिमधुर दिव्य प्रेमरस का पान निर्निमेष अतृप्त बनकर करता रहता है। इस प्रकार प्रेमी और प्रेमास्पद एक दूसरे के प्रेमास्पद और प्रेमी बनकर समभाव से परस्पर प्रेमानंद प्रदान करते हैं। इस प्रेमानंद के लिए भगवान अपनी भगवत्ता को त्यागने में सुख का अनुभव करते हैं। भक्त भी "भुक्ति मुक्ति स्पृहा पिशाची" से विमुक्त रहकर प्रेमानंद में निमग्न रहता है। दोनों ओर एक समान स्वसुख त्याग तथा प्रियतम सुखदान की भावमयी सुधा तरंगें कल्लोल करती रहती हैं।

जैसे ही प्रेमी भक्त के मन में प्रेम धारा प्रवाहित होती है, वह प्राणिमात्र में अपने प्रेमास्पद का प्रतिरूप देखने लगता है। यही सर्वात्मभाव ईश्वर दर्शन या साक्षात्कार है। आस्तिकता की सच्ची कसौटी भी यही है। यही प्रेम मानवता की सर्वश्रेष्ठ साधना है। आत्मा का प्रकाश एवं सहज स्वभाव है। दूसरे शब्दों में जीव का सहज स्वरूप है। जीवात्मा की सहज वृत्ति है। गहराई से विचार करें तो प्रेम की उपलब्धि अप्राप्त की नहीं, प्रत्युत् अपने नित्य स्वरूप की स्मृति

या अनुभूति है। निष्कर्ष रूप में हम इस तथ्य को हृदयंगम कर रहे हैं कि प्रेम ऐसा सार्वभौम पुरूषार्थ है, जिसके अंक में केवल पुरूषार्थ चतुष्टय ही नहीं, प्रत्युत् पुरूषोत्तम भी स्वयं समा जाता है। परमार्थ तो केवल जन्म मरण से मुक्ति तक पहुँचाता है, परन्तु प्रेम उससे भी विलक्षण परम परमार्थ है। श्री निषादराज गुह के प्रति उपदेशित श्री लक्ष्मणं गीता में सुस्पष्ट है।

सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥

2/93/6,7

अर्थात् राम परमार्थ हैं तो उनका प्रेम परम परमार्थ है। अतः श्री लक्ष्मण की मान्यतानुसार प्रेम परमेश्वर से विशिष्ट है।

श्री मद्भागवत महापुराण में भगवान श्री कृष्ण अपने प्रिय सखा उद्धव से कहते हैं कि मेरा प्रेमी भक्त समस्त ब्रह्माण्ड को पवित्र कर देता है।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं, रूदत्यभीक्ष्णं हसतिकचिच्च ।

विलज्ज उद्गायति नृत्यतेंच, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

11/14/24

अर्थात् जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है। एक क्षण के लिए भी रोने का ताँता नहीं टूटता, परन्तु जो कभी कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है। कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वर से गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है। भैया उद्धव, मेरा वह भक्त न केवल अपने आपको अपने समीपवर्तियों को वरन् समस्त भुवनों को पवित्र कर देता है।

जिस ब्रह्म को श्रुतियाँ "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति" कहती है, उसी को प्रेमीभक्तजन "एकं सत् प्रेम्णा बहुधा भवति" कहकर उसका दर्शन कण कण में नाना रूपों में करते हैं। उनके मतानुसार प्रेम ही जगत् कारण एवं कार्य है। सारा संसार प्रेम का ही परिणाम, उल्लास, विलास है। सारा विश्व प्रपंच प्रेम के आधार पर परस्पर जुड़ा हुआ है। समस्त सम्बन्ध प्रेम मूलक हैं। बिना प्रेम के कोई किसी से जुड़ता है क्या ? प्रेम ही सब में अनुस्यूत है। प्रेम जहाँ होता है वहाँ कोई अंतर नहीं रह जाता। किसी प्रकार के भेदभाव की कल्पना तक नहीं रह जाती। "जित देखौं तित श्याममई" दृष्टि बन जाने से प्रकृति रह ही नहीं जाती, सर्वत्र प्रेमास्पद परमेश्वर का दर्शन होता है।

वस्तुतः वह परब्रह्म तत्व जो कुछ है, जिससे हैं, जिसमें है, जिसके लिए है, आदि समस्त प्रश्नों का समाधान एक प्रेम शब्द में समाहित है। दूसरे शब्दों में कार्य, कारण, कर्त्ता, कर्म, करण और क्रिया रूप सभी स्वयं प्रेम ही है। फलस्वरूप प्रेमी किसी कामना पूर्ति या लक्ष्य सिद्धि के लिए प्रेम नहीं किया करता, वरन् उसकी भावना के आदि, मध्य, अवसान में सर्वत्र निष्काम प्रेम के दर्शन होते हैं।

प्रेम प्रेम सों होय, प्रेम सों पारहिं जैये ।
प्रेम बँध्यो संसार, प्रेम परमारथ पैये ।।

एक बार कोई योग न हो, कोई ज्ञान न हो, कोई धारणा, ध्यान और समाधि न हो। कोई भी साधना न हो। बस प्रेममात्र प्रभु कृपा से प्राप्त हो गया हो। तो यह सुनिश्चित है कि परम कल्याण रूप से परम तत्व, परम पुरूषार्थ रूप परमेश्वर उस प्रेमी से पृथक नहीं है। प्रेम ही सबका मूल है। प्रेम प्राप्त कर प्रेमी ने सब कुछ प्राप्त कर लिया।

प्रेम बराबर योग नहिं, प्रेम बराबर ध्यान ।
प्रेम भगति बिनु साधना, सबहीं थोथा ग्यान ।।

जिसने प्रेम का पाठ पढ़ लिया, वही सच्चा ज्ञानी है, वही सच्चा मनुष्य है। अपने आपका बलिदान ही प्रेम की सच्ची पहिचान है। प्रेम से पवित्र संसार में कुछ भी नहीं है। प्रेम से बढ़कर संसार में दूसरा अमृत नहीं है। प्रेम से गहरा कोई सागर नहीं और प्रेम से ऊचा कोई पर्वत नहीं है।

प्रेममूर्ति आचार्य जीवगोस्वामी के अनुसार तभी तक कोई ऋद्धि, सिद्धि, समाधि, ब्रह्मानंद के चमत्कार से आकर्षित होता है, जब तक मधुसूदन कृष्ण भगवान के प्रेम की गन्ध से उसका अन्तःकरण सुवासित नहीं हुआ।

ऋद्धी सिद्धी ब्रज विजयिता सत्यधर्मा समाधि-
ब्रह्मानंदो गुरूरपि चमत्कार यत्येव तावत् ।
यावत् प्रेम्णां मधुरिपु वशीकार सिद्धौंपधीनां
गन्धोऽप्यन्तः करण सरणी पान्थतां न प्रयाति ।।

सृष्टि विशाल, असीम, ठोस होते हुए भी क्षणभंगुर है क्योंकि सृष्टि में सब कुछ भंग हो जाता है। प्रेम सूक्ष्मातिसूक्ष्म है अतः वह अभंग है। क्षणभंगुर सृष्टि में यदि हमें कुछ नित्य प्रतीत होता है, तो उसमें भी प्रेम का प्रतिविम्ब है, जो उसे अमर जैसा दिखलाता है। सृष्टि में जो कुछ

प्रेम तत्व में परमेश्वर से भी विशिष्ट इन गुणों की महिमा—वर्णन के समापन में भगवान राम की वाणी सुन लीजिये।

झीनी झीनी नेह की डोरी, मोसें जोरिन तोड़ी जाय ।
साँकर होय तो तोरि दिखाऊँ । खम्भ होय तो फारि बताऊँ ॥
वज्र होय तो पीस उड़ाऊँ ।
धनुष होय तो तोरूँ क्षण में, प्रीति न तोड़ी जाय ॥ झीनी झीनी...
अग्नि होय तो मैं पी जाऊँ । पर्वत होय तो धारि दिखाऊँ ॥
सागर होय तो बाँधि बताऊँ ।
तीन लोक दै पग से नापूँ, प्रीति न नापी जाय ॥ झीनी झीनी.......
बीस भुजा क्षण माहिं उखारूँ । सहस बाहु को काटि मैं डारूँ ॥
खम्भ चीर हिरणाकुश मारूँ।
भूमि होय तो उलट दूँ सृष्टी, प्रीति न पलटी जाय ॥ झीनी झीनी.....
योगी चहै योग दै डारूँ । भोगी चहै भोग दै डारूँ ॥
मुक्ति चहै मुक्ती दै डारूँ ।
भक्त न लेनो कहै और कछु, बाको टारो न जाय ॥ झीनी झीनी.......
सबहिं नाथ मैं नाथ कहायो । सबहिं हारि मोहिं सीस नवायो ॥
मो माया को पार न पायो ।
सो मैं चाकर बनूँ भक्त को, प्रेमानंद बलि जाय ॥ झीनी झीनी........

अध्याय - चार

प्रभु के प्रेमावतार श्री भरत

होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।

2/238/8

जौ न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ।।

2/233/1

प्रथम अध्याय में लिखा गया है कि महाराज स्वाायंभुव मनु की याचना पर प्रभु यह वरदान तो दे चुके हैं कि मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनकर अवतार ग्रहण करूँगा। किन्तु जब प्रभु ने विचार किया कि महाराज की याचना "चाहउँ तुम्हहिं समान सुत" शब्दावली द्वारा प्रस्तुत की गई है, तो उस याचना की शाब्दिक (शब्दशः) पूर्ति हेतु अपने समान भी एक पुत्र का अवतार न्यायोचित प्रतीत हुआ। प्रथम तीन अध्यायों में इस तथ्य का स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है कि प्रभु प्रेम न केवल परमेश्वर के समतुल्य है, प्रत्युत् परमेश्वर से विशिष्ट भी है। अतः प्रभु ने अपने वरदान की पूर्ति हेतु अपने प्राण प्रिय भ्राता भरत को अपने प्रेमावतार के रूप में अपने साथ प्रकट किया। अध्याय द्वितीय में श्रीप्रेमरामायण के ज्ञानकांड के संक्षिप्त उद्धरण में प्रभु एवं प्रभु प्रेमी की एकरूपता इस दोहे में व्यक्त की गई है।

प्रेमी कर बनि रूप मैं, देवौं आपहिं खोय ।
मोर रूप बनि भक्तवर, आपुहिं देवैं गोय ।। 79

ऐसे प्रेमावतार को प्रकट करके प्रभु ने परमेश्वर एवं प्रेमी की तद्रूपता का दर्शन कराया। प्रेमावतार भइया भरत मानों दूसरे रामजी ही थे। जनकपुर में प्रेमपगी मिथिलानियों के वचन हैं।

भरतु राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ।। 1/311/6

वन पथ में रूप पारखी ग्रामीण नारियों ने भी कुछ ऐसी ही बात कही है, कि इनकी उम्र, शरीर, वर्ण, रूप सब कुछ ज्यों का त्यों श्रीराम जैसा है। यहाँ तक कि आंतरिक गुणों में इनका शील, प्रेम, आचरण भी राम के समान ही हैं।

बय बपु बरन रूप सोइ आली । सीलु सनेहु सरिस सम चाली ।।

2/222/2

देवगुरू बृहस्पति ने चित्रकूट वनस्थली में स्वार्थ के कारण व्यामोह में ग्रस्त देवगण को यही समझाया कि भक्त शिरोमणि प्रेममूर्ति भरत अन्तर्वाह्य रूप में हर प्रकार से रामरूप हैं दूसरे शब्दों में उनकी परिछाहीं ही हैं। फिर उनसे किसी प्रकार के अनिष्ट का भय कैसा ? अपने डॉवाडोल मन को स्थिर करके भरत की सेवा में तत्पर हो जाओ, तो परम प्रेम की प्राप्ति होगी।

मन थिर करहु देव डर नाहीं । भरतहिं जानि राम परिछाहीं ।।

2/266/4

ध्यान देने की बात है कि छाया में न अपनी गति होती है, न अपनी मति होती है। न वह कोई स्वतः प्रेरित क्रिया करती है। न चलती है, न सोचती है, और न सुख दुख मानती है। वह तो पूर्णतः अपने सम्बद्ध व्यक्ति की काया के अधीन रहती है। तथा उसके प्रति समर्पित रहती है। व्यक्ति में तो कुछ न कुछ स्वार्थ होता ही है, पर छाया पूर्णतः निस्वार्थ होती है। व्यक्ति चलते हुए थक जाता है। छाया भी साथ साथ चली, मंजिल तक पहुँची, परन्तु थकी लेशमात्र नहीं, क्योंकि उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। उसका अलग अस्तित्व नहीं होता। ठीक इसी भाँति भरत श्रीराम की छाया हैं। कायाश्रीराम हैं, उनकी छाया भरत हैं। श्रीराम स्वार्थ—परमार्थ दोनों का समन्वय करते हुए दोनों की रक्षा करते हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ । कोउ न राम सम जानि जथारथ ।।

2/254/5

जबकि उनके छाया स्वरूप भरत स्वार्थ एवं परमार्थ की ओर निहारते भी नहीं हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।।

2/289/7

भारत एवं लंका के मध्यवर्ती समुद्र में रावण के द्वारा प्रहरी रूप में नियुक्त राहुमाता सिंहिका छाया पकड़कर उस छाया से सम्बद्ध व्यक्ति को खींचकर गिरा लेती थी। यदि कोई श्रीराम की छाया श्रीभरत को पकड़कर गिराने की कुचेष्टा करे, तो श्रीराम को गिरना होगा। यह पतन ईश्वर का पतन होगा, जो असंभव है। अतः श्रीभरत का पतन तो हो ही नहीं सकता। जो व्यक्ति अपने आप को ईश्वर को समर्पित कर देता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहं सब सौंप देता है। ईश्वर के संकेत पर यंत्र के समान कार्य करता है। उसका पतन नहीं हुआ करता है। वह स्वतः गिरेगा भी, तो भगवान के चरणों में ही गिरेगा, और तत्काल भगवान उसे उठाकर अपने हृदय से लगा ही लेंगे। चित्रकूट में प्रेम विह्वल श्रीभरत भूमि पर प्रणिपात मुद्रा में यह कहते हुए गिरे कि प्रभु

देवगुरू बृहस्पति ने चित्रकूट वनस्थली में स्वार्थ के कारण व्यामोह में ग्रस्त देवगण को यही समझाया कि भक्त शिरोमणि प्रेममूर्ति भरत अन्तर्वाह्य रूप में हर प्रकार से रामरूप हैं दूसरे शब्दों में उनकी परिछाहीं ही हैं। फिर उनसे किसी प्रकार के अनिष्ट का भय कैसा ? अपने डॉवाडोल मन को स्थिर करके भरत की सेवा में तत्पर हो जाओ, तो परम प्रेम की प्राप्ति होगी।

मन थिर करहु देव डर नाहीं । भरतहिं जानि राम परिछाहीं ।।

2/266/4

ध्यान देने की बात है कि छाया में न अपनी गति होती है, न अपनी मति होती है। न वह कोई स्वतः प्रेरित क्रिया करती है। न चलती है, न सोचती है, और न सुख दुख मानती है। वह तो पूर्णतः अपने सम्बद्ध व्यक्ति की काया के अधीन रहती है। तथा उसके प्रति समर्पित रहती है। व्यक्ति में तो कुछ न कुछ स्वार्थ होता ही है, पर छाया पूर्णतः निस्वार्थ होती है। व्यक्ति चलते हुए थक जाता है। छाया भी साथ साथ चली, मंजिल तक पहुँची, परन्तु थकी लेशमात्र नहीं, क्योंकि उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। उसका अलग अस्तित्व नहीं होता। ठीक इसी भाँति भरत श्रीराम की छाया हैं। कायाश्रीराम हैं, उनकी छाया भरत हैं। श्रीराम स्वार्थ–परमार्थ दोनों का समन्वय करते हुए दोनों की रक्षा करते हैं।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ । कोउ न राम सम जानि जथारथ ।।

2/254/5

जबकि उनके छाया स्वरूप भरत स्वार्थ एवं परमार्थ की ओर निहारते भी नहीं हैं।

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।।

2/289/7

भारत एवं लंका के मध्यवर्ती समुद्र में रावण के द्वारा प्रहरी रूप में नियुक्त राहुमाता सिंहिका छाया पकड़कर उस छाया से सम्बद्ध व्यक्ति को खींचकर गिरा लेती थी। यदि कोई श्रीराम की छाया श्रीभरत को पकड़कर गिराने की कुचेष्टा करे, तो श्रीराम को गिरना होगा। यह पतन ईश्वर का पतन होगा, जो असंभव है। अतः श्रीभरत का पतन तो हो ही नहीं सकता। जो व्यक्ति अपने आप को ईश्वर को समर्पित कर देता है। मन, बुद्धि, चित्त, अहं सब सौंप देता है। ईश्वर के संकेत पर यंत्र के समान कार्य करता है। उसका पतन नहीं हुआ करता है। वह स्वतः गिरेगा भी, तो भगवान के चरणों में ही गिरेगा, और तत्काल भगवान उसे उठाकर अपने हृदय से लगा ही लेंगे। चित्रकूट में प्रेम विह्वल श्रीभरत भूमि पर प्रणिपात मुद्रा में यह कहते हुए गिरे कि प्रभु

रक्षा कीजिए–रक्षा कीजिए–

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई । भूतल परे लकुट की नाई ॥ 2/240/2

तब श्रीराम भी प्रेम विह्वल होकर इतनी शीघ्रता से उठाकर श्री भरत को हृदय से लगाते हैं कि महाकवि ने श्रीराम को केवल उठते देखा। वे कैसे दौड़े, कब पहुँचे, कैसे उठाने की चेष्टा की? किसी के द्वारा यह सब कुछ देखा ही नहीं गया। उस समय प्रत्यक्ष में दोनों बंधुओं को हृदय से हृदय मिलाकर लिपटे हुए देखकर समस्त दृष्टा भी प्रेम विभोर दशा में आत्मविस्मृत हो गये थे।

बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपा निधान ।
भरत राम की मिलनिलखि, बिसरे सबहिं अपान ॥ 2/240

इसी भाँति लंकेश रावण के वधोपरान्त अयोध्या वापस पहुँचने पर भी भगवान श्रीराम को विरह–पयोनिधि–मग्न श्रीभरत भूमि पर गिरकर साष्टांग दंडवत करते हैं। इस बार तो चौदह वर्ष पर्यन्त अनवरत "मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत" आचरण के भार से श्रीभरत का पलड़ा इतना भारी था, कि वह भूमि पर टिका था। दूसरे पलड़े पर अनंत ब्रह्माण्ड का भार धारण करने वाले भगवान स्थित थे, फिर भी श्रीभरत का पलड़ा किसी प्रकार ऊपर नहीं उठ रहा था। अंततः भगवान को अपनी कृपा का समुद्र भी दूसरे उठे हुए पलड़े पर रखकर तथा अपना बल लगाकर सप्रयास उठाना पड़ा। तब विरहानल–दग्ध प्रेम–पयोनिधि–मग्न श्रीभरत को हृदय से लगाकर श्रीराम ऐसे शोभायमान हुए, जैसे अशरीरी प्रेम एवं श्रृंगार आज दोनों ही मूर्तिमान विग्रह धारी बनकर भेंट कर रहे हों।

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहिं सुर मुनि संकर अज ॥
परे भूमि नहिं उठत उठाये । बर करि कृपा सिंधु उर लाये ॥
स्यामल गात रोम भये ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

7/5/6–8

छंद– राजीव लोचन श्रवत जल, तन ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहिं, मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहिं, जात नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरू सिंगार तनु धरि, मिले वर सुषमा लही ॥

7/5/छंद1

शास्त्रानुसार प्रेम एवं श्रृंगार दोनों श्यामवर्णधारी हैं। दोनों अनंत सौन्दर्य–माधुर्य–रस–सिंधु हैं। उनमें भेद दर्शन का प्रयास दुराग्रह पूर्ण ही होगा। अस्तु इस नयनाभिराम झाँकी को संत "विनीत" एक कवित्त में चित्रित करते हुए दोनों की एकरूपता व्यक्त करते हैं।

श्यामल शरीर श्याम नैनन में नीर भरे,
धाये हैं अधीर बन्धु धीर न धरत हैं ।
दोहुन के सिर जटाजूट दर्शनीय लसैं,
दुहुँ के शरीर हेरि हिय को हरत हैं ।।
शंका ये "विनीत" कौन अवध से सिधारे कौन
लंका से पधारे पहिचान ना परत हैं ।
स्वागत में कैसे पुष्पमाल पहिरावैं हम,
जाने नहिं जात कौन राम को भरत हैं ।।

इस भांति गाढ़ालिंगन में आबद्ध श्रीराम एवं श्रीभरत कियत् कालोपरान्त कुशल वार्ता के अवसर पर भी प्रकृतिस्थ नहीं हुए। श्रीराम बार बार कुशल प्रश्न कर रहे थे। प्रेम विभोर गद्‌गद कंठ श्रीभरत के मुख से वाणी ही प्रस्फुटित नहीं हो रही थी। उस समय के दृश्य को भगवान शंकर अम्बा पार्वती से मन–वाणी से परे परमानंदमय निरूपित करते हैं।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं, बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तें, भिन्न जान जो पावई ।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान, मोहिं कर गहि लियो ।।

7/5 छंद2

अब लोग श्रीभरत एवं श्रीराम की पृथक पहिचान करने में कैसे सफल हो सके ? इसे कविरत्न श्री भैरव द्विवेदी रामायणी अपने "मानस–तरंग" में चित्रांकित करते हैं।

रूप रंग अंग राम भरत बने हैं एक,
मुग्ध मिलने से अब आगे बोलते नहीं ।
कौन कहो राम, कौन भरत बतावै कौन,
कोई पहिचान की तुला में तौलते नहीं ।।
"भैरव" न भेद खुल पाता शीघ्र कौशल में,

यदि भगवान यह मर्म खोलते नहीं ।

राम हैं वही जो पूछते हैं कुशल बार बार,

भरत उसासें भरते हैं बोलते नहीं ।।

उपवन के दृश्य में विराजमान प्रभु श्रीराम अपने प्रिय दास हनुमान से स्वयं श्रीमुख से यह उद्‌गार प्रकट करते हैं कि मुझमें और श्रीभरत में कोई अंतर नहीं है।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहिं मोहिं कछु अंतर काऊ ।।

7/36/7

भक्ति सिद्धान्त में ऐसी मान्यता है कि प्रेम ही भक्त और भगवान की दूरी मिटाकर दोनों का योग कराकर एकाकार कर देने वाला तत्व है। विज्ञान में तो नियमों का आश्रय लेकर ऊर्जा शक्ति प्रकट की जाती है। पर उन नियमों में यह सामर्थ्य नहीं है कि शक्ति के पीछे छिपे हुए शक्तिमान को प्रकट कर सके। शक्तिमान को प्रकट करने के लिए उत्कट प्रेम चाहिए। शक्ति प्रकट होती है नियम से, जबकि शक्तिमान प्रकट होता है प्रेम से। गणित में नियम होता है। उसमें एक और एक मिलकर दो होते हैं। जबकि प्रेम में गणित के नियम नहीं चलते। प्रेम में एक और एक मिलकर एक ही बन जाता है। यदि दो रह गये, तो उनमें प्रेम हुआ ही नहीं। कविवर रहीम का प्रसिद्ध दृष्टान्त है।

रहिमन प्रेम सराहिये, मिले होत रँग दून ।

ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सफेदी चून ।।

इस प्रकार दो पृथक रंग मिलकर अपना स्वरंग परिवर्तित करके एक अभिन्न रंग बन जाता है। इसी प्रकार प्रेमी और प्रेमास्पद प्रेम योग से दो नहीं रह जाते, वे एक बन जाते हैं।

श्रीराम अपनी प्राणप्रिया वैदेही जानकी को संदेश देकर कहते हैं कि मेरा मन तुम्हारे मन में मिलकर एक होकर वहीं समाहित हो गया है।

तत्व प्रेम कर मम अरू तोरा । जानत प्रिया एक मनु मोरा ।।

सो मनु सदा रहत तोहिं पाहीं । जानु प्रीति रस एतनेहिं माहीं ।।

5/11/6–7

ठीक इसी प्रकार भगवान् श्रीराम एवं प्रेमावतार भक्त भइया श्रीभरत दोनों इतने एक रूप हैं कि माता कौशल्या को जो अनुभूति श्रीराम को गोद में लेने पर प्राप्त होती है। ठीक वही अनुभूति श्रीभरत के प्रति भी प्राप्त होती है।

वन गमन के समय अम्बा कौशल्या ने श्रीराम को हृदय से लगा कर प्रेम प्रदान किया, तो वात्सल्य–रस उमड़कर उनके स्तनों से दुग्ध धार बनकर प्रश्रवित होने लगा।

गोद राखि पुनि हृदयँ लगाये । श्रवत प्रेमरस पयद सुहाये ।।

2/52/4

उधर ननिहाल से आने पर जब श्रीभरत को बिलखते देखकर माता कौशल्या ने उन्हें हृदय से लगाया, तो ठीक वैसी ही दशा प्रत्यक्ष हो गई। स्मरणीय है कि इस समय प्राणनाथ के स्वर्गगमन के कारण अनेक दिनों से माता कौशल्या ने अन्नजल ग्रहण नहीं किया था। परम शोकाकुल दशा में विलाप करते रहने के कारण मृतप्राय हो रहीं थी। फिर भी स्नेह–विह्वला अम्बा ने श्रीभरत को श्रीरामवत् वात्सल्य प्रदान किया। अतः तदनुरूप दुग्धधार प्रश्रवित होने लगी।

अस कहि मातु भरत हियँ लाये । थन पय श्रवहिं नयन जल छाये ।

2/169/5

इस स्थल पर संत "विनीत" की कविता की दो पंक्तियों में अम्बा कौशल्या का कथन उद्धृत करने योग्य है।

मिल गया मुझको वही तू, राम सचमुच राम हैं ।
तू वही है, वह तू ही है, भिन्न केवल नाम है ।।

श्रीराम एवं श्री भरत के नाम में भी एक समान प्रभाव है। श्रीराम का नाम लेने से समस्त अंमगलों का विनाश हो जाता है। ऐसा भगवान शंकर का वचन है।

जिन्ह कर नाम लेत जग माहीं । सकल अमंगल मूल नसाहीं ।।
करतल होहिं पदारथ चारी । तेइ सियराम कहेउ कामारी ।।

1/315/1–2

श्रीराम नाम की महिमा अनिर्वचनीय है। अन्य की तो बात ही क्या है, स्वयं भगवान राम भी अपने राम नाम की महिमा को शब्द सीमा में बाँधकर व्यक्त नहीं कर सकते हैं।

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।

1/26/8

उधर स्वयं भगवान् राम के श्रीमुख वचन भरत के नाम की महिमा का उद्घोष कर रहे हैं, कि भरत का नाम जप करने से समस्त पाप तापों का उपशमन हो जावेगा तथा लोक में यश

एवं परलोक में सुख की प्राप्ति होगी। अस्तु मेरे नाम का नहीं, श्री भरत के नाम का जप परम श्रेयष्कर है।

मिटहिंं पाप प्रपंच सब, अखिल अंमगल भार ।

लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नाम तुम्हार ।।

2/263

प्रेमास्पद भगवान श्रीराम तथा उनके प्रेम स्वरूप श्री भरत के नाम की महामहिमा एक समान होना स्वाभाविक है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण के वचन हैं कि मैं और मेरा प्रेमी भक्त परस्पर एक दूसरे के हृदय में निवास करते हैं। अतः एक रूप होते हैं।

समोऽहं सर्वभूतेषु न में द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।

9/29

अर्थात् मैं सर्वभूतों में व्यापक परमात्मा हूँ। न मेरा कोई अप्रिय है और न प्रिय है। परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट होता हूँ।

परमेश्वर सब जगह व्याप्त होते हुए भी अपने प्रेमी भक्त में उसी तरह विशेष रूप से प्रकट होता है, जैसे सूक्ष्म रूप से सर्वत्र व्यापक अग्नि साधनों द्वारा प्रकट करने से ही प्रत्यक्ष होती है। इसी तरह दूध में व्याप्त मक्खन विशेष प्रक्रिया द्वारा ही प्रकट होकर उपयोगी बनता है।

इस विषय में युग–तुलसी उपाधि से विभूषित पद्म–भूषण श्रीराम किंकर उपाध्याय ने अपने प्रवचन में एक सटीक दृष्टांत प्रस्तुत किया था। एक व्यक्ति की गाय पीड़ा से कराह रही थी। वैद्य ने बतलाया कि आधा पाव काली मिर्च पीसकर उसे गाय के एक पाव शुद्ध घी में फेंटकर गाय को चटा दो। उस व्यक्ति ने आधा पाव काली मिर्च पीसकर गाय को चटाई तो काली मिर्च के तीखेपन से गाय अधिक चिल्लाने लगी। वैद्य ने पूछा कि तुमने दवा ठीक ढंग से नहीं दी है क्या ? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया मैने आधा पाव काली मिर्च पीसी। फिर विचार किया मेरी गाय प्रति दिन पाँच लीटर दूध देती है, जिससे पाव भर से अधिक घी तैयार हो जाता है। अतः आज दूध नहीं दुहूँगा, तो गाय के पेट में स्थित पाव भर घी से काली मिर्च ओतप्रोत हो जावेगी । वैद्य ने डॉटा कि मूर्ख जब तक दूध से प्रक्रिया द्वारा घी नहीं बनाया जावेगा, तब तक दूध में व्याप्त घी काम में नहीं आवेगा।

उक्त दृष्टान्त के अनुसार सबके हृदय में स्थित परमेश्वर को प्रेम से प्रकट करना ही श्रेयष्कर होगा।

व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ।।
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारीं ।।
नाम निरूपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ।।

1/23/6, 7, 8

प्रभु को अपने हृदय में विराजमान करके उनके हृदय में स्थान पाने वाले प्रेमीभक्त है श्रीहनुमान एवं श्री भरत

प्रनवउँ पवन कुमार, खल बन पावक ग्यानघन ।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर ।। 1/17
उधर श्रीराम है मंगल भवन । वे मंगल के घर हैं ।
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी ।। 1/112/4

मंगल के इस भवन में वही निवास कर सकेगा, जो स्वयं मंगलमूर्ति होगा। मंगलमूर्ति हैं श्री हनुमानजी। विनय पत्रिका में श्री हनुमान ही मंगलमूर्ति वर्णित किये गये हैं।

मंगल मूरति मारूत-नंदन । सकल अमंगल-मूल निकंदन ।। पद संख्या 36

अब श्री भरत के हृदय में क्षण–प्रतिक्षण श्रीराम का निवास है भगवती सरस्वती इस तथ्य की घोषणा करती हैं।

भरत हृदयँ सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ।।

2/295/7

तो श्रीराम के हृदय में निरन्तर श्रीभरत का चिन्तन चलता रहता है । श्रीभरत ही श्रीराम के हृदय धन हैं।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं । इहइ सगुन फल दूसर नाहीं ।।
रामहिं बंधु सोच दिन राती । अंडहिं कमठ हृदउ जेहि भाँती ।। 2/7/7–8

श्रीभरत के हृदयांगन–बिहारी श्रीराम स्वाभाविक रूप से उनके परमाराध्य हैं, जिनके पावन नाम का जप तथा श्रीराम गुणगान में निरन्तर लवलीन रहना उनकी अहर्निशि दिनचर्या हैं। श्रीहनुमान नें इसी रूप में उनका दर्शन किया था।

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती । रटहु निरंतर गुन गन पाँती । 7/2/3

उधर भगवान श्रीराम ने भाई श्रीभरत को आराध्य बनाकर उनके नाम का जप ग्रहण कर लिया है। इस सम्बन्ध में देवगुरू बृहस्पति ने देवराज इन्द्र को अवगत कराया था।

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ।। 2/218/7

भगवान श्रीराम एवं उनके परम प्रेमावतार भइया श्रीभरत के ऐक्य–दर्शन के अनन्तर प्रेम–महिमा–गान द्वारा इस अध्याय का समापन–

प्रेम हटा देती दूरी को, प्रेम मिटा देता व्यवधान ।
प्रेम भुला देता प्रपंच सब, प्रेम मिला देता भगवान ।।

सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा प्रस्तुत एक प्रेमोन्मादिनी का भक्तिगीत–

देव तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं ।
पूजा में बहुमूल्य भेंट वे, रंग रंग की लाते हैं ।।
धूमधाम से साजबाज से, मँदिर में वे आते हैं ।
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुयें, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं ।।
मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई ।
फिर भी साहस कर मंदिर में, पूजा करने हूँ आई ।।
धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झाँकी का श्रृंगार नहीं ।
हाय गले में पहिनाने को, फूलों का भी हार नहीं ।।
स्तुति कैसे करूँ तुम्हारी, है स्वर में माधुर्य नहीं ।
मन का भाव प्रकट करने को वाणी में चातुर्य नहीं ।।
नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई ।
पूजा की विधि नहीं जानती, फिर भी नाथ चली आई ।।
पूजा और पुजापा प्रभुवर इसी पुजारिन को समझो ।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो ।।
मैं उन्मत्त प्रेम की लोभिन, हृदय दिखाने आई हूँ ।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ ।।
चरणों में अर्पित है प्रभुवर, चाहो तो स्वीकार करो ।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो ।।

रामायण दास
ज्योतिर्विद साहित्याचार्य
श्री प्रेम अर्पण कुंज अयोध्या

अध्याय – पाँच

श्री भरत प्रेम की अनिर्वचनीयता

प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ।।

1/36/6

भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु ।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुखु, अह मम मलिन जनेषु ।।

2/225

ब्रह्म की भाँति प्रेम का विषय भी नेति–नेति कह कर व्यक्त किया जाता है। प्रेम को शब्दों की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता है। परिभाषा सुनिश्चित करने हेतु भरसक प्रयास करने पर असफल हो जाने पर ही ब्रज कोकिल सत्यनारायण "कविरत्न" बोल उठे थे–

उल्टीं पुल्टीं करीं, अखिल जग की सब भाषा ।
पै अब लौं नहिं बनी, प्रेम पूरी परिभाषा ।।

श्री प्रेम रामायण में मैथिल राजकुमार श्री लक्ष्मीनिधि ने अपने भाम श्रीराम से प्रश्न किया कि प्रेम क्या है? इसकी परिभाषा समझाने की कृपा कीजिये। तब श्रीराम द्वारा तत्सम्बन्धी विशद–विवेचन प्रस्तुत किया गया।

हे कुमार ! प्रेम तो अनिर्वचनीय है। यह मन, वाणी, चित्त, एवं बुद्धि सबसे परे है। जैसे गूँगा व्यक्ति रस का स्वाद केवल अनुभव कर सकता है। अपने इस आह्लाद का वर्णन नहीं कर सकता है। ऐसे ही प्रेम की परिभाषा नहीं बताई जा सकती है। शाखाचन्द्र न्याय से ऐसा समझ में आता है कि जब अपने प्रेमास्पद के स्मरण से हृदय में कसक उठती है, तब उसका हृदय में स्पर्श होने से प्रेमी अपने स्वत्व को भूल जाता है। मन, बुद्धि, चित्त में भवरस विलीन हो जाता है। श्याममयी दृष्टि बन जाती है। एक क्षण भी प्रेमी भक्त प्रेमास्पद के स्मरण बिना रह नहीं सकता। जैसे मछली जल से विलग करने पर तड़पती है, वैसे ही प्रेमी प्रेमास्पद के बिना तड़पता है। संभव है कि ऐसी कसक एवं तड़पन का नाम वेदों ने प्रेम शब्द से सम्बोधित किया है।

प्रेम अनिर्वचनीय कुमारा । मन बानी चित बुद्धिहिं पारा ।।

यथा मूक नहिं रस कर स्वादा । बरणि सकै अनुभव अहलादा ।।

तथा प्रेम परिभाषा नाहीं । तदपि सुनहु जस मोहिं लखाहीं ।।

सुरति करत जन जियहिं मँझारी । उठति करोय कसक इक न्यारी ।।

हिय महँ परस मोर जब होई । तुरत जात जन आपा खोई ।।

मन चित बुधि बिच जग रस नाहीं । श्यामहिं श्याम झूल दृग माहीं ।।

दोहा– बिनु सुमिरन छिन एकहूँ, रहि न सकत जन मोर ।

जल बिनु मछली सम तुरत, तलफत जगत विभोर ।।

ज्ञान कांड 96

जब श्याममयी दृष्टि बन जाय, जैसी कि नीचे उद्धृत पद में प्रकट की गई है।

जित देखौ तित श्याममई है ।

श्याम कुंज बन जमुना श्यामा, श्याम बरन घन घटा घई है ।।

सब रंगन में श्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है ।

हौं बौरी की लोगन ही की, श्याम पुतरिया बदल गई है ।।

चन्द्रसार, रविसार श्याम है, मृगमद श्याम काम बिजई है ।

नीलकंठ को कंठ श्याम है, मनो श्यामता बेलि बई है ।।

श्रुति को अक्षर श्याम देखियत, दीप शिखा पर श्यामतई है ।

नर देवन की कौन कथा है, अलख ब्रह्म छबि श्याम मई है ।।

नारायण स्वामी के दोहों में भी ऐसा ही दर्शन कराया गया है ।

नारायण जाके हिये, सुन्दर श्याम समाय ।

फूल पात फल डार में, ताको वही लखाय ।।

दर दिवार दर्पण भये, जित देखौ तित तोहिं ।

काकर पाथर ठीकरी, भये आरसी मोहिं ।।

श्री प्रेम रामायण में ऐसी ही श्याममयी दृष्टि दशा का नाम प्रेम बतलाया गया है। जब प्रेमास्पद की सुरति से प्रेमी तड़पता रहे। अहं और मम का रोग विनष्ट हो जावे। स्वसुख चाह निर्बीज हो जावे। तत्सुखे सुखित्वं में स्थिति हो जावे। स्वत्व पूर्णतः विनष्ट हो जावे। जहाँ विधि–निषेध–नियम की पहुँच न हो। कार्य–कारण से परे सुख–स्वरूप स्थिति हो। संभव है ऐसी ही महा–समाधि दशा का नाम प्रेम रखा गया हो।

श्याम दृष्टि जब आँखिन होई । संभव प्रेम कहैं तेहि लोई ।।
छिन बिनु सुरति स्वप्रिय के जबहीं । रहि न सकै तलफत तन तबहीं ।।
संभव प्रेम ताहि कह लोगू । मैं अरू मोर जहाँ नहिं रोगू ।।
निज सुख चाह बीज नसि जाई । मम सुख चाह हृदय अधिकाई ।।
संभव दशा सो प्रेम कहावै । आपा नसि इक प्रेमिहिं भावै ।।
बिनु कारण सूक्षम सुठि प्रेमा । बिधि-निषेध जहँ रहैं न नेमा ।।
कारण-कार्य परे सुख रूपा । जानै जो अनुभवै अनूपा ।।

दोहा- कुँअर यथारथ प्रेम की, परिभाषा नहिं होय ।
अनुभव महँ जान्यो परै, बरणि सकै नहिं कोय ।।

श्री प्रेमरामायण ज्ञान कांड 97

पहले भी संकेत किया गया है कि प्रेम की अनिर्वचनीय महिमा के तत्वदर्शी महात्मा कबीर ने कितनी सटीक बात कही है कि वाक्य ज्ञान से परिपूर्ण पोथियों को पढ़कर विद्वता का दावा करने वाला शुष्क ज्ञानी पंडित पद से विभूषित करने योग्य नहीं है, वरन् कोई व्यक्ति, मात्र ढाई अक्षर वाले शब्द प्रेम का पाठ हृदयंगम करके प्रेमविभोर दशा में मग्न हो जावे तो वही सच्चा पंडित है।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआँ, पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ।।

यह ढाई अक्षर वाला प्रेम शब्द कह सुन लेना सरल है, परन्तु इसकी उपलब्धि भी सरल है क्या ? इसकी उत्पत्ति कहीं किसी खेत बाड़ी में खेती करके हो सकती है क्या? या किसी हाट बाजार में मूल्य चुकता कर खरीदी जा सकती है क्या? क्या कहीं कोई कुबेर सदृश धनपति इसे प्राप्त कर सकते हैं ? या चक्रबर्ति नरेश अपने कोषालय में शोभा हेतु इसे रखने में सक्षम हैं क्या ? यह तो महान योगी तपस्वी सिद्धों के लिये भी दुष्प्राप्य है। प्रेम वल्लरी गीत काव्य के पद संख्या 95 में प्रेम प्राप्ति हेतु आत्म बलिदान की विधि वर्णित है। खुदी (अहं) को मिटा देने पर ही साहब (परमात्मा) प्रेम के रूप में वरण करता है। इस प्रेम नगरिया में कोई सिर (अहं) लेकर प्रवेश नहीं कर सकता है। यहाँ तो अपनी हस्ती (स्वत्व) रखना जुर्म है। उससे प्रियतम रूष्ट होकर दूर हो जाता है। अहं (मैं) और मम (मेरा) के समर्पण बिना रसिकेश्वर राम नहीं मिलते हैं।

भाई प्रेम न हाट बिकावै ।
खेत न उपजै, खान न निकसै, कहहु कहाँ ते पावै ।।
शीश के मोल मिलै ढिग प्रेमिन, राव रंक लै जावै ।।
किये खत्म जो खुदी को जग में, सो साहब उर लावै ।।
कलम काटि सिर अपनो देखो, कर में सदा सोहावै ।।
नेह नगरिया चलै जो कोऊ, सिर लै कबहुँ न धावै ।।
हस्ती अहै शुमार जुर्म में, प्रियतम अति रिस हावै ।।
"हर्षण" मैं अरू मोर गये बिनु, राम रसिक नहिं आवै ।।

प्रेम वल्लरी पद संख्या 95

तात्पर्य यह कि प्रेम किसी साधना का परिणाम नहीं हो सकता। साधनायें सभी अधूरी हैं। इसलिए साधना का उद्देश्य प्रेम नहीं, प्रत्युत प्रेम के लिए पात्रता को प्राप्त करना है। जहाँ ज्ञान की शोभा उसकी एकरूपता में है, वहीं प्रेम तो प्रतिक्षण वर्द्धमान होता रहता है। इसी में प्रेम की सार्थकता है ।

प्रेम सदा बढ़िबो करै, ज्यों शशिकला अशेष ।
पै पूनो यामें नहीं, ताते कबहुँ न शेष ।।

प्रेम की निरन्तर अभिवृद्धि होने से प्रेम की इयत्ता नहीं हो सकती। इयत्ता न होने से प्रेम का चित्रांकन नहीं किया जा सकता है। श्रृंगार रस के महाकवि बिहारी ने अपनी नायिका की छबि क्षण–प्रतिक्षण वृद्धिमान होते रहने के कारण संसार के समस्त चित्रकारों का पराभव दर्शाया है।

लिखन बैठ जाकी छबिहिं, गहि गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।

ऐसी ही स्थिति प्रेम का वर्णन करने में बन जाती है, क्योंकि प्रेम जीवन के अन्त्तर्तम की अलौकिक स्फूरणा है। वह जीवन की महानतम उदात्त भावना है। वह सृष्टि का अवलम्ब और जीवन का प्रयोजन है। प्रेम ही भूलोक का अमृत है। इसकी पिपासा प्रत्येक हृदय की आध्यात्मिक पिपासा है। इस दुःखालयँ अशाश्वतं संसार में यदि कोई रस है, सार है, तथ्य है, तो वह केवल प्रेम ही है। जब मानव हृदय में प्रेमभावना प्रादुर्भूत होती है, तो वह दया, करूणा, सेवा, उदारता, सहयोग, परोपकार आदि मानवता को विभूषित करने वाले सद्गुणों का मूर्तिमान

स्वरूप बन जाता है। तब हिंसा, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि समस्त दुर्भावनायें समाप्त हो जाती हैं। प्रेम में हिंसा, परपीड़न की छाया भी नहीं पनप सकती, क्योंकि वहाँ तो करूणा का स्थायी निवास होता है।

प्रेम रसात्मक सरस रस , प्लावन करन समाज ।
अनिर्वचनीय इक तत्व है, प्रति हृद मध्य बिराज ।।

ऐसे महामहिमामय अनिर्वचनीय प्रेम तत्व के परिप्रेक्ष्य में श्रीभरत के परम प्रेम के विषय में लेखनी एवं वाणी का असहाय मूकवत् बन जाना स्वाभाविक है। स्वयं भगवान श्रीराम भी श्रीभरत प्रेम की महामहिमा को इदमित्थं नहीं कह सकते। चित्रकूट दरबार में श्रीराम अपने परमप्रिय श्री भरत के विषय में उद्‌गार प्रकट करने को खड़े हुए। जब उन्हें समस्त विश्व में श्रीभरत के समान कहीं कोई उपमान नहीं मिला, तो श्रीराम को भरत की उपमा भरत से ही देते बनी।

करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्हतात ।
गुर समाज लघुबंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात ।। 2/304

पहले वहीं चित्रकूट की पावन वसुन्धरा में विदेहराज जनक अपनी प्राणप्रिया सुनयना से इस विषय में अपने उद्‌गार प्रकट करने लगे। पहले तो उन्होंने अपनी बुद्धि के वैशिष्य को बतलाया कि धर्म के गूढ़ रहस्यों के उद्‌घाटन, राजनीति की जटिल समस्याओं के समाधान तथा ब्रह्म जिज्ञासा सम्बन्धी अकथ विषय–निरूपण में मेरी बुद्धि का सक्षम प्रवेश है, क्योंकि मुझे योगेश्वर, ज्ञान शिरोमणि महर्षि याज्ञवल्क्य का कृपा–प्रसाद मिला हुआ है। लेकिन अपनी उसी तत्वविवेचनी प्रज्ञा के बल पर दुर्लघ्य सुमेरूवत् भरत महामहिमा के शिखर तक पहुँचने की बात तो बहुत दूर है, मैं तो धोखे से भी उसकी छाया तक का स्पर्श करने में समर्थ नहीं हूँ।

धरम राजनय ब्रह्म बिचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ।।
सो मति मोरि भरत महिमाहीं । कहै काह छलि छुअति न छाहीं ।।

2/288/4–5

आगें इस संदर्भ में कुछ कह सकने का प्रयास करने वाले संख्या की अवधि नौ वक्ताओं की स्थिति स्पष्ट करने लगे ।

बिधि गनपति अहिपति सिव सारद । कबि कोबिद बुध बुद्धि विशारद ।।

2/288/6

विचारणीय है कि इस सूची में कितने उच्च कोटि के परम समर्थ वक्ता परिगणित किये गये हैं

(1) चारों वेदों का गायन करने वाले जगत्पिता ब्रह्माजी

(2) विद्या वारिधि बुद्धि विधाता गणपति गणेश

(3) दो हजार जिन्ह्वाओं से भगवान् का गुणानुवाद गाने वाले श्रीहरि के विश्रामदायक पृथ्वी के आधार शेषनाग

(4) वेद-विख्यात त्रिभुवन गुरू भगवान शंकर

(5) विद्या बुद्धि की अधिष्ठात्री वीणापाणि देवी शारदा

(6) "जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि" उक्ति सार्थक कर्त्ता कवि

(7) "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का साक्षात्कार प्राप्त ब्रह्म ज्ञानी

(8) सारासार - पारखी, तत्व-विचार-निपुण बुद्धिमान

(9) स्वयं प्रकाशिका प्रज्ञा से आलोकित विशेष विद्वान

इस प्रकार विदेहराज़ ने नौ अप्रतिम वक्ता परिगणित किये। इसमें देवलोक के चार वक्ता विधि, शिव गणपति, शारदा, पाताल लोक के शेषनाग एवं भू लोक के चार वक्ता कवि, कोविद, बुध एवं बुद्धि विशारद शामिल थे। यद्यपि ये समस्त नौ अप्रतिम वक्ता भगवान के गुण-गायन में प्रवीण हैं, परन्तु जब उन्होंने भरत की महा-महिमा का अनुसंधान करना चाहा, तो उनकी गति उसी प्रकार अवरूद्ध हो गई, जैसे मछली जलहीन भूमि पर वहीं पड़ी-पड़ी छटपटाती रहती है, आगे नहीं बढ़ सकती।

अगम सबहिं बरनत बरबरनी । जिमि जलहीन मीन गम धरनी ।।

2/289/1

कारण यह है कि असीम को एक ससीम बाँट के पैमाने से तौलने का प्रयास उपहासास्पद ही होता है। भला सुमेरू पर्वत को कोई सेर जैसे छोटे बाँट के द्वारा तौल सकता है ? भरत तो अनंत, असीम, अनुपमेय महापुरूष हैं। भरत के समान केवल भरत ही हैं। जो विषय, मन, बुद्धि, वाणी और तर्क सबसे परे हो, सर्वोपरि प्रेम की अवधि (सीमा) हो, उसका वर्णन असंभव ही तो होता है। जब प्रेमतत्व वर्णनातीत है, तो परमप्रेम का वर्णन कैसे हो सकता है।

निरवधि गुन निरूपम पुरूष, भरत भरत सम जानि ।

कहिअ सुमेरू कि सेर सम, कबि कुल मति सकुचानि ।। 2/288

आश्चर्य की बात यह है कि श्रीभरत सर्वगुण सम्पन्न हैं। पर उनमें गुणीपन का अहंकार लेशमात्र नहीं है। समस्त पुण्यों का आश्रय होते हुए भी पुण्यात्मा होने की वृत्ति का सर्वथा अभाव है, क्योंकि वे अपने स्वतंत्र अस्तित्व को विसर्जित करके रामाकार बन गये हैं। अतः हे सुनयने, तुम भली भॉति जान लो कि, उन्हें केवल श्रीराम ही जान सकते हैं। पुनः ज्ञाता होने पर भी श्रीराम इस भरत महा–महिमा का वर्णन करने में असमर्थ ही रहेंगे, क्योंकि यह विषय तो अनिर्वचनीय है। फिर वाणी का विषय कैसे बनाया जा सकता है ?

भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ।

2/289/2

सचमुच में यह वाणी या भाषा का विषय नहीं। जो भी इसके निरूपण का प्रयास करता है, उस निरूपण कर्ता की करारी हार ही होती है। यह संयोग–वियोग उभय स्थितियों में सर्वथा एकरस रहने वाला तत्व है। इसकी अनिर्वचनीयता भी जगत से पृथक जगतपति की भॉति मात्र अनुभव का ही विषय है। इस अगाध असीम रससागर के भाव–कल्लोल में डूबने वाले डूबे ही रहते हैं। उन्हें यहॉ से निकलने की न तो वांछा है और न कोई राह ही है। महाकवि रसखानि के शब्दों में–

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान ।
जो आवत यहि ढिंग बहुरि, जात नहीं रसखान ।।

प्रेमियों का दिव्य मन समस्त प्रकृति जगत से ऊपर उठा हुआ दिव्याति दिव्य होता है। यहाँ तो मोम के अश्व पर चढ़कर आग के गोले के अंदर से निकलने में भय की नहीं, आनंद की अनुभूति होती है। इस पथ पर उफनाते हुए प्रेम के प्याले मिलते हैं। इसके विलक्षण स्वाद के सामने सुधा भी तुच्छातितुच्छ है। क्यों न हो ? प्रेमी तो प्रेमासव का पानकर मस्त हो जाता है। उसके लिए तो देहाध्यास विलुप्त हो जाता है। जीवन मरण का भय शेष रहता ही नहीं है। जब श्रीभरत के साथ समस्त अयोध्यावासी श्रीराम दर्शनार्थ चित्रकूट पथ पर अग्रसर थे, तो उनकी देह–दशा का अवलोकन कीजिये –

करत मनोरथ जस जियँ जाके । जाहिं सनेह सुराँ सब छाके ।।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं । बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं ।।

2/225/3,4

ऊपर से बाह्य रूप में देखने पर शराबी जैसी मदमस्त दशा दिखाई देती है, परन्तु प्रेम की यह स्थिति परम दिव्य होती है। कानों में सर्वत्र प्रियतम का स्वर, ऑखों में प्रियतम का रूप जिह्वा में प्रियतम का नाम तथा नासिका में प्रियतम के श्रीअंगों का सौरभ समाया रहता है। इस प्रकार प्रेमी और प्रेमास्पद का दिव्य और अटल संयोग आत्मा को आनंद—विभोर किये रहता है।

कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,

हिय में न जानि परै, कान्ह है कि प्रान है ।।

जीव और ब्रह्म के बीच की दो अंगुलि की दूरी, जिसे काकभुसुंडि अनुभव कर रहे थे कि श्रीराम की भुजा उनसे केवल दो अंगुलि की दूरी पर है, प्रेमी के लिए समाप्त हो जाती है।

ब्रह्म लोक लगि गयउँ मैं, चितयउँ पाछ उड़ात ।

जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहिं मोहिं तात ।। **7/79(क)**

ब्रह्म को बाँधने में यशोदा मैया की डोरी दो अंगुल छोटी पड़ जाती थी। तब उन्होंने उस अपरिमेय ब्रह्म को प्रेम की ढाई अंगुल की डोरी से बाँध लिया। ये प्रेम के ढाई अक्षर उस परब्रह्म को बाँधने में समर्थ है, जो अपनी प्रबल कर्म की डोरी से मशक से ब्रह्मा पर्यन्त सबको बॉधकर नचा रहा है।

जिन बाँधे सुर असुर नाग नर, प्रबल करम की डोरी ।

सोइ अवछिन्न ब्रह्म जसुमति, हठि बाँध्यो सकत न छोरी ।।

जाकी माया बस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो ।

करतल ताल बजाय ग्वाल – जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो ।।

विनय पत्रिका पद संख्या 98

सृष्टि क्रम में जड़ता से चेतना की दिशा में बढ़ते जाना व्यक्ति का उत्थान है, किन्तु प्रेम राज्य में जड़ चेतन बन जाता है, जबकि चेतन प्रेमसमाधि में जड़ बन जाता है।

होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।

2/238/8

चैतन्य के जड़ बन जाने पर वह उस निश्त्रैगुण्य की स्थिति में पहुँच जाता है, जिसे देखकर जड़ता की ही भ्रांति होती है। वस्तुत उस स्थिति में जड़ चेतन का भेद ही समाप्त हो जाता

है। परम प्रेमी सुतीक्ष्ण अविरल प्रेमभक्ति में विभोर होकर मार्ग में ही जड़वत् अचल होकर बैठ गये थे।

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई । प्रभु देखैं तरू ओट लुकाई ।।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हॅृदय हरन भव भीरा ।।
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फल जैसा ।।

3/10/13–15

मुनि की देह की पुलकावली कटहल के फल का दृश्य उपस्थित कर रही थी । गोस्वामी जी ने मानस–सर वर्णन में पुलकावली के तीन स्तर वाटिका, बाग, वन के रूप में प्रस्तुत किये हैं। प्रथम पुलक वाटिका है, अधिक वृद्धि होने पर पुलक बाग का रूप धारण करती है तथा अधिकतम स्तर पर वह वन के रूप में प्रकट होती है। इसमें परमानंद स्वरूप पक्षि वर्ग बिहार करते हैं। सुन्दर मन रूपी माली नेत्रों के प्रेमाश्रुरूप प्रेम जल से इनका सिंचन निरन्तर करते हैं।

पुलक बाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारू ।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारू ।। 1/37

विशेष विकसित पुलकावली को प्रेम वन की संज्ञा दी गई है। उस स्थिति के प्रेमी का हृदय भगवान् सीताराम की विहार–स्थली बन जाता है। जिस प्रकार लौकिक वन किसी माली के पुरूषार्थ का परिणाम न होकर ईश्वरीय देन है, क्योंकि वन में न तो वृक्षारोपण करना पड़ता है और न उन्हें सींचना पड़ता है। उसी प्रकार भगवत्प्रेम प्रभुकृपा से प्राप्त होता है। प्रभु कृपा ही उसकी प्रेरक, रक्षक सब कुछ है।

रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारू ।
तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुबीर बिहारू ।। 1/31

यदि इस प्रेमवन में कोई मार्ग भूल जावे, तो देवता उसे मार्ग दिखाते हैं ।

देखि भरत गति अकथ अतीवा । प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ।।
सखहिं सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ।।

2/238/5,6

अन्यथा प्रभु स्वयं ही जैसे प्रेमी भक्त सुतीक्ष्ण को खोजते हुए पहुॅचे थे, वैसे ही, परम प्रेमी भरत के पास दौड़कर पहुॅच जाते हैं। इस अध्याय के समापन में आचार्य महाप्रभु प्रणीत

विनय–वल्लरी का पद संख्या 111

ऐसो प्रेम मूर्ति कोउ नाहीं ।
महाभागवत भरत यथा जग, तीन काल के माहीं ।।
सीताराम चरण अति प्रीती, अगम अपार अथाहीं ।
अनुपम अकथ कहै को कोविद, विधि हरि हर नहिं पाहीं ।।
ऋषि मुनि संत देव लखि भूले, भरत भाव भल माहीं ।
भरत प्रेम कणिका जल बूड़े, जनक वशिष्ठ सोहाहीं ।।
सकल धरम धुर ज्ञान बिरागी, राम विरह बहु–दाही ।
"हर्षण" कृपा-कोर प्रभु पेखहु, पावहुँ प्रेम अचाही ।।

श्री सिद्धि सदन अयोध्या श्रीरामार्चा महायज्ञ में श्री गुरुदेव भगवान के वरदहस्त से कृतकृत्य लेखक

वैकुंठन को तिलक अयोध्याधाम सुहावन।
सरयूतीरे सिद्धिसदन शोभित मनभावन।।
प्रेममूर्ति गुरुदेव बिराजे प्रेम प्रदाता।
जय श्री हर्षण देव जगतगुरु जग विख्याता।।
जिनकी पदरज हम सबन्ह भवभय से उद्धारिणी।
वरद हस्त सिर पर रख्यो, धन्य सुरेन्द्र रामायणी।।

अध्याय – छः

श्री भरत के गूढ़ प्रेम की महिमा

गूढ़ सनेह भरत मन माहीं ।

(कौशल्या अम्बा का कथन) 2/284/4

श्री भरत के अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप की महिमा का यत्–किंचित् उल्लेख कर देने के पश्चात् अब इस अध्याय से अपने प्रतिपाद्य विषय **"सब बिधि भरत सराहन जोगू"** की दिशा में उन्मुख होने का प्रयास किया जा रहा है। सर्वप्रथम श्रीराम एवं श्रीभरत की एकरूपता, सादृश्यता तथा समानता के विविध बिन्दुओं का दिग्दर्शन कराते हुए श्रीभरत प्रेम के वैशिष्टय की ओर अग्रसर होवें, क्योंकि प्रेमावतार भरत के प्रेम की विशिष्टता का अनुसंधान ही इस ग्रंथ का लक्ष्य है।

श्रीभरत उस दिव्य प्रेमतत्व के मूर्तिमान स्वरूप हैं, जहाँ स्वार्थ की गंध तो क्या परमार्थ की भी चाह स्वप्न में नहीं है। जहाँ साधक, साधन, साध्य की त्रिपुटी का विलीनीकरण हो गया है। जिसमें प्रेमी, प्रेम, प्रेमास्पद की त्रिपुटी भी समा गई है। अतः **"जाहि राम पद गूढ़ सनेहू"** 1/17/1 शब्दावली से वंदित महायोगी विदेहराज ही इसे किंचित् जान सकते हैं। परन्तु जब श्रीभरत के गूढ़ प्रेम का दिग्दर्शन कराने का प्रश्न उपस्थित होता है, तब तो वे, न केवल अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं, प्रत्युत् परम समर्थ नौ वक्ताओं तथा स्वयं भगवान श्रीराम की असमर्थता की भी घोषणा कर देते हैं, जिसकी चर्चा पूर्व अध्याय में हो चुकी है। वाणी का प्रवेश तो वहीं तक हो सकता है, जहाँ तक भुक्ति, मुक्ति की कामना का प्रवेश है। किन्तु जो प्रेमी भक्त चारों परम पुरूषार्थों की कामना को ठुकराकर केवल श्रीरामचरण कमल का लुब्ध मधुकर बन गया हो, उसकी अभिव्यक्ति वाणी कैसे कर सकती है। प्रयागराज में त्रिवेणी तट पर भरत की आर्त–पुकार –

अरथ न धरम न काम रूचि, गति न चहऊँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदान न आन ॥

2/204

दूसरे शब्दों में कहा जावेगा कि प्रत्येक भक्त भगवान को नैवेद्य समर्पित करने के बाद उसके प्रसाद की चाह करता है, पर श्रीभरत ऐसे विलक्षण भक्त हैं, जिन्हें प्रसाद के रूपमें एक कण भी नहीं चाहिये, क्योंकि ऐसा देखा गया है कि प्रसाद की याचना करने पर संकोचवश भोक्ता अपना आस्वाद ग्रहीता को अधिक मात्रा में दे बैठता है। कभी–कभी तो उसे समग्र रूप में दे डालता है। सहज स्नेह से परिपूर्ण निस्वार्थ, निस्पृह समर्पण ही श्रीभरत का परमध्येय, श्रेय और लक्ष्य सब कुछ है।

परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।

साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहिं लखि परत भरत मत एहू ।।

2/289/7–8

इसी स्थल पर इसी प्रसंग में श्रीविदेहराज ने वरवर्णिनी श्री सुनयना से श्रीभरत की कथा का महात्म्य भवबंधन से मुक्त कर देने वाला निरूपित किया है ।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भव बंध बिमोचनि ।।

2/288/3

यही भवसागर पार कराने वाला गुण तो श्रीराम कथा में भी है न ?

भवसागर चह पार जो पावा । रामकथा ताकहँ दृढ़ नावा ।।

7/53/3

वस्तुतः श्रीराम कथा–गंगा में अवगाहन, मज्जन तथा जलपान करने से सभी दैहिक, दैविक, भौतिक पाप–तापों से छुटकारा मिल जाता है ।

सादर मज्जन पान किये तें । मिटहिं पाप परिताप हिये तें ।।

1/43/6

यही प्रभाव प्रताप श्री भरत–चरित्र में भी असंदिग्ध रूप से वर्तमान है।

पाप पुंज कुंजर मृगराजू । समन सकल संताप समाजू ।।

2/326/7

श्रीराम एवं श्रीभरत दोनों के चरित्र भवसागर से पार कर देने वाले तथा पाप–संताप–मोचक हैं। परन्तु इनमें किंचित् अंतर दृष्टव्य है। श्रीरामचरित मानस के सभी वक्ता अपने श्रोता को सावधान करते हैं कि श्रीराम के सगुण चरित्र सुगम होते हुए भी ऐसे अगम्य भी हैं कि श्रद्धा–विश्वास–हीन श्रोता अपने मति–भ्रम से उनमें कुतर्क का आश्रय लेकर दोष–दर्शन करके

मोह–ग्रस्त हो जाता है।

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोय ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय ।।

7/73(ख)

महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है कि श्रीराम के किसी–किसी विचित्र चरित्र को परम सुजान श्रोता ही समझ सकते हैं। जो बुद्धि–हीन मोह–ग्रस्त व्यक्ति ऐसे चरित्र को देखे–सुनेगा, वह अन्यथा धारणा कर लेगा। दक्ष कुमारी सती एवं पक्षिराज गरूड़ इसके उदाहरण हैं।

अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान ।
जे मतिमंद बिमोह बस, हृदय धरहिं कछु आन ।।

1/49

भगवान शंकर भगवती उमा से बतलाते हैं कि श्रीराम के गुण अत्यंत दुर्गम एवं गुप्त हैं। उनका अनुशीलन करके सज्जन, पंडित एवं मुनिगण वैराग्य लाभ करते हैं, जबकि विमूढ़ात्मा भगवत् विमुख जन एवं धर्मरहित अधमजन मोहग्रस्त हो जाते हैं।

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि बिमुख न धर्म रति ।।

3 प्रारंभ सोरठा

नीलगिरि स्थित भक्तराज काकभुसुंडि पक्षिराज गरूड़ से कहते हैं कि भगवान श्रीराम की लीला उनके भक्तों के लिए सुखप्रद है, जबकि दनुज वृत्ति वाले लोग उसे देखकर मोह–ग्रस्त हो जाते हैं।

असि रघुपति लीला उरगारी । दनुज बिमोहनि जन सुखकारी ।।

7/73/1

महर्षि वाल्मीकि स्वयं भगवान् श्रीराम से कहते हैं कि हे राम! तुम्हारे चरित्र देखकर ज्ञानी जन ही सुखी होते हैं। अज्ञानी जड़ व्यक्ति तो मोह–ग्रस्त होकर अवसाद में पड़ जाते हैं।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ।

2/127/7

वस्तुतः भगवच्चरित्र ऐसे विस्मयकारक होते हैं कि सामान्य जन की तो बात ही क्या ? चारों

वेदों के वक्ता जगत्पिता ब्रह्मा की बुद्धि भी उन्हें समझने में असमर्थ हो जाती है। तभी तो भगवान् श्रीकृष्ण को गोपकुमारों का जूठन माँग–माँगकर खाते देखकर वे मोह–ग्रस्त हो जाते हैं। श्री शुकदेवजी कहते हैं। (श्रीमद् भागवत महापुराण)

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।
स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ।।

10/13/44

भगवान श्रीकृष्ण की माया में तो सभी मुग्ध हो रहे हैं परन्तु कोई भी माया–मोह भगवान् का स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्माजी उन्हीं भगवान श्रीकृष्ण को अपनी माया से मोहित करने चले थे, किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा, वे अजन्मा होने पर भी अपनी ही माया में अपने आप मोहित हो गये।

जैसे श्रीकृष्ण लीला में ब्रह्माजी, शंकरजी तथा देवराज इन्द्रादि मोह–ग्रस्त हुए, वैसे ही भगवान् श्रीराम की लीला देखकर भी मोह–ग्रस्त होने वालों की सूची विस्तृत है। आचार्यों ने भगवल्लीलाओं का वर्गीकरण करके उन्हें 6 वर्गों में विभाजित किया है ।

(1) बाल लीला (2) विवाह लीला (3) वन लीला (4) रण लीला (5) राज लीला (6) रास लीला । इनमें प्रत्येक लीला के दृष्टा मोह–ग्रस्त होते पाये गये हैं। विस्तार– भय से उनका वर्णन न करके अंगुलि–निर्देश मात्र ही समीचीन होगा ।

(1) बाल लीला – (क) माता कौशल्या –

बिसमयबंत देखि महतारी । 1/202/6

तथा

बार बार कौशल्या, बिनय करइ कर जोरि ।
अब जनि कबहूँ ब्यापै, प्रभु मोहिं माया तोरि ।। 1/202

(2) विवाह लीला – (क) देवराज इन्द्र –

सो बिलोकि सुरनायक मोहा। 1/289/8

(ख) जगत्पिता ब्रह्मा –

बिधिहिं भयउ आचरज बिशेषी । 1/314/8

(3) वन लीला – दक्षपुत्री सती –

जासु चरित अवलोकि भवानी । सती सरीर रहिहु बौरानी ।।

1/141/4

(4) रण लीला – पक्षिराज गरूड़ –

मोहिं भयउ अति मोह, प्रभु बंधन रन महुँ निरखि ।

चिदानन्द संदोह, राम बिकल कारन कवन ।।

7/68(ख)

(5) राज लीला – स्वयं गुरूदेव ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का कथन है –

देखि देखि आचरन तुम्हारा । होत मोह मम हृदयँ अपारा ।।

7/48/4

(6) रास लीला – वैसे श्रीरामचरित मानस में श्रीराम की रासलीला का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं है, परन्तु आचार्यगण चिद्–विलास–क्षेत्र चित्रकूट में सांकेतिक रूप से वर्णित एकांतिक लीला को दिव्य रास लीला के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं ।

एक बार चुनि कुसुम सुहाये । निज कर भूषन राम बनाये ।।

सीतहिं पहिराये प्रभु सादर । बैठे फटिक सिला पर सुंदर ।।

3/1/3,4

गीतावली रामायण पद संख्या 44 में भी इसी दिव्य रास लीला का संकेत प्राप्त होता है।

फटिक सिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरू तमाल

ललित लता–जाल हरति छबि बितान की ।

निज कर राजीव नयन पल्लव–दल–रचित सयन

प्यास परस्पर पियूष प्रेम–पान की ।।

सिय–अंग लिखै धातुराग, सुमननि भूषन–विभाग

तिलक–करनि का कहौ कला–निधान की ।

माधुरी बिलास–हास, गावत जस तुलसिदास

बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ।।

गीतावली रामायण अयोध्या कांड पद संख्या 44

इस लीला में इन्द्र पुत्र जयंत को मोह हुआ, जो काक–वेश धारण कर अपराध–प्रवृत्त हुआ।

"कीन्ह मोह-बस द्रोह" । 3/2

इस संक्षिप्त वर्णन का निष्कर्ष यह कि श्रीराम चरित्र में कहीं–कहीं कभी–कभी मति भ्रम एवं मोह उत्पन्न हो जाता है, जबकि श्रीभरत चरित्र निःसंशय श्रीराम–प्रेमोत्पादक है। उसमें मति–भ्रम एवं संशय–मोह–ग्रस्त हो जाने का प्रावधान ही नहीं है। श्रीभरत–चरित्र तो अवश्यमेव भवरस–विमोचन करता है।

भरत चरित कर नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु, अवसि होइ भव रस बिरति ।।

2/326

श्रीराम–दर्शन का प्रताप है कि जीव को स्वरूप–सिद्धि हो जाती है। वह अपने आत्म–स्वरूप को पहचान जाता है। वह इस मायिक पंच–तत्व–निर्मित जड़ देह से ऊपर उठ जाता है।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ।।

3/36/9

परन्तु कभी–कभी ऐसा भी होता है कि श्रीराम दर्शन से भव–द्वन्द्व में पड़ा जीव मरणोपरान्त (देह–त्याग के बाद) ही परम पद प्राप्त करने का अधिकारी बनता है, परन्तु इस देह में – प्रारब्ध–वशात् भोगने वाले भव रोग से पीछा नहीं छुड़ा पाता है। उसकी स्थिति इस लौकिक दृष्टान्त से समझी जा सकती है।

किसी छात्र ने शिक्षक–पद प्राप्त करने योग्य निर्धारित उपाधियाँ अर्जित कर लीं। वह शिक्षक–पद पाने का अधिकारी बन गया। पर जब तक उसे शिक्षक–पद पर नियुक्ति का आदेश नहीं मिला, तो अर्हता होते हुए भी वह पूर्ववत् विपन्नावस्था में दिन काटता है। जब उसे नियुक्ति–आदेश मिलकर वेतन मिलने लगा, तो उसकी विपन्नावस्था समाप्त हो जाती है। ऐसे ही श्रीरामदर्शन से **"भये परम पद के अधिकारी।।"** 2/139/2 मोक्ष के अधिकारी तो बन गये, पर अभी भी भव में पड़े हुए थे। वे श्री भरत के दर्शन से ही भव–रोग की निवृत्ति पा सके।

जड़ चेतन मग जीव घनेरे । जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ।।
तो सब भये परम पद जोगू । भरत दरस मेटा भव रोगू ।।

2/217/1,2

वन–पथ में ग्रामीण नारियों के उदगार हैं :–

हम सब सानुज भरतहिं देखे । भइन्ह धन्य जुवती जन लेखे ।।

2/223/3

महाकवि को ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीभरत के वेष में साक्षात् प्रयागराज पद यात्रा करते हुए अधिकारी अनधिकारी सबको कृत्कृत्य कर रहे हैं। भरत की प्रेमोन्माद दशा के दृष्टा समाधिस्थ होकर जिस परमानंद में निमग्न हो जाते हैं, उसमें मुक्ति से भी विलक्षण पुरूषार्थ प्रेम की प्राप्ति हो रही है। प्रयागराज के पास केवल चार पदार्थ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष हैं। कहा गया है– "चारि पदारथ भरा भँडारू" 2/105/4 विशिष्ट पंचम पुरूषार्थ प्रेम का दान करने में वे समर्थ नहीं हैं। प्रेम को सर्वसुलभ कराने वाला महापुरूष श्रीभरत तीर्थराज प्रयाग से भी विशिष्ट लोकोत्तर प्रयाग है, जो जंगम–तीर्थराज के रूप में भारतेतर सुदूरवर्ती सिंघल द्वीप वासियों को भी कृतार्थ करते हुए विचरण कर रहा है।

भरत दरसु देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु ।
जनु सिंघल बासिन्ह भयउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ।।

2/223

श्रृंगवेरपुर के नायक निषादराज गुह ने पहले प्रकारान्तर से भरत की परीक्षा ली थी, कि इनके मन में सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण में से कौन सी विचारधारा पनप रही है, जिसके आवेश में ये श्रीराम के पास चतुरंगिणी सेना से सुसज्जित होकर प्रयाण कर रहे हैं। यदि इनके मन में राम के प्रति अनुराग का सात्विकी भाव होगा, तो इनकी दृष्टि कंद, मूल, फल जैसे सतोगुणी पदार्थों पर केन्द्रित होगी। यदि ये अपना राजसी तामझाम प्रदर्शित करने जा रहे होंगे, तो खग,मृग जैसे रजोगुणी पदार्थ इन्हें प्रिय लगेंगे। यदि श्रीराम के विरोध में अकंटक राज्य–लिप्सा से युद्ध करने जा रहे होंगे, तो निश्चित ही मछली जैसे तमोगुणी पदार्थों पर दृष्टि–विन्यास करेंगे। इसी आधार पर मैं इनकी मनोवृत्ति की जाँच कर लूँगा। बेचारे गुह क्या जानते थे, कि मैं जिस महामानव की परीक्षा लेने जा रहा हूँ, वे इन पदार्थों की ओर दृष्टिपात भी करने वाले नहीं हैं। वे तो त्रिगुणातीत महापुरूष हैं। उन्हें अन्य कोई लालसा होने की बात तो बहुत दूर, यह भी लालसा नहीं है कि उनको कोई श्रीराम के पक्षधर के रूप में सम्मानित करे। उनका कितना निस्पृह सिद्धांत है कि श्रीराम भी उन्हें अपना प्रेमी न मानकर कुटिल मानते रहें एवं सारा संसार उन्हें श्रीराम–द्रोही मानकर भर्त्सना का पात्र क्यों न बनाता रहे, फिर भी उनके हृदय में श्रीराम चरणानुराग दिन–प्रतिदिन नित नव नवायमान होता रहे। वस्तुतः प्रतिकूल परिस्थिति में

प्रेम और अधिक निखरता है।

जानहुँ राम कुटिल करि मोहीं । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरे । अनु दिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥

2/205/1,2

ऐसे सर्वथा आत्म–विस्मृत महापुरूष को भेंट उपहारों से प्रयोजन ही क्या हो सकता है? उन्हें कोई लौकिक पदार्थ अपनी ओर आकर्षित ही नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप परीक्षार्थ लाये गये तीनों गुणों वाले पदार्थ उपेक्षित पड़े रह गये।

अस कहि भेंट सँजोवन लागे । कंद मूल फल खग मृग माँगे ॥
मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥

2/193/2,3

जैसे ही गुरूदेव वशिष्ठ के मुख से उन्होंने सुना कि "राम सखा" उनसे मिलने आ रहा है, वे रथ से कूदकर उसको हृदय से लगा लेने के लिये आतुर होकर दौड़ पड़े। बेचारा लोक मान्यता से अस्पृश्य जाति का निषाद गुह दूर से ही जोहार करता हुआ पृथ्वी पर माथा टेककर पुकार उठा – "मैं श्रृंगबेरपुर निवासी निषाद गुह आपको प्रणाम कर रहा हूँ।"

गाँउ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारू माथ महिलाई ॥

2/193/8

महाभागवत भरत की मान्यता थी कि भला राम प्रेमी की भी कोई जाति है? कवितावली उत्तरकांड कवित्त संख्या 107 में वर्णित सिद्धान्त "साहिब को गोत गोत होत है गुलाम को" के अनुसार श्रीराम प्रेमी तो रामवत् ही परम पूज्य है। अतः श्रीभरत ने उस महाभाग गुह को भूमि से उठाकर इतने प्रेम से गाढ़ालिंगन किया, मानों उनका दुलारा लालन योग्य लोना लक्ष्मण सम्मुख पड़ा हो, जिसे हृदय से लगाकर वे अपनी वेदना शांत कर रहे थे।

करत दंडवत देखि तेहिं, भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भई, प्रेमु न हृदयँ समाइ ॥

2/193

श्रीभरत की दृष्टि में रामसखा निषादराज गुह सखा तुल्य परम प्रिय है **"चले सखा कर सों कर जोरे** 2/198/5 किन्तु निषादराज गुह श्रीभरत का सेवक बनकर अपने को कृतार्थ मानते हैं। **"सेवक बचन सत्य सब जाने"** 2/235/1

जब भरत ने निषादराज गुह से कुशल–मंगल का प्रश्न किया तो वह गदगद वाणी से बोल

उठा–"श्रीराम के पद पंकज जीव की कुशलता के हेतु हैं तथा मंगलमूल रूप हैं। उनके दर्शन से मेरे भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल मंगलमय बन गये। यह तो केवल एक ही पीढ़ी का उद्धार हुआ। परन्तु अब श्रीमान् भरत आपकी कृपा प्राप्त हो जाने पर मेरे करोड़ों पूर्वजों का कल्याण हो गया। मेरे समस्त पूर्वज परम मंगलमय बन गये हैं।

कुसल मूल पद पंकज देखी । मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी ।।
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।।

2/195/7,8

गुह निषाद की इस उक्ति के विषय में अगर तार्किक रूप से विचार करें तो **"राम तें अधिक राम कर दासा"** 7/120/16 में वर्णित सिद्धान्त की स्पष्ट रूप से पुष्टि होती है।

इस प्रसंग में जब निषादराज गुह ने श्री भरत दर्शन को श्रीराम–दर्शन की तुलना मेंअधिक कल्याण प्रद बतलाया तो मानों उन्होंने प्रेम को ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठतर निरूपित किया। श्रीराम हैं–**"ग्यान अखंड एक सीताबर"** 7/78/4 जबकि श्रीभरत हैं – **"भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही।"** 2/184/4 ज्ञान की तुलना में प्रेम की प्रबलता अन्यत्र भी दृष्टिगोचर हुई है। जब चक्रवर्ति नरेश दशरथ जी राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने का प्रयास करते हैं, उस समय अयोध्या में समस्त समाज उपस्थित था। केवल श्रीभरत लघु–भ्राता शत्रुघ्न सहित उपस्थित नहीं थे। निदान प्रेम तत्व की अनुपस्थिति में महाराज का प्रयास सफल नहीं हुआ। रामराज्य बनने में बाधा उपस्थित हुई। पहले प्रेम–मूर्ति भरत ने चौदह वर्ष तक निरन्तर तपस्यारत रहकर ऐसे अनुपम आदर्श का प्रतिपालन किया, जिसकी सुदृढ़ नींव पर बाद में अखंड रामराज्य की स्थापना हुई। दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि जब तक चौदह वर्ष प्रेमराज्य की नींव नहीं डाली जाती, तब तक श्रीरामराज्य का आगमन नहीं हो सकता है। हमारा देश भारत अब तक स्वतंत्रता के साठ वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी रामराज्य का स्वप्न ही देख रहा है। काश, देश में पुनः श्रीभरत जैसे तपोमूर्ति का अवतरण हो जाता, तो देश श्रीरामराज्य से वंचित न रहता।

युगतुलसी पद्मभूषण पं. रामकिंकर उपाध्याय का कथन है– "महाभारत को रामायण बनाने के लिए केवल एक पात्र की आवश्यकता थी और वह थी श्रीभरत की। उधर रामायण भी महाभारत बन गया होता, यदि कैकेयी के पुत्र भरत के स्थान पर दुर्योधन हुआ होता।" इस उक्ति में प्रेममूर्ति श्रीभरत की महामहिमा ज्वलंत रूप से प्रकाशित है ।

एक दूसरा उदाहरण देखिये। ज्ञानस्वरूप श्रीराम के साथ अयोध्या–वासी अपनी मंजिल चित्रकूट नहीं पहुँच सके। बेचारे असहाय होकर दीन–दुखी अयोध्या लौट आये। वे निराश अयोध्यावासी प्रेममूर्ति भरत का अवलम्बन पाकर उनके साथ चलकर चित्रकूट पहुँच गये।

अवसि चलिअ बन रामु जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह ।

सोक सिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलंबनु दीन्ह ।। 2/184

अतः ज्ञान–राम के होते हुए भी मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाता है। मनुष्य के मन में तभी परिवर्तन होता है, जब उसके हृदय में प्रेम का पदार्पण होता है। प्रेम ही मनुष्य की सारी बुराइयों को दूर करता है। आत्मा को प्रकाशित कर देता है।

भगवान श्रीराम ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा था– देह से अधिक महत्व प्राण का होता है। मैं देह हूँ भरत मेरा प्राण है। अतः मुझ देह को राजा मत बनाइये। मेरे प्राण भरत को राजा बनाइये।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ।। 2/42/1

वस्तुतः श्रीराम और श्रीभरत एक दूसरे के हृदय और प्राण हैं। दोनों का अन्योन्याश्रित अभिन्न सम्बन्ध हैं। प्राण के बिना शरीर और शरीर के बिना प्राण की स्थिति असंभव है। प्रेमी अपने प्रेमास्पद प्राण के बिना देह धारण को समर्थ नहीं होता। वहीं प्रेमास्पद भी अपने प्रेमी के प्रेम से इतना अभिभूत हो जाता है कि वह स्वयं अपने प्रेमी के बिना जीवन धारण में असमर्थ होता है। इन दोनों परस्पर प्रेमी–प्रेमास्पद की तुलनात्मक विवेचना अगले अध्याय में दृष्टव्य है। इस अध्याय का समापन आचार्य महाप्रभु के "चतुर्धाम–यात्रा–वृत्त" के ख्याति प्राप्त लेखक–कवि श्री हरिगोबिंददास द्विवेदी के प्रेम–महिमा परक कबित्त के साथ–

प्रेमियों में प्रेम का तरंग रंग चढ़ता जब,
प्रेम को बिहाय और दृष्टि नहीं आता है ।
प्रेम का स्पर्श और वास भी बस प्रेम ही की,
प्रेम छोड़ और नहिं सुनना सुहाता है ।।
प्रेम का ही भोजन और प्रेम का ही पान–गान
प्रेमियों का संग रस–रंग सरसाता है ।
लगता है नीरस उन्हें जग का सब रागरंग,
"गोबिन्द" उन्हें प्रेम बिना और नहिं भाता है ।।

अध्याय - सात

प्रेमी श्री भरत प्रेमास्पद श्रीराम से विशिष्ट

प्रेम की सचमुच अनोखी रीत है ।
जो हृदय हारे उसी की जीत है ।।

पूर्व अध्याय छह में प्रेमास्पद राम एवं प्रेमी भरत को परस्पर एक दूसरे के प्राण एवं हृदय से उपमित किया गया है। स्वाभाविक है कि दोनों की हार्दिक अभिलाषा होगी कि हमारे हृदय धन हमसे अधिक गौरवान्वित होवें। प्रेमी भरत शैशव काल से ही प्रभु–क्रीड़ा के उपकरण मात्र बने रहे हैं। प्रभु उनका जैसा चाहें, उपयोग करें। इसी भाव में वे परमानंदित होते रहे हैं। उर्दू भाषा का यह प्रसिद्ध शेर उनके मनोभाव का द्योतक है।

जीता रखे तू हमको या धड़ से सर उतारे ।
अब तो फकीर आशिक कहता है यूँ पुकारे ।।
राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है ।
याँ यूँ भी वाह वा है और वूँ भी वाह वा है ।।

बाल्यकाल में प्रभु उन्हें खेल में प्रति–पक्ष का नायक बनाकर खेला करते थे। वे उनकी आज्ञा, बिना ननु–नच के स्वीकार कर लिया करते थे, भले ही क्रीड़ा के कतिपय दर्शक यह धारणा बना लेते थे कि लक्ष्मण तो खेल में भी प्रभु श्रीराम के विरोध में कभी नहीं खड़ा होता, जबकि श्रीभरत प्रेमास्पद श्रीराम के विरोधी–दल के नायक बने हुए हैं। दर्शकों की इस गलत धारणा से भरत के कर्त्तव्य–पालन में रंचमात्र भी कमी नहीं आई। वे तो अपने प्रेमास्पद श्रीराम की रूचि का निर्वाह कर रहे थे। लोगों की आलोचना से वे विचलित नहीं हुए।

जानहुँ राम कुटिल करि मोहीं । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ।।

2/205/1

गीतावली रामायण बालकांड पद संख्या 45 श्रीराम एवं भरत की बाल क्रीड़ा दर्शनीय है। कल्पना कीजिये–कभी कबड्डी खेलने का विचार बन गया। लक्ष्मण तो स्वभावतः श्रीराम के पक्षधर ही थे। अतः वे श्रीराम के प्रति पक्षी दल में कैसे शामिल होते ? निदान खिलाड़ियों के गठन का स्वरूप इस प्रकार बना।

राम लखन इक ओर, भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये ।
सरजु तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ।।

क्रीड़ा–क्रम में भरत–दल के खिलाड़ी क्रमशः मारे जाकर बैठा दिये गये। अकेले श्रीभरत अपने दल में शेष बचे थे। स्पष्ट हार संभावित थी। अब श्रीराम ने अपने दल के अन्य खिलाड़ियों को रोककर कहा– "अब दलनायकों की भिड़न्त होगी।" अतः श्रीराम कबड्डी बोलते हुए श्रीभरत की पार में पहुँचे। श्रीभरत ने आगे बढ़कर श्रीराम के चरण पकड़ लिये। अब श्रीराम के लिए यह संभव ही नहीं था कि वे श्रीभरत के हाथ से अपने चरण छुड़ाकर वापस अपनी पार में लौट आवें। कुछ देर कबड्डी–कबड्डी बोलकर वे शांत हो गये। जब दलनायक ने ही खेल में हार को वरण कर लिया, तो आगे खेल जारी न रखकर अपने दल की हार तथा भरत की विजय घोषित कर दी गई। अब क्या था भरत की विजय से आनंद विभोर होकर श्रीराम हाथी, घोड़े, वस्त्र और मणियों को उपहार में बाँटने लगे। प्रभु राम से पारितोषिक पाकर सखा, सेवक और याचकगण जन्म भर दूसरे के द्वार पर नहीं गये। आकाश में विमानों से जयध्वनि के साथ दुंदुभियाँ बजाई जाने लगीं। आकाश से एवं नगर में जहाँ तहाँ न्योछावर की वर्षा हो रही है तथा देवता और सिद्ध गण मुक्तकंठ से आर्शीवाद दे रहे हैं। भरत को खेल में हार जाने पर तो हर्ष होता है, जबकि जीतने पर संकोचवश उनके सिर और नयन नीचे हो जाते हैं। महाकवि गोस्वामिपाद ने कहा कि प्रभु के ऐसे शील स्वभाव को स्मरण कर जो इसी रंग में रँगे हुए हैं, वे लोग बड़े पुण्यशाली हैं।

एक कहत भइ हार राम जू की, एक कहत भइया भरत जये ।
प्रभु बकसत गज बाजि बसन मणि, जय धुनि गगन निसान हये ।।
पाइ सखा सेवक जाचक, भरि जनम न दुसरे द्वार गये ।
नभ पुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुर सिद्धन वरदान दये ।।
भूरि भाग अनुराग उमगि, जे गावत सुनत चरित नितये ।
हारे हरष होत हिय भरतहिं, जिते सकुच सिर नयन नये ।।
"तुलसी" सुमिरि सुभाय सील, सुकृती तेइ जे एहि रंग रये ।।

गीतावली बालकांड पद संख्या 45

इस तरह प्रत्येक खेल में श्रीराम अपनी हार तथा श्रीभरत की जीत का विधान बना देते थे। कविरत्न भैरव द्विवेदी रामायणी ने अपनी "मानस–तरंग" में अवधराज–सिंहासन को गेंद बनाकर

दोनों भाइयों द्वारा खेल खेले जाने की मनोरम कल्पना की है। इस खेल में भी अवधराज–सिंहासन रूपी गेंद अंततः श्रीराम की गोल में ही प्रविष्ट हुई। अंत में श्रीराम को अवधराज–सिंहासन स्वीकार करना पड़ा। अस्तु इस खेल में भी श्रीराम ने ही अंतिम हार स्वीकार की है।

राम भरत में आज ठन गई, "भैरव" एक लड़ाई ।
चौदह वर्ष लड़ेंगे दोनों, चलो देखने भाई ।।
एक ओर हैं राम, दूसरी ओर भरत व्रतधारी ।
अवधराज को गेंद बना, दोनों ने ठोकर मारी ।।
लड़कर चौदह वर्ष राम ने, मानी अपनी हारी ।
जीत गये इस महासमर में, भैया भरत खिलारी ।।

प्रभु श्रीराम द्वारा प्रत्येक खेल में विजयी बनाने को भरत ने अपने प्रति अपार छोह (वात्सल्य) एवं अनुपम स्नेह के रूप में स्वीकार किया। भरत सर्वदा सिर नीचा करके ही इसे ग्रहण किया करते थे।

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोहीं ।।

2/260/8

एवं

निज पन तजि राखेउ पनु मोरा । छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ।।

2/266/8

श्रीराम की तुलना में श्रीभरत को सर्वत्र विशिष्टता प्रदान की गई है। राम को तो केवल "अतिथि" शब्द से ही मान्यता दी गई है।

मुनिवर अतिथि प्रान प्रिय पाये । कंद मूल फल मधुर मँगाये ।।

2/125/3

जबकि परमप्रेमी श्रीभरत को "अतुलित अतिथि" की संज्ञा दी गई है–

कहहिं परस्पर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि राम लघु भाई ।।

2/214/2

श्री राम को केवल "साधु" शब्द की संज्ञा दी गई। महाराज दशरथ ने "सुठि" विशेषण

जोड़कर परिचय दिया ।

सब कोउ कहइ राम सुठि साधू । 2/32/6

परन्तु वे प्रत्येक दृष्टि से परिपूर्णतम साधु नहीं हो सकते हैं। यह उपाधि तो प्रयागराज में भगवती त्रिवेणी ने प्रेमी श्रीभरत को सम्बोधित करते हुए प्रदान की। प्रश्न उठता है कि श्रीभरत ही सब प्रकार से साधु क्यों हैं ? श्रीराम क्यों नहीं ? तो त्रिवेणी अम्बा ही आगे कारण निरूपित करती हैं, कि श्रीराम चरणानुरागी भक्त ही सर्वप्रकारेण साधु हो सकता है। श्रीराम स्वयं अपने चरणों में अनुराग तो कर नहीं सकते। अतः इस एक गुण में वे श्रीरामचरण पंकज के लुब्ध मधुप श्रीभरत से पिछड़ ही जावेंगे। अतः

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम चरन अनुराग अगाधू ।।

2/205/7

साधु के साथ स्वाभाविक रूप से निरपराधिता का सद्गुण संयुक्त रहता है। अतः राम के निरपराधी होने का प्रमाणपत्र कोप–भवन में स्थित माता कैकेयी क्रोधयुक्त दशा में होने पर भी प्रदान करती हैं।

तुम्ह अपराध जोग नहिं ताता । जननी जनक बंधु सुखदाता ।।

2/43/3

इधर महर्षि भरद्वाज ऐसा ही प्रमाणपत्र भरत को प्रदान करते हुए उन पर दोषारोपण करने वाले को नीच, अज्ञानी, दुष्ट एवं पतित पुकारते हैं।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू । कहै सो अधम अयान असाधू ।।

2/207/7

दयार्द्र होना भी साधु का सहज स्वभाव होता है। **"पर दुख द्रवहिं संत सु पुनीता।"** 7/125/8 साधु की सहज विशेषता है। वे किसी का अनिष्ट नहीं कर सकते। **"साधु तें होइ न कारज हानी।"** 5/6/4 यह श्री हनुमान् का निश्चित मत था। इस सिद्धांत के आधार पर अनुसंधान करने पर हम पाते हैं कि समस्त अनर्थों की मूल प्रेरक मंथरा को भी शत्रुघ्न द्वारा प्रताड़ित किया जाता देखकर श्रीभरत दयार्द्र हो उठे। उन्होंने उसे ताड़ना से बचा लिया। तब उन्हें केवल दयालु नहीं वरन् "दयानिधि" शब्द से सम्बोधित किया गया।

भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई । 2/163/8

इस विषय में श्रीराम करूणा सिंधु होते हुए भी न्यायाधीश पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण अपराधी जीव को दंड देने हेतु विवश हो जाते हैं। अतः शुभाशुभ कर्मफल प्रदाता बनना उनकी अनिवार्य बाध्यता है। वे कहते हैं कि

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । सुभ अरू असुभ कर्मफल दाता ।

7/41/5

फलस्वरूप "को कृपालु रघुबीर सम" 3/2 होते हुए भी काकरूप धारी अपराधी जयंत को "एक नयन करि तजा भवानी" 3/2/14 का अत्यल्प दंड देना उनकी न्याय परायणता की रक्षा के लिये परमावश्यक बन गया।

जयंत–दंड के संदर्भ में एक रहस्य विचारणीय है कि एक नेत्र–हानि का दंड ही क्यों निर्धारित किया गया ? अन्य कोई दंड क्यों नहीं ? यहाँ एक तथ्यपूर्ण बात यह है कि देवगुरू बृहस्पति ने देवराज इन्द्र से कहा था–

सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ।।

2/218/4,5

अतः देखें कि जयंत ने अपराध किसका किया था ? इसकी खोज करनी होगी। माता कौशल्या ने अपनी पुत्रवधू सीता के विषय में कहा था–

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ।।

2/59/2

अतः सीता पर चोट मानों कौशल्या माता की आँख पर चोट की गई थी। अतएव माता कौशल्या की आँख पर चोट करने के कारण नियमानुसार जैसे को तैसा दंड–एक आँख गँवाने का निर्धारित किया गया।

जयंत–प्रकरण पर गहराई पर विचार करें, तो वस्तुतः जयंत ने मोहांध होकर अपराध किया था। **"मोह न अंध कीन्ह केहि केही"** 7/70/7 अगर अंधे व्यक्ति को एक आँख का काना बना दिया जावे, तो उसे एक आँख का दान करना कहा जावेगा, न कि एक नेत्र से हीन करना। अतः जयंत पर कृपा की गई, न कि कोप। अतएव **"को कृपालु रघुबीर सम"** 3/2 कहना उचित ही है।

अब श्रीरामजी द्वारा निर्धारित एक और दंड पर विचार करें। नारी–कुल–कलंक, कुलक्षिणी, आततायिनी शूर्पणखा प्रकरण में उन्होंने मौन बनकर संकेत मात्र से अनुज लक्ष्मण को समझा दिया था कि इसे नकटी–बूची बनाकर छोड़ दो, क्योंकि निर्लज्जतापूर्वक दो–दो व्यक्तियों से एक–दूसरे के सामने वासनापूर्ण प्रेम–प्रस्ताव करके यह नकटी तो पहले ही बन गई है। श्रुति–विरूद्ध बात करने से श्रुति–हीन बूची भी बन चुकी है। अब बाह्यरूप से भी नकटी–बूची बनाकर इसके भ्राता लंकेश रावण के पास चुनौती रूप में भेजो। यह भविष्य में भी कुमार्गगामी नारियों के लिए उदाहरण बनकर चेतावनी के रूप में प्रस्तुत रहे।

सीतहिं सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ।।

3/17/20

श्रीराम द्वारा किये गये संकेत का वर्णन वखै–रामायण में स्पष्ट किया गया है ।

बेद नाम कहि, अँगुरिन खँडि अकास ।

पठयो सूपनखहिं, लखन के पास ।।

अरण्य कांड 28

अर्थात् राम ने चार अँगुलियॉ दिखाकर चार वेदों का संकेत किया। वेद का अर्थ श्रुति होता है। श्रुति का दूसरा पर्याय कान हो गया। अकास (आकाश) को संस्कृत में नाक कहते हैं। अकास की ओर अॅगुली करके खंडि के इशारे से नाक–कान काटे जाने की आज्ञा दी गई।

आजकल नारी–मुक्ति–आंदोलन नाम धारी तथाकथित प्रगतिशील कहे जाने वाले विघ्न–संतोषी लोग इस प्रकरण पर बवाल खड़ा करते हैं, कि नारी के नाक, कान कटवाना श्रीराम के मर्यादा–पुरूषोत्तम स्वरूप पर कलंक है। उन भले आदमियों से पूछा जावे कि क्या वे केवल नाग को मारते हैं, नागिन को छोड़ देते हैं ? शूर्पणखा को स्पष्ट शब्दों में दुष्ट हृदयवाली नागिन कहा गया है।

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारून जस अहिनी ।।

3/17/3

शास्त्राज्ञा के अनुसार वह स्वैरिणी वधार्ह थी। यह श्रीराम की उदारता ही थी, कि उसका वध न करके उसके नकटीवत् कलंकित आचरण के अनुरूप उसका बाह्य स्वरूप भी बनाकर प्राण–दंड से अपेक्षाकृत कम दंड छोड़ दिया था। आखिर श्रीराम "धर्म धुरंधर" भी तो हैं। उनकी

धर्मधुरीणता का बर्णन करते हुए गुरूदेव वशिष्ठ की वाणी है।

धर्मधुरीन भानुकुल भानू । राजा रामु स्वबस भगवानू ।। 2/254/2

पुनः

धर्मधुरीन धीर नय नागर । सत्य सनेह सील सुख सागर ।।

2/304/5

पिता महाराज दशरथ की दृष्टि में भी राम धर्म–धुरन्धर हैं।

धरम धुरन्धर धीर सयाने । 2/78/2

महर्षि अत्रि–प्रसंग में–

धर्म धुरन्धर प्रभु कै बानी । सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी ।।

3/6/4

आगे उत्तर कांड में भी

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा । धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा ।।

7/5/5

उधर श्रीराम की दृष्टि में इस सद्‌गुण धर्मधुरीणता के सच्चे धारक श्रीभरत हैं। चित्रकूट की सभा में श्रीराम ने श्रीभरत को धर्म धुरन्धर समझकर ही निर्णय का गुरूतर भार सौंपकर निश्ंचितता का अनुभव किया था।

भरतहिं धरम धुरन्धर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ।।

2/259/2

विदाई के समय श्रीराम के उदगार थे कि भरत तुम सचमुच धर्म धुरन्धर हो। नदी के दो किनारों की तरह लोकमत एवं वेदमत प्रथक–प्रथक दिखाई देते हैं, किन्तु तुम लोक–वेद–मत दोनों का समन्वय करके ऐसे प्रेम–पथ के निर्माता हो, जिसमें प्रेम के नाम पर लोक–मर्यादा से उच्छृंखलता और श्रुति–विरोध का लवलेश नहीं है।

तात भरत तुम धरम धुरीना । लोक बेद विद प्रेम प्रबीना ।।

2/304/8

विनय–पत्रिका में श्रीभरत की स्तुति में कहा गया है

पादुका-नृप-सचिव, पुहमि-पालक परम,

धरम-धुर-धीर वर वीर भारी । पद संख्या 39/3

देवगण एक स्वर से उद्‌घोष करते हैं–

जौ न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ।।

2/233/1

शास्त्र–प्रणेता स्मृतिकार गुरूदेव ब्रह्मर्षि वशिष्ठ की दृष्टि में धर्मधुरीणता सद्‌गुण में भरत शिखर पर हैं। जब भरत उनसे नंदिग्राम में अपनी रहनि के विषय में आज्ञा मॉगने गये कि–

आयसु होइ त रहौं सनेमा । बोले मुनितन पुलकि सप्रेमा ।।

2/323/7

तो गुरूदेव प्रेम विभोर होकर पुलकित हो गये। वे बोल उठे कि मैं धर्म–नियामक तुम्हें स्पष्ट आज्ञा देता हूॅ कि अब धर्म का अनुशासन तुम्हारे ऊपर नहीं, वरन् धर्म तुम्हारा अनुसरण करने वाला बन गया है। तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वह सब धर्म का सारतत्व होगा। वस्तुतः तुम जो समझते हो, वही कहते हो और वही करते हो। तुम्हारे आचरण में मन, बचन और कर्म की एकरूपता प्रकट है। सचमुच तुम धर्म को जीते हो। धर्म धुरन्धर जो हो। तुम्हारी कोई रहनि धर्म–विरूद्ध हो ही नहीं सकती। प्रत्युत् तुम्हारा आचरण स्वयं धर्म का मार्ग प्रशस्त करेगा। मन, वचन, कर्म की एकरूपता से तुम पूर्ण महात्मा हो।

समुझब कहब करब तुम जोई । धरम सारू जग होइहि सोई ।।

2/323/8

मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् ।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान कृष्ण के वचन हैं कि जो पुरूष शास्त्र विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ही। अतः हे अर्जुन तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से नियत कर्म करने के योग्य है, क्योंकि शास्त्र ही धर्म का मार्ग दिखाकर कर्त्तव्य की शिक्षा देता है।

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते काम कारतः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।। 16/23

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ ।

ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।। 16/24

"प्रेमी इस व्यवस्था का अपवाद प्रतीत होता है। प्रेमीभक्त विधि–निषेधमय बन्धनों को लाँघकर बस केवल एक अनिर्वचनीय प्रभु प्रेम में महामतवाला रहता है। वह भगवत्प्रेम की एक जीती–जागती मूर्ति होता है। स्वयं भगवान् ही उसके शरीर में दिव्य प्रेम के रूप में प्रकट होकर लीला करते हैं।" अतः प्रेमी के लिए नारद–भक्ति–सूत्र में ये व्यवस्था दी गई है।

यः कर्म फलं त्यजति, कर्माणि सन्यस्यति, ततो निर्द्वन्द्वो भवति ।

यो वेदानपि सन्यस्यति केवलं विच्छिन्नानुरागं लभते ।। 48, 49

"इस स्थिति में वेद अपने अनुवायी को वेदों का परम फल (प्रभु–प्रेम) प्राप्त करते देखकर उसकी चरम तृप्ति पर स्वयं तृप्त होकर उसे छोड़ देते हैं । वह वेद–त्याग तिरस्कार मूलक नहीं है, वह तृप्तिमूलक है। वह जानबूझकर वेदों को नहीं छोड़ता, वेद ही उसे पूर्णकाम समझकर अपना आधिपत्य उस पर से उठा लेते हैं।" श्री हनुमान प्रसाद पौद्दार कृत उक्त भक्ति सूत्र टीका से उद्धृत।

उक्त विवेचन को दूसरे शब्दों में इस प्रकार ग्रहण करें। घर और कारागार दोनों एक ही प्रकार की भवन सामग्री से निर्मित किये जाते हैं। पर, घर में स्वतंत्रता– परतंत्रता का समन्वय है, जबकि कारागार में केवल परतंत्रता ही होती है। घर को हम स्वयं अंदर से बंद करते हैं, जबकि कारागार में हमें वहाँ बंद कर दिया जाता है। इसी प्रकार धर्म को शब्द के कारागार में बंद कर देने पर अनर्थ है। भरतजी ने धर्म को शब्द के कारागार से मुक्त करके स्वतंत्र घर में स्थापित किया। भरतजी ने धर्म को शब्द के कारागार से मुक्त करके यह दिखलाया कि धर्म कुछ शब्दों के बंधन में सीमित नहीं है। वे धर्म को शील की चासनी में बोरकर प्रस्तुत करते हैं। अतः धर्म का, भरत द्वारा प्रस्तुत स्वरूप, अत्यंत रसमय होता है। उनकी रहनि से लोगों ने धर्म के यथार्थ स्वरूप का अनुभव किया।

"धारणात् धर्म इत्याहुः" अर्थात् जो समाज को धारण करता है, वही धर्म है। इसे यथार्थ स्वरूप में श्रीभरत ने अपने आचरण द्वारा सिद्ध किया। धर्म तो केवल समाज को धारण करने वाला था। परन्तु श्रीभरत स्वयं धर्म को ही धारण करने वाले रूप में प्रस्तुत हुए। अतः उन्हें

सम्पूर्ण धर्म का धुरा धारण करने वाला कहा गया।

जौ न होत जग जनम भरत को । सकल धरमधुर धरनि धरत को ॥

2/233/1

वस्तुतः भरत की रहनि में धर्म इतना ओतप्रोत है कि उनका जीवन ही धर्म है। वे धर्म को ही जीते हैं। जैसे कवि, लेखक, विद्वान, वक्ता आदि को बुद्धि–जीवी कहा जाता है, वैसे ही भरत को धर्म–जीवी कहा जा सकता है। वे तो सदा आत्मा–परमात्मा में ही स्थित रहते हैं। अतः उनको यदि आत्मजीवी या परमात्म–जीवी कहा जावे, तो भी अतिशयोक्ति न होगी।

धर्म–धुरन्धर व्यक्ति को अपनी न्याय–नीति की रक्षा के लिये कभी–कभी कठोर बनना पड़ता है। उसे निःसंकोच होना पड़ता है, परन्तु श्रीराम एवं श्रीभरत–दोनों इसके अपवाद हैं। वे अत्यंत शील–संकोची हैं। श्रीराम के लिए चित्रकूट में शील–सिंधु शब्द का विशेषण दर्शनीय है।

सील संकोच सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥

2/274/6

एवं – **सील सिंधु सुनि गुरू आगमनू ।** 2/243/1

तथा– **सील सराहि सभा सब सोची । कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥**

2/313/4

इसी शील–संकोच गुण के मूर्त्त–रूप श्रीभरत श्रीराम के सम्मुख आँख उठाकर नहीं देख सकते हैं। सदा सिर नीचा किये हुए "जो आज्ञा नाथ" के अतिरिक्त कोई उत्तर देने का साहस नहीं करते हैं।

महूँ सनेह सँकोच बस, सनमुख कही न बैन ।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ॥ 2/260

जब सनकादि मुनीश्वर प्रभु–दर्शन करके ब्रह्म–लोक चले गये, तो श्री हनुमान ने श्रीराम से भरत का मंतव्य प्रकट किया कि नाथ ! भरत कुछ पूछना तो चाहते हैं, किन्तु सँकोचवश आपसे सीधे वार्ता करने में वे हिचकिचा रहे हैं ।

नाथ भरत कछु पूछन चहहीं । प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥

7/36/6

तब श्रीराम ने स्पष्ट रूप से कहा कि हनुमान! तुम्हें तो विदित है कि मुझमें और भरत में किसी दशा में कुछ भी अंतर नहीं है।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहिं मोहिं कछु अंतर काऊ ।।

7/36/7

विचारणीय है कि श्रीराम ने श्रीलक्ष्मण जैसे परम आज्ञा–पालक सुसेवक बंधु से भी दुराव किया, भले ही उनकी लीला–निर्वहन हेतु वैसा करना आवश्यक रहा हो।

लछिमनहूँ यह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ।।

3/24/5

परन्तु श्रीराम ने संकोच के मूर्तिमान स्वरूप श्री भरत से कोई दुराव कभी नहीं किया, प्रत्युत यही कहा कि भरत से मेरा आत्मैक्य है। लेश मात्र अंतर नहीं है।

माता कौशल्या भी श्रीभरत के इन गुणों की भूरि–भूरि प्रशंसा करती हैं, तथा इन गुणों में समुद्र के समान अनन्तता एवं अगाधता निरूपित करती हैं।

भरत सील गुन बिनय बड़ाई । भायप भगति भरोस भलाई ।।
कहत सारदहु कर मति हीचे । सागर सीप कि जाहिं उलीचे ।।

2/283/3,4

माता कौशल्या की दृष्टि में भरत रघुकुल का दीपक है। एतद् विषयक उनकी वार्ता अपने प्राणनाथ दशरथ जी से अनेक बार हुई थी। इस तथ्य की चर्चा उन्होंने निमिकुल महारानी सुनयना जी से गद्गद् होकर की है।

जानउँ सदा भरत कुल दीपा । बार–बार मोहिं कहेउ महीपा ।।

2/283/5

कुल–दीपक के इस विशिष्ट विशेषण से मंत्रिवर सुमंत ने श्रीराम को भी विभूषित किया है।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई । रघुकुल दीपहिं चलेउ लिवाई ।।

2/39/7

यह दोनों रघुकुल–दीप सूर्यवंश के शिरोमणि हंस भी हैं। श्रीराम के विषय में गुरूदेव वशिष्ठ के शब्द हैं–

सुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुबरहिं प्रसंस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हंस बंस अवतंस ।। 2/9

उधर श्रीभरत के विषय में स्वयं श्रीराम के वचन हैं । लक्ष्मण! ध्यान से सुनो, मेरा दुलारा भरत सूर्य–वंश में हंस की तरह सुशोभित है ।

भरत हंस रबिबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ।।

2/232/6

श्रीराम एवं श्रीभरत दोनों को सूर्य–कुल–भूषण क्यों न सम्बोधित किया जावे, क्योंकि अयोध्यावासियों की दृष्टि में दोनों ही प्राणधिक प्रिय हैं। श्रीराम तो बाल्यकाल से ही पिताजी की आज्ञानुसार प्रजा–रंजन में तत्पर हो गये थे। अतः आबालवृद्ध नर–नारी समस्त अयोध्यावासी उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय मानते थे।

कोसलपुर वासी नर, नारि बृद्ध अरू बाल ।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत, सब कहुँ राम कृपाल ।। 1/204

उधर जब अयोध्या की प्रथम सभा में श्रीभरत ने राजसिंहासनासीन होने को महापाप निरूपित करते हुए प्रार्थना की कि, मुझसे "राजा" बनने के दो अक्षर न बोले जावें, प्रत्युत् केवल एक अक्षर "जा" कहा जावे, अर्थात् श्रीराम की शरण में जाने की आज्ञा प्रदान की जावे। पिता की आज्ञा–पालन के नाम पर मातृ–वध या अपना यौवन पिता को प्रदान करना अपवाद हो सकता है, धर्म का मान्य स्वरूप कदापि नहीं । केवल शब्दों को स्थूल रूप में पकड़ लेना धर्म की अन्तरात्मा की उपेक्षा करना है। धर्म से समाज को धारण किया जाता है, न कि अयोध्या जैसी महाविनाश की दशा बना दिये जाने को धर्म कहा जावेगा। अतः आप लोक मुझे राजा बनने की आज्ञा न देकर श्रीराम के पास जाने की आज्ञा दीजिये। सचमुच नम्रता के साथ ऐसी दृढ़ता भरत में ही देखी गई है।

जाउँ राम पहँ आयसु देहू । एकहिं आँक मोर हित एहू ।। 2/178/7

भरत ने अपने तर्क ठोस प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत किये। पहली बात तो यह है कि राज्य के स्वयंसिद्ध अधिकारी से छीनकर अनधिकार चेष्टा द्वारा प्राप्त किया जाने वाला राज्य है। दूसरी बात अपने परम पूज्य ज्येष्ठ भ्राता को सपत्नीक वनवास देकर सिंहासन पर अभिषिक्त होने का कुत्सित प्रयास है। तीसरी बात राजा अपने परम धार्मिक सत्य–निष्ठ पिता की मृत्यु

का कारण बनकर सिंहासनासीन हो रहा है। चौथी बात जो राजा प्रजा को राम–वियोग में बिलखता देखकर अपने राज्य का श्रीगणेश कर रहा हो, जिसे राजा बनाने की चर्चा मात्र से ऐसा चतुर्दिक महाविनाश का साम्राज्य उपस्थित हो गया हो, वह व्यक्ति जब राज्य–सिंहासनासीन हो जावेगा, तो कितने अनर्थकारी परिणाम प्रकट होंगे, इसकी कल्पना ही भयावह है।

मोहिं राजु हठि देइहहु जबहीं । रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥

2/179/2

पृथ्वी ऐसे महापापी को धारण करना उचित न समझकर स्थान–च्युत होकर रसातल को चला जाना श्रेयष्कर मानेगी। अतः मेरे लिये केवल एक निष्कंटक आश्रयस्थल श्रीराम के पावन पादारविन्द हैं। आप उन श्रीचरणों में जाने की आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिये।

एकहिं आँक इहइ मन माहीं । प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥

2/183/2

अब तो रामवियोग की तीव्र विषमय ज्वाला से दग्ध मूर्च्छाग्रस्तप्राय प्रजाजनों को इस बीज–मंत्र ने जागृत कर सचेत कर दिया। तब तत्काल समस्त प्रजासमाज के लिये श्रीभरत प्राणों के प्रियतम बन गये। श्रीभरत के भाषण ने प्रजा को देह–लोक से ऊपर उठाकर विदेह लोक की स्थिति में पहुँचा दिया।

चलत प्रात लखि निरनउ नीके । भरत प्रानप्रिय भे सबही के ॥

2/185/2

श्रीभरत ने एक और विशिष्ट कार्य किया कि वे अवध राज्य सिंहासन को साथ में लेकर चित्रकूट चले। उनकी दृष्टि में श्रीराम को राज्य की आवश्यकता नहीं है, प्रत्युत राज्य को ही श्रीराम की आवश्यकता है। अतः राज्य–सिंहासन स्वयं श्रीराम के पास चलकर प्रार्थना करे कि मुझे स्वीकार करके, कृतार्थ करिये।

कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू । बनहिं देब मुनि रामहिं राजू ॥

2/187/3

निदान, सारी प्रजा राजपद–त्यागी भरत के साथ गृह–त्यागी बनकर चित्रकूट की ओर चल पड़ी। पहले भी यही प्रजा राम के साथ वनवासी बनने को चल पड़ी थी। परन्तु उस समय राम रथ पर चढ़कर चल रहे थे। उनकी प्रजा पीछे–पीछे पैदल भाग रही थी।

चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई । चले हृदयँ अवधहिं सिर नाई ।।

चलत रामु लखि अबध अनाथा । बिकल लोग सब लागे साथा ।।

2/93/2,3

किन्तु अब की बार दृश्य उलट गया था। सारी प्रजा वाहनों पर चढ़कर चल रही थी, जबकि श्रीभरत उनके पीछे पैदल चल रहे थे।

नगर लोग सब सजि सजि जाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ।।

2/187/7

प्रजा के आगे निकल जाने पर सौम्य भरत कैसे चले ? दर्शनीय है—

बन सिय रामु समुझि मन माहीं । सानुज भरत पयादेहिं जाहीं ।।

2/188/2

एक और अंतर पर दृष्टिपात करें। उस बार शोक, मोह, श्रम तथा देवमायावश एवं यह भी कहें कि श्रीराम इच्छा से सब लोग सो गये थे। तब, श्रीराम उन्हें सोता छोड़कर रातोंरात तमसा—तीर से आगे निकल गये थे।

दोहा– राम लखन सिय जान चढ़ि, संभु चरन सिर नाइ ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ।। 2/85
जागे सकल लोग भएँ भोरू । गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ।। 2/86/1

इस बार श्रीभरत द्वारा सुनाये गये बीज—मंत्र का ऐसा दिव्य प्रभाव था कि सारी रात कोई सोया नहीं। प्रातःकाल की प्रतीक्षा में सभी लोग रात भर जागते रह गये।

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी । चहत प्रात उर आरत भारी ।।
जागत सब निसि भयउ बिहाना । 2/187/1-2

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् श्रीराम प्रजा को सुला देते हैं, जबकि भक्त श्रीभरत सबको जगा देते है प्रेमी भक्त और भगवान का यह अंतर दृष्टव्य है। मानों श्रीराम ने ही यह शिक्षा दी है कि भक्त के पीछे चलना ही मेरे पास पहुँचने का सुगम उपाय है। मेरे पीछे चलने वाला भले ही बीच मार्ग में अवरूद्ध होकर मेरे पास तक न पहॅुच पावे, पर जो जन भक्त भरत के साथ चल पड़ेगा, वह अवश्य ही मेरे पास पहॅुच जावेगा।

भगवान श्रीराम यह भी कहते हैं कि मुझे मार्गदर्शक की आवश्यकता पड़ा करती है। उन्होंने प्रयाग में मुनि भरद्वाज से कहा–

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं । नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं ।। 2/109/1

श्रीराम से निषादराज गुह ने भी कहा था–

नाथ साथ रहि पंथ देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई ।। 2/104/4

वही निषादराज गुह जब प्रेम विभोर श्रीभरत को पंथ दिखाना चाहते हैं, तो स्वयं मार्ग भूल जाते हैं।

सखहिं सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ।। 2/238/6

प्रेमी के मार्ग में पुष्प बिछ जाते हैं, जबकि भगवान का पंथ कंटकाकीर्ण होता है। स्वयं भगवान श्रीराम को कॉटे लग जाते हैं। कवितावली में मार्ग के एक वृक्ष की छाया में बैठकर राम द्वारा कॉटे निकाले जाने का मार्मिक वर्णन है।

तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै,
बैठि बिलम्ब लौ कंटक काढ़े ।। अयोध्याकांड 12

मानस में भी वेदों की स्तुति में श्रीराम पादारविन्द में कंटकों का दर्शन है ।

ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत, बन फिरत कंटक किन लहे ।
पद कंज द्वन्द मुकुन्द राम, रमेस नित्य भजामहे ।। 7/13/छंद 4

श्रीमद् भागवत महापुराण में भी स्वधाम पधारते समय प्रभु राम अपने भक्तों को इन्हीं कंटक–विद्ध चरणों का स्मरण करने का सदुपदेश देते हैं ।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डक कंटकैः
स्वपाद पल्लवं राम आत्म ज्योतिरगात् ततः ।। 9/11/19

अर्थात् तदनन्तर अपना स्मरण करने वाले भक्तों के हृदय में अपने उन चरण कमलों को स्थापित करके, जो दंडकवन के काँटों से बिंधे हुए थे, श्रीराम अपने स्वयं प्रकाश परम ज्योतिर्मय धाम में चले गये।

अब भरत के लिए प्रकृति द्वारा बनाये गये मनोरम आनंदमय वन में भ्रमण करते देखिये। अहा! पृथ्वी स्वयं संकोचवश सुकोमल बन रही है। सभी कठोर वस्तुयें कुश, कंटक, कंकड़,

कुराई आदि अत्यंत कर्कश कुवस्तुयें छिपा लेती है। पृथ्वी तो सुकोमल बन ही गई है, साथ ही शीतल, मंद, सुगंधमय वायु भी बह रही है। देवगण पुष्पवर्षा करके मार्ग को सुगम बना रहे हैं। बादल सिर पर छाया करके ताप से बचा रहे हैं। मार्ग के वृक्ष फूल–फलों से स्वागत कर रहे हैं। सुकोमल तृण पद–तल में बिछ रहे हैं। हिरण अनुराम भरे नेत्रों से देख रहे हैं। पक्षी सुस्वर वाणी से स्वागत–गीत गा रहे हैं। इस प्रकार समस्त प्रकृति श्रीराम के प्राणप्रिय बन्धु श्रीभरत के स्वागत में पलक–पॉवड़े बिछा रही है। प्रकृति का यह औदार्य स्तुत्य है। भगवत्प्रेमी का इस प्रकार किया गया स्वागत प्रशंसनीय है।

कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । भई मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं ।।
कुस कंटक कॉंकरी कुराई । कटुक कठोर कुवस्तु दुराई ।।
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हें । बहत समीर त्रिविध सुख लीन्हें ।।
मृग बिलोहि खग बोलि सुबानी । सेवहिं सकल रामप्रिय जानी ।।

दोहा– सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात ।
राम प्रान प्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ बात ।। 2/311

इसके पूर्व, वन पथ में यह स्पष्ट वर्णन आ चुका है कि तुलनात्मक रूप से श्रीराम के लिये इतना मंगलमय, सुखद, मनोरम मार्ग नहीं था। उनके सिर पर छाया करने के लिये घन नाम से सम्बोधित बिना जलवाले बादल आये थे, जिन्हें **"घन घमंड नभ गरजत घोरा ।।"** 4/14/1 कहा गया है। वे केवल गरजते हैं। उनमें जल नहीं होता। अतः बरसते नहीं हैं।

छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, राम चले मग जाहिं ।। 2/113

श्रीभरत के लिए वे जलद छा गये हैं, जो जल–प्रपूर्ण बरसने वाले बादल हैं। बरसहिं जलद भूमि नियराये। 4/14/3

अतः महाकवि में तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत कर दिया ।

किएँ जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बर बात ।
तस मगु भयउ न रामु कहँ, जस भा भरतहिं जात ।। 2/216

भक्त एवं भगवान् के लिये वन–पथ के इस अंतर के दर्शक सिद्ध, साधु, मुनीश्वर सब एकमत से उद्घोष करते हैं कि राम के तद्गत–चित्त प्राणाधिक प्रिय अनुज भरत के लिये मार्ग

को मंगलदायक होना ही चाहिये ।

भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता । कस न होइ मगु मंगलदाता ।।

सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं । भरतहिं निरखि हरषु हिय लहहीं ।। 2/217/5,6

यह ध्यान देने की बात है कि भरत की प्रथम दिन की पद–यात्रा में न तो प्रकृति ने और न ही देवों ने इस प्रकार मार्ग को सुखद बनाने की सेवा सम्पन्न की थी। तभी तो श्रीभरत के सुकोमल चरण कमलों की दशा झलका (फफोले) युक्त देखी गई थी ।

झलका झलकत पायन्ह कैसे । पंकज कोस ओस कन जैसे ।। 2/204/1

वह तो देवगुरू बृहस्पति ने भक्त–शिरोमणि भरत के चरणानुराग को "सकल सुमंगल मूल" समझाया। तब वे स्वार्थ परायण देवगण सेवारत हुए, जिससे वे देवगुरू के शब्दों में धन्य–भाग्य बन गये।

सुनि सुरमत सुरगुरू कहेउ, भल तुम्हार बड़ भाग ।

सकल सुमंगल मूल जग, भरत चरन अनुराग ।। 2/265

उधर महर्षि भरद्वाज ने श्रीभरत से वार्ता करते समय ठीक इन्हीं "सकल सुमंगल मूल जग" शब्द–विन्यास का प्रयोग करते हुए श्रीरामचरणानुराग को श्रेयष्कर बतलाया है–

अब अति कीन्हेहु भरत भल, तुम्हहिं उचित मत एहु ।

सकल सुमंगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु ।। 2/207

देवगुरू वृहस्पति तथा मुनि श्रेष्ठ भरद्वाज दोनों की वाणी में भक्त एवं भगवान् अर्थात् श्रीभरत एवं श्रीराम के लिए ठीक एक जैसी शब्दावली का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि भक्त भगवान बन गया है, एवं भगवान् भक्त बन गये हैं, तभी तो दोनों एक दूसरे का भजन किया करते हैं। राम जहाँ प्रतिक्षण भरत का नाम जपते हैं सदा उनके सोच में विह्वल रहते हैं।

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ।। 2/218/8

एवं

रामहिं बन्धु सोच दिन राती । अंडहिं कमठ हृदउ जेहि भाँती ।। 2/7/8

वहीं श्री हनुमान श्री अवध धाम में पहुँचने पर कुशासन पर विराजमान जटाधारी, दुर्बल–गात, ध्यान–मग्न, प्रेमाश्रु बहाते हुए श्रीराम के नाम का जप करने में तल्लीन तथा श्रीराम

के विरह में सोचमग्न श्रीभरत का दर्शन करते हैं ।

बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात ।
राम राम रघुपति जपत, श्रवत नयन जलजात ।। 7/1(ख)

एवं

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती । रटहु निरंतर गुन गन पाँती ।। 7/2/3

भक्त का भगवान् बनना एवं भगवान् का भक्त बनना प्रेम–वल्लरी (आचार्य महाप्रभु–प्रणीत) में दर्शन करें ।

भक्तहिं ध्यावत भक्त भये भगवान ।
आपा खोज कतहुँ नहिं पाये, को हम कहाँ गये ।।
तैसहिं प्रेमी प्रभु को ध्यावत, अह मम दूर कये ।
बनि प्रेमास्पद प्रेम मगन ह्वै, पता न अपुन पये ।।
रसमय भये रसिक रसिकेश्वर, दुइ के एक भये ।
कैसो यह अद्वैत मनोहर, सुख को सार दये ।।
अहह अनिर्वच परमानंदा, अगम अनंत भये ।
"हर्षण" प्रेम देव की महिमा, समुझहिं जगत जये ।।

पद संख्या 55

अब भगवान एवं भक्त अर्थात् श्रीराम एवं भरत की परस्पर प्रेम–मग्न स्थिति के दर्शन करें। भरद्वाज मुनि के कथनानुसार श्रीराम त्रिवेणी स्नान के समय श्यामवर्णा यमुना के दर्शन से श्रीभरत की सुधि करके तथा संकल्प में "भरत खण्डे" शब्द बोलते ही अपने आप को सँभाल नहीं सके। प्रेम से विह्वल हो जाते हैं।

जाना मरमु नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा ।। 2/208/5

श्रीराम की अस अनुराग–दशा का सजीव–चित्रण "प्रेम वल्लरी" के पद संख्या 277 में दृष्टिगोचर कीजिये।

रघुवर राम प्रयाग नहात प्रिया अरू अनुज लिये ।
जब संकल्प पढेव प्रभु निकसेउ, भारत वर्ष सुखात ।

भरत सुरति करि भरत प्रेम में, नयनन नीर नहात ।।
चरण तोय अरू लोचन जल को, संगम सुभग सोहात ।
भयो चमत्कृत तन रोमांचित, बन्धु प्रीति पुलकात ।।
भूल्यो पठन निकसि नहिं बानी, स्वर भो भंग प्रभात ।
देखि दशा सुर नर मुनि प्रमुदित, आपुस में बतियात ।।
प्रेम देव महिमा बड़ भारी, हरि को हिय पिघलात ।
वर्षत सुमन "हर्ष" जग उचरत, चहहिं प्रेम सुखदात ।।

पद संख्या 277

उधर भरत भी श्यामवर्णा यमुना के दर्शन में श्रीरामस्वरूप का दर्शन करते हुए सुधि बुधि खो बैठे और विरह–सागर में मग्न हो गये। कालान्तर में वे विवेक–जहाज का आश्रय लेकर सचेत हुए, क्योंकि श्रीभरत में प्रेम एवं नेम अर्थात भक्ति एवं ज्ञान का अपूर्व समन्वय है।

रघुबर बरन बिलाकि बर, बारि समेत समाज ।
होत मगन बारिधि बिरह, चढ़े विवेक जहाज ।। 2/220

श्रीभरत के अप्रतिम प्रेम एवं विवेक के समन्वय का एक अन्य उदाहरण अवलोकनीय है। चित्रकूट दरबार में जब किंकर्तव्यविमूढ़ परिस्थिति बन गई। सभी सभासदों की बुद्धि–रूपी पृथ्वी को शोक रूपी हिरण्याक्ष दैत्य ने हरण कर लिया, अर्थात् सब लोग शोकाकुल होने के कारण बुद्धि–भ्रम में पड़ जाने से कुछ भी कहने में असमर्थ हो गये, तो उस गंभीर एवं जटिल परिस्थिति में श्रीभरत के अद्वितीय ज्ञान रूपी विशाल वाराह भगवान् ने विमल गुणों से युक्त पृथ्वी का उद्धार किया।

सोक कनक लोचन मति छोनी । हरी बिमल गुन गन जग जोनी ।
भरत बिवेक बराहँ बिसाला । अनायास उधरी तेहि काला ।। 2/297/3,4

इसी प्रसंग में दर्शनीय है कि जिन भरत के नेत्र सदैव प्रेमाश्रुओं से आप्लावित रहते थे, वही भरत इस कुसमय की घड़ी में सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर स्वयं ज्ञान से प्रदीप्त नेत्र वाले बन जाते हैं।

निरखि बिवेक बिलोचनहिं, सिथिल सनेह समाज ।
करि प्रनामु बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज ।। 2/297

उधर श्रीराम को तो मूर्तिमान ज्ञान का स्वरूप ही इस उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा प्रकट किया गया है।

सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर ।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ।। 2/321

ये मूर्तिमान ज्ञान स्वरूप राम वनवासी कोल–किरातों के वचन सुनकर प्रेम में द्रवीभूत हो गये। तब गोस्वामिपाद चित्रित करते हैं कि–

रामहिं केवल प्रेमु पिआरा । जानि लेउ जो जाननिहारा ।।

2/137/1

इस प्रकार ज्ञानमूर्ति श्रीराम प्रेमाश्रयी बन गये एवं प्रेममूर्ति भरत ज्ञानाश्रयी बन गये। अपनी स्वतंत्र इच्छा, रूचि, विचार धारा, संकल्प मनोभावना आदि सब कुछ एक दूसरे पर न्योछावर कर देने में तत्पर युगल–बन्धु अप्रतिम अद्वैत बने हैं। तत्सम्बन्धी अन्यान्य उदाहरण अगले अध्याय में अवलोकनीय है। इस अध्याय का समापन आचार्य महाप्रभु प्रणीत प्रेम वल्लरी के पद संख्या 96 द्वारा–

तू क्यों प्रेम की बात करै ।
निज सुख चाह भरी जब हिय में, पिय नहिं सूझ परै ।।
काम प्रपूरित हृदय देश तव, राग की वह्नि बरै ।
आत्म समर्पण कियो न सब विधि, अह मम लगे गरे ।।
प्रेम तथा प्रेमास्पद महिमा, जान न नेक अरे ।
भयो अनन्य न तैं प्रियतम को, कैसे प्रीति भरे ।।
बनि स्वतंत्र बिचरत मनमानी, नहिं भव-भीति डरे ।
"हर्षण" आपा खोय भजे प्रभु, चहै जो प्रेम झरे ।।

प्रेम–वल्लरी पद संख्या 96

अध्याय - आठ

प्रभु-प्रेमी में अन्तर्बाह्य सर्वत्र विशिष्टता दर्शन

संजम, जप, तप, नेम, धरम, व्रत बहु भेषज-समुदाई ।
तुलसिदास भव-रोग रामपद-प्रेम-हीन नहिं जाई ।।

विनय पत्रिका पद सं. 81/5

पिछले अध्याय सात में श्रीराम एवं श्रीभरत में अनेक समानताओं का दर्शन करते हुए उनमें प्रेममूर्ति श्रीभरत की विशिष्टता का दिग्दर्शन कराया गया है। इस अध्याय का वर्ण्य–विषय भी उसी क्रम को लक्षित करके अनुसंधान में अग्रसर करता है। दोनो बन्धुओं की विचारधारा तथा मनोभावों में ऐक्य का दर्शन करें। चित्रकूट की सभा में दोनों की एक जैसी शब्दावली दर्शनीय है। जब श्रीराम ने श्रीभरत पर निर्णायक मत देने का भार सौंपकर यह वचन दिया कि, तुम जो कुछ कहोगे, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं आज वही करने को सहर्ष तत्पर हूँ।

मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सोइ आज।
सत्य-संध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाज ।। 2/264

तो ठीक इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हुए भरत ने श्रीराम की प्रसन्नता को परम मान्य मानते हुए उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना केवल अपने लिये ही नहीं, प्रत्युत् समग्र समाज के लिये श्रेयष्कर बतलाया।

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहिं आयसु देब ।
सो सिर धरि धरि करहिं सबु, मिटिहि अनट अवरेब ।। 2/269

अन्ततः जब श्रीराम ने गुरूदेव श्री वशिष्ठ तथा श्री विदेहराज जनक की सौगन्ध खाकर कहा कि अगर श्रीभरत कह दें, तो उन पिताश्री की आज्ञा की अवहेलना करके अयोध्या वापस लौट सकता हूँ, जिन्होंने "धरमु न दूसर सत्य समाना" 2/95/5 मानकर वचन की रक्षा के लिये मुझे त्यागकर अपने प्राणों की आहुति दे दी है । सचमुच ऐसे आदर्श पिताश्री के लिये यदि मैं अपने शरीर का चर्म स्वयं अपने हाथ से निकालकर उससे जूतियॉ निर्मित करके उनके चरणों में पहना दूँ, तब भी उनके ऋण से उऋण होना असंभव है ।

निज कर खाल खैंचि या तनुतें, जौ पितु पग पानहीं करावौं ।
होउँ न उरिन पिता दसरथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ।।

गीतावली (अयोध्या कांड) पद संख्या 72

मानस में भी श्रीभरत के प्रति पिताश्री से भी विशेष महत्व देते हुए श्रीराम कहते हैं—

राखेउ रायँ सत्य मोहिं त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी ।।
तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सकोचू ।।

2/264/6,7

एक बार पुनः श्रीराम गुरूदेव वशिष्ठ तथा महाराज जनक की सौगन्ध खाकर निर्णय का भार सभा पर छोड़ देते हैं। उस समय सारा समाज पूर्ण रूप से किंकर्तव्य—विमूढ़ होकर मौन बन गया था। सबकी बुद्धि पर मानों पाला पड़ गया था। वाणी उनके मुख से पलायन कर गई थी। वे सब के सब गूँगे जैसे मौन रहकर भरत की ओर निहारने लगे कि अब तुम्हीं हमें इस धर्म—संकट की विषम परिस्थिति से उबार लो।

राउर राय रजायसु होई । राउरि सपथ सही सिर सोई ।।
दोहा— राम सपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत ।
सकल बिलोकत भरत मुखु, बनइ न उत्तर देत ।।

2/296

विषम दुरभि संधि में पड़े हुए श्रीभरत ने वाणी का विसर्ग करने के पहले अपने हृदय में झाँका। वहाँ श्रीराम विराजमान थे। **"भरत हृदय सिय राम निवासू"** 2/295/7 वे श्रीराम **"सारद दारूनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अंतर जामी।।"** 1/105/5 के रूप में दर्शन दे रहे थे। अतः भरत ने देवलोक वाली सरस्वती का आवाहन नहीं किया, क्योंकि वह राम—वनवास का कारण बन चुकी थी। फिर वह सरस्वती स्वयं अपने मुख से स्वीकार कर चुकी है कि देवेन्द्र तथा समस्त देवगण सुन लो— तुम लोग स्वार्थ—परायणता के कारण जड़ हो गये हो। अतः तुम हजार नेत्रों वाले अंधे हो। जिसे अनंत सुमेरू पर्वत भी दिखाई नहीं दे रहा है अरे मुझसे बड़ी मायाशक्ति त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश की है। वह माया भी श्रीभरत की बुद्धि की ओर आँख उठाकर देख नहीं सकती, फिर मेरी बिसात ही क्या है ? चाँदनी का अस्तित्व ही सूर्य के सम्मुख समाप्त हो जाता है। वह सूर्य का अपहरण करने का दुस्साहस करे, यह असंभव बात तुम्हारी

समझ में क्यों नहीं आ पा रही है ? सूर्य के प्रकाश के समक्ष अँधेरे का अस्तित्व संभव है क्या?

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी । बोली सुर स्वारथ जड़ जानी ।।
मो सन कहहु भरत मति फेरू । लोचन सहस न सूझ सुमेरू ।।
बिधि हरिहर माया बड़ भारी । सोउ न भरत मति सकइ निहारी ।।
सो मति मोहिं कहत करू भोरी । चंदिनि कर कि चंडकर चोरी ।।
भरत हृदयँ सियराम निबासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ।।

2/295/3-7

निदान श्रीभरत ने उस शारदा (वाणी) का आवाहन किया, जिसके प्रेरक हृदयस्थ श्रीराम हैं।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई । मानस तें मुख पंकज आई ।। 2/297/7

मानों श्रीभरत श्रीराम से निवेदन कर रहे थे कि प्रभो! आपको स्वयं बोलकर सबको निराश करके अयोध्या भेजने में संकोच लग रहा है। अपने मुख से ऐसा कटु निर्णय नहीं देना चाहते हैं, तो ठीक है आप मेरे मुख से बोलिये। जिह्वा तो मेरी रहेगी, परन्तु उससे निकलने वाला भाषण आप कर रहे होंगे। लोग यह समझेंगे कि भरत कटु निर्णय दे रहा है। अतः वे भले ही मुझ पर दोषारोपण करते रहें मुझे इसकी चिंता नहीं है। मेरी वाणी में सचमुच आपका ही निर्णय होगा।

इस समय श्रीभरत जी तात्विक रूप से श्रीराम की वंशी बनने जा रहे थे। जिसमें मूलतः स्वर और वाणी उसे बजाने वाले श्रीराम की ही थी। वर्तमान युग का उदाहरण दें, तो ध्वनि विस्तारक यंत्र कह सकते हैं। जिसमें आवाज चोंगे से निकलती सुनाई देती है, जबकि बोलने वाला व्यक्ति यंत्र के पीछे स्थित रहता है।

इस समय श्रीभरत की वाणी को–

बिमल बिबेक धरम नय साली । भरत भारती मंजु मराली ।।

2/297/8

कहकर दिव्य विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। पहले भी श्रीभरत की वाणी की प्रशंसा करते हुए महाकवि उसे अनिर्वचनीय उद्घोषित कर चुके हैं।

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरथु अमित अति आखर थोरे ।।
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निज पानी । गहि न जाइ अस अद्‌भुत बानी ।।

2/294/2,3

धनुष–यज्ञ प्रसंग में श्रीराम के मुख से निःसृत वाणी की प्रशंसा में भगवान परशुराम कहते हैं।

बिनय सील करूना गुन सागर । जयति बचन रचना अति नागर ।।

1/285/3

अयोध्या में माता कैकयी से वार्ता–प्रसंग में श्रीराम की वाणी को दोष–रहित, कोमल, मनोरम, वाणी का आभूषण कहा गया है।

बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ।।

2/41/6

इसी प्रकार चित्रकूट प्रसंग में भी राम के वचनों को वाणी का सर्वस्व, सुनने में चंद्रसार की भाँति सुखद तथा हितकारी परिणाम देने वाला कहा गया है।

बोले बचन बानि सरबस से । हितु परिनाम सुनत ससि रस से ।।

2/304/7

उभय बंधुओं के परस्परानुराग, रूचि, विचारधारा, मनोभाव, वाणी आदि आन्तरिक गुणों की तुलनात्मक विवेचना के बाद अब उनके बाहु–बल एवं शस्त्र–बल की ओर दृष्टिपात कर लें। श्रीराम ने मारीच को अपने बिना फर के वाण–प्रहार से मुनि विश्वामित्र के बक्सर स्थित सिद्धाश्रम से लंका–तटवर्ती समुद्र से संलग्न स्थान तक फेंका था।

बिनु फर बान राम तेहिं मारा । सत जोजन गा सागर पारा ।।

1/210/4

रावण इस मामा मारीच को माया–मृग बनने हेतु मनाने के लिये अपने पुष्पक–यान से लंका सागर पार करके भारत–तीर तक आया था।

चला अकेल जान चढ़ि तहँवा । बस मारीच सिंधु तट जहँवा ।।

3/23/7

इस विषय में श्रीभरत के बल का दिग्दर्शन कराने हेतु केवल एक ही झाँकी प्राप्त होती है। पर वह अपने आप में अनुपम है। नंदिग्राम (अयोध्या) में यह असि–धार–व्रती परम तपस्वी भरत

अर्द्ध रात्रि के निस्तब्ध वातावरण में, जब उनके संरक्षण में सारी प्रजा सुख–निद्रा में निमग्न थी, जागरूक होकर श्रीराम की सम्पत्ति अयोध्या की रक्षा में तत्पर थे। भले ही सारा विश्व सो रहा हो, परन्तु अपने आराध्य राघवेन्द्र की वात्सल्य–भाजना प्रजा की रक्षा में सन्नद्ध प्रतिक्षण सावधान रहने वाले श्रीभरत की आँखों में नींद कहाँ थी ? वे तो राघवेन्द्र के प्रिय अश्वों की सेवा में कितने तत्पर थे, यह माता कौशल्या के संदेश में निहित है ।

भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जानि तिहारे ।

गीतावली रामायण अयोध्या कांड पद संख्या 87 / 5

अस्तु जिस समय संजीवनी बूटी वाला पर्वत लेकर हनुमान आकाश–मार्ग से अयोध्या–मार्ग से अयोध्या–प्रदेश के ऊपर से निकले, तब विशाल आकार देखकर श्रीभरत ने अनुमान किया कि शायद कोई निशाचर निकल रहा है। अयोध्या पर अनिष्ट की आशंका से श्रीभरत ने बिना फर का वाण संधान करके वायु–वेग से भी तीव्रतर गति से जाते हुए अतुलित–बल–धाम महावीर हनुमान पर छोड़ दिया। इन्हीं हनुमान ने लंका की अशोक वाटिका में मेघनाद के ब्रह्म–वाण की चोट लगने पर उसकी मर्यादा की रक्षा के लिये गिरकर मूर्च्छित होने का अभिनय किया था। जबकि श्रीभरत के बिना फर के वाण से सचमुच मूर्च्छित होकर गिर गये। यदि माता सीता के द्वारा अजर अमर होने का वरदान न पाये होते, तो न जाने क्या हो जाता ? अबकी बार वे स्वतः मूर्च्छा– विगत नहीं हुए थे, प्रत्युत् श्रीभरत जी की प्रेम–निष्ठा के बल पर चैतन्य हुए थे।

जौ मोरें मन बच अरू काया । प्रीति राम पद कमल अमाया ॥
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला । जौ मो पर रघुपति अनुकूला ॥

6/59/6,7

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि श्रीभरत के बिना फर के वाण की चोट लगने पर हनुमान **"सुमिरत राम राम रघुनायक"** 6 / 59 / 1 श्रीराम का स्मरण करते हुए मूर्च्छित हुए थे। श्रीराम का नाम भी लिया तथा रामरूप रघुनायक का ध्यान भी किया। परन्तु राम–नाम तथा रूप के प्रभाव से उनकी मूर्च्छा दूर नहीं हुई थी, वरन् श्रीभरत के प्रेम–संकल्प से सचेत हुए थे। अस्तु भक्त श्रीभरत के राम–प्रेम को महिमा प्रदान करने के लिये भगवान् के नाम रूप दोनों ने स्वयं असफल होकर भक्त के संकल्प के लिये मार्ग प्रशस्त किया। श्रीभरत की प्रेम भक्ति ने दिव्य अमृतमयी औषधि बनकर मूर्च्छित हनुमान को चैतन्यता प्रदान कर दी । युद्ध–विषयक–संवाद,

वार्ता, माताओं के संदेश आदि के पश्चात् जब हनुमान लंका की ओर प्रस्थान करने लगे, तो श्रीभरत ने कहा कि कहीं तुम्हारे पहुँचने में विलम्ब के कारण कार्य बिगड़ न जावे, अतः मेरे बाण पर चढ़ जाओ। मैं तत्काल तुम्हें पर्वत समेत प्रभु के पास पहुँचाये देता हूँ। ध्यान दीजिये कि श्रीराम का बाण प्राण लेकर दिव्य धाम पहुँचाने वाला हैं, जबकि श्रीभरत का वाण बिना प्राण लिये ही स–शरीर राम के पास पहुँचाने वाला है।

चढु मम सायक सैल समेता । पठवौ तोहि जहँ कृपा–निकेता ॥

6/60/6

आध्यात्मिक भाषा में कहें तो श्रीराम के पास पहुँचाने वाला दिव्य वाण केवल श्रीभरत के पास है। यह विमुग्धकारी बात है। पर शक्ति के अनुसार यह असंभव प्रतीत हो रहा था। अतः स्वभावतः हनुमान के मन में यह विचार उत्पन्न होना ही था कि

"मोरे भार चलिहि किमि बाना" 6/60/7

गीतावली रामायण में हनुमान गिरि सहित वाण पर चढ़ गये, पर वाण लेशमात्र झुका तक नहीं। तब श्रीभरत के वाण की अतुलित शक्ति देखकर अभिमान–रहित होकर हनुमान श्रीभरत की पद–वंदना करके भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे।

कुधर सहित चढ़यो विसिष,बेगि पठवौं,
सुनि हरि हिय गरब गूढ़ उपयो है।
तीर तें उतरि जस कह्यो, चहै, गुन गननि जयो है॥
धनि भरत धनि भरत करत भयो,
मगन मौन रहयो, मन अनुराग रयो है॥

गीतावली रामायण लंका कांड पद 11/3,4

मानस में हनुमान कहते हैं कि हे नाथ! मैं आपके प्रताप से स्वयं चला जाऊँगा। मुझे आप जाने की आज्ञा प्रदान करें। ऐसा कहकर श्रीभरत के बाहु–बल एवं शील–गुण की प्रशंसा बारंबार करते हुए हनुमान प्रस्थान करते हैं।

भरत बाहु–बल सील गुन, प्रभु पद प्रीति अपार ।
जात सराहत मनहिं मन, पुनि पुनि पवन कुमार ॥ 6/60 (ख)

विनय पत्रिका मे भी हनुमान श्रीभरत की महिमा गाते हुए जाते हैं।

जयति संजीवनी समय संकट हनुमान धनु बान महिमा बखानी ।
बाहु बल विपुल परमिति पराक्रम अतुल, गूढ मति जानकी जानिजानी ॥

पद सं 39/4

बँगला भाषा की **"कृत्तिवासीय रामायण"** के अनुसार हनुमान के संकेत पर श्रीभरत ने अपने संधानित वाण को खाली ही लंका की ओर छोड़ दिया। उस वाण से लंका के युद्ध की दो कठिनाइया सुलझ गईं।

पहली कठिनाई थी– पश्चिम द्वार की, जो अटूट सिद्ध हो रहा था ।

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पश्चिम द्वार रहा बलवाना ॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई ॥

6/43/3,4

इस वाण ने लंका पहुचकर पश्चिम द्वार को तहस नहस कर दिया। फिर जाकर लक्ष्मण के तरकस में प्रविष्ट हो गया। महर्षि कृत्तिवास के अनुसार उसी वाण से लक्ष्मण ने मेघनाद को मारा था। मानस में संकेत है –

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा । सरसंधान कीन्ह करि दापा॥
छाँड़ा बान माँझ उर लागा । मरती बार कपट सब त्यागा॥

6/76/15,16

ध्यान दीजिये कि उस समय कौशलाधीश पद पर श्रीभरत कार्य कर रहे थे। अतः उनका स्मरण करके उनका वाण छोडा गया, जिससे मेघनाद का वध सम्पन्न हुआ। इस प्रकार दूसरी कठिनाई का निवारण हुआ।

हनुमान ने श्रीराम से अपनी इस यात्रा का विवरण बतलाते हुए कहा –प्रभो! जब मैं श्रीभरत के वाण से मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, तो उन्होंने वहीं पर्वत पर स्थित संजीवनी बूटी का प्रयोग न करके केवल अपने दिव्य प्रेम का उद्बोधन किया था, जिससे मेरी मूर्च्छा भंग हो गई थी। प्रभु को भरत का प्रयोग भा गया। अतः उन्होंने भी रावण के प्रहार से लक्ष्मण की मूर्च्छा के समय संजीवनी– बूटी की औषधि न लगाकर इसी मंत्र का प्रयोग किया; जो अत्यंत सफल सिद्ध हुआ।

कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता ।।
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला ।।

6/84/6,7

उक्त उदाहरण में प्रजा–रक्षण में इतने जागरूक तथा समर्थ श्रीभरत जब अपना दैन्य–भाव प्रकट करते हुए कहते हैं कि मुझे हठ पूर्वक अगर अयोध्या का राज्य सौंप देंगे, तो इस पापात्मा को देखते ही पृथ्वी स्थिर नहीं रहेगी, प्रत्युत् गिर कर रसातल में चली जावेगी ।

मोहिं राजु हठि देइहहु जबहीं । रसा रसातल जाइहि तबहीं ।।

2/179/2

मानों इसके प्रत्युत्तर में ही श्रीराम भगवान शंकर की साक्षी देकर उद्घोष करते हैं कि इस भूमि की रक्षा वही कर सकता है जिसके लिये नामकरण करते समय गुरूदेव ने कहा था कि विश्व के भरण–पोषण का संभार करने वाले महापुरूष का नाम भरत है ।

बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।

1/117/7

गुरूदेव के इन वचनों का समर्थन एवं समादर करते हुए श्रीराम उद्घोष करते हैं कि केवल भरत ही सर्वश्रेष्ठ भूमि–रक्षक है।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउर राखी ।।

2/264/1

श्रीराम के वचनों की सत्यता का प्रमाण इस तथ्य से भी प्राप्त हो जाता है कि पिता दशरथ श्रीराम को राजा बनाने की पूरी व्यवस्था सम्पन्न कर चुके थे। पर रामराज्य तब तक स्थापित नहीं हो सकता था, जब तक पहले चौदह वर्ष तपस्वी भरत का राज्य न चल जावे। प्रेममूर्ति श्रीभरत का राज्य ही रामराज्य की पृष्ठ भूमि तैयार करता है। पूर्व अध्याय छह में इसका विवेचन विस्तार पूर्वक किया जा चुका है। श्रीभरत के सुशासन का प्रमाण श्रीमद् **"वाल्मीकीय रामायण"** में प्राप्त होता है कि, अवधराज्य की आय पहले से दस गुना अधिक बढ़ गई थी। भरत जी श्रीराम से निवेदन करते हैं–

अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् ।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ।। 6/127/57

अर्थात् आप राज्य का खजाना, कोठार, घर और सेना देख लें। आपके प्रताप से सभी वस्तुयें पहले से दस गुणा हो गई हैं।

वहीं श्रीभरत जी श्रीराम वनवास की ग्लानि में गलते हुए बार–बार यही कहते हैं कि मेरे समान पापात्मा कौन होगा, जिसके कारण मेरे आराध्य प्रभु श्रीसीताराम वनवास का कष्ट भोग रहे हैं।

मोहिं समान को पाप निबासू । जेहि लगि सीय राम बनबासू ॥

2/179/5

एक ओर तो श्रीराम अपने वनवास को अपना पुण्योदय मानते है। वे महर्षि वाल्मीकि से कहते हैं –

तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य प्रभाउ ॥

2/125

श्रीराम का कथन है कि मेरे वनवास में चारों पुरूषार्थ फलीभूत दृष्टिगोचर हो रहे हैं। पिता के वचन–पूर्ति से धर्म–पुरूषार्थ की सिद्धि हो गई। माता कैकेयी की कामना–पूर्ति से उन्हें काम–पुरूषार्थ मिल गया। श्रीभरत को राज्य–प्राप्ति से उन्हें अर्थ–पुरूषार्थ मिल गया तथा प्रजा को श्रीभरत जैसा महाभागवत राजा मिलने से भाग्योदय हो गया है। ध्यान दीजिये – श्रीराम के वचन में "भरत अस राउ" महत्वपूर्ण है। भरत के राजा बनने से मुझे तो सम्पूर्ण दिशाओं में अनुकूलता ही अनुकूलता का दर्शन हो रहा है। मैं अयोध्या के राजा का बड़ा भाई कहा जाऊँगा।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू ॥

2/42/1

सर्वोत्कृष्ट बात तो यह है कि उक्त अनुकूलताओं के साथ–साथ ही इसी परिप्रेक्ष्य में मुझे संत–दर्शन से सर्वोत्कृष्ट पुरूषार्थ मोक्ष की सिद्धि हो रही है। इस प्रकार सबसे अधिक लाभ तो मुझे ही मिला है। अतः यहाँ मेरे पुण्य फलप्रद हो गये हैं। इस प्रकार श्रीराम ने मानों ये कह दिया कि जिस वनवास तक मेरा पुण्य मुझे लेकर पहुँचा है, वह भरत की दृष्टि में उनका पाप है। अर्थात् भरत लालजी का पाप मेरे पुण्य के बराबर है। तो भरत का पुण्य कितने आगे तक पहुँचा होगा। इसकी परिकल्पना कौन कर सकता है ?

वस्तुतः श्रीराम के वनवास का मूल कारण पिता की आज्ञा का पालन, धर्मरक्षा, निश्चर–संहार आदि सब नहीं है। ये सब तो ऊपरी तौर पर दिखलाई देने वाले कारण बन गये हैं। सच्चे अर्थों में तो भरताब्धि–मंथन करके उसमें से गूढ़ प्रेमामृत को प्रकट करना ही राम–वनवास का लक्ष्य है। उस प्रेमामृत का प्रसाद सारे विश्व को पान कराना ही वास्तविक उद्‌देश्य है।

यह प्रेमामृत जिस गूढ़ गंभीर हृदय के अन्तराल में प्रतिष्ठित था, उसे अथाह, असीम, अंतहीन समुद्र की उपमा द्वारा व्यक्त किया गया है। लौकिक समुद्र से उसमें अनेक विशिष्टतायें हैं। गीतावली रामायण में वर्णन है कि जब हनुमान श्रीभरत के वाण की चोट से स्वस्थ होकर मन ही मन भरत के बाहु–बल, शीलगुण, श्रीराम के चरणों में अपार प्रेम की बार–बार प्रशंसा करते हुए लंका–प्रयाण कर रहे थे; तो उन्होंने मन ही मन लौकिक समुद्र तथा भरत के विशाल हृदय–पयोधि की तुलनात्मक विवेचना की। लौकिक समुद्र में उन्हें पाँच कमियाँ प्रतीत हुई। प्रथम इस समुद्र को–सगर–पुत्रो ने खोदा है। द्वितीय देवता और दैत्यों ने मिलकर मथा है। तृतीय मैंने (हनुमान ने) स्वयं लांघा है। चतुर्थ नल–नील ने इस पर पुल बाँधा है। पंचम महर्षि अगस्त्य ने पी लिया था। किन्तु आज मैनें भइया भरत के जिस असीम प्रेम–प्रपूरित समुद्र का दर्शन किया है, उसका संतरण अर्थात् उसकी महिमा का गायन कोई भी कवि अथवा विद्वान नहीं कर सकता।

यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसिदास रघुबीर-बन्धु महिमा को सिन्धु ,
तरि को कवि पार गयो है ।।

गीतावली लंका कांड पद 11/5

कविरत्न श्री भैरव द्विवेदी रामायणी अपनी मानस–तरंग में इन दोनों समुद्रों की मार्मिक तुलना प्रस्तुत करते है।

सागर विशाल बहु सगर -सुतों ने खोदा,
देव दानवों ने मथा इतिहास गासका ।
पीकर पयोनिधि को अगस्त्य ने पचा लिया था,
डॉक कर सिंधु राम-दूत पार पा सका।।
वाँधकर वारिधि को राम उतरे थे पार

"भैरव" उपाय कोई और नहीं आ सका।
लाँघकर, बाँधकर, पानकर किसी भी भाँति
भरत पयोधि का न पार कोई पा सका ।।

सचमुच इस समुद्र को पार करने में कौन समर्थ हो सकता है । जब स्वयं स्मृति–शास्त्र–निर्माता धर्म–सम्राट् पद पर विभूषित गुरूदेव वशिष्ठ जिन्हे **"सोइ गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी"** 2/255/8 का श्रेय प्राप्त था, उनकी बुद्धि भी किंकर्तव्य–विमूढ़ रह गई। एक निराश्रित अबला की भाँति विकल होकर उस महासमुद्र के तीर पर खड़ी थी उसे न तो भवसागर पार कराने वाली **"रामकथा की दृढ़ नाव"** 7/53/3 ना ही **"भव वारिधि पार कराने वाले बोहित स्वरूप वेद"** 1/14/इ और न ही **"भव पार कराने में बेड़ा स्वरूप परम सामर्थ्यवान नर तनु"** 7/44/7 इन तीनों में कोई भी साधन भरताब्धि पार कराने में सक्षम सिद्ध नही हो सके। तो अन्य की गति की चर्चा करना ही व्यर्थ है। भला कभी तुच्छ सीपी में अगाध समुद्र समा सकता है? ऐसा है भरत की महा–महिमा का विशाल समुद्र।

भरत महामहिमा जलरासी । मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ।।
गा चह पार जतनु हियँ हेरा । पावति नाव न बोहित बेरा ।।
और करिहि को भरत बड़ाई । सरसी सीप कि सिंधु समाई ।।

2/257/2–4

सचमुच ज्ञानमूर्ति गुरू देव वशिष्ठ प्रेममूर्ति श्रीभरत के हार्दिक अनुराग से इतने प्रभावित थे, कि उन्होंने चित्रकूट की अगली सभा में स्नेह सहित यह उद्‌घोष कर दिया, कि भरत के प्रेम–पयोधि में मग्न होने से मेरी विचार–शक्ति काम नहीं कर रही है। अतः मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि मेरी बुद्धि भरत–भक्ति से प्रभावित होकर उस अलौकिक प्रेम–भक्ति की वशवर्ती बन गई है। अतः मैं अपनी स्वतंत्र सम्मति देने में असमर्थ हो रहा हूँ। मेरी इच्छा यह है कि भरत की रूचि को प्रधानता देते हुए जो कुछ भी निर्णय किया जावेगा; वह श्रेयष्कर होगा। इसकी साक्षी में मैं भगवान शंकर को प्रस्तुत कर रहा हूँ।

कह मुनि राम सत्य तुम भाषा । भरत सनेह बिचार न राखा ।।
तेहिं तें कहउँ बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइमति मोरी ।।
मोरे जान भरत रूचि राखी । जो कीजिय सो सुभ सिव साखी।।

2/258/6–8

प्रेम—मूर्ति भरत की प्रशंसा में गुरूदेव वशिष्ठ के स्नेह—पूर्ण उदगार सुनकर श्रीराम अत्यंत आनंद विभोर हो गये। वे गदगद् स्वर में अनुज भरत की भूरि—भूरि प्रशंसा कर कहने लगे कि मैं अपने परम पूज्य गुरुदेव, आप श्री की सौगन्ध खाकर तथा पूज्य पितृ चरण की दोहाई देकर उद्घोष करता हूँ कि त्रिकाल में त्रिभुवन में भरत के समान भाई पैदा ही नहीं हुआ है। जो शिष्य गुरू चरणानुरागी होता है, वह लोक वेद में अत्यंत भाग्यवान हैं; फिर गुरुदेव ही जिस भरत पर अनुराग करते हैं, उन भरत के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ? अतः भरत की इच्छा का पालन करने में सबका कल्याण निहित है।

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ।।
जे गुरू पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ वेदहुँ बड़ भागी ।।
राउर जा पर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ।।

2/359/4–6

ऐसे परम बड़भागी श्री भरत के गंभीर प्रेम—पयोधि का मंथन करके श्रीराम ने प्रेमामृत प्रकट किया, जिस पर अगले अध्यायों में चर्चा की जावेगी। इस अध्याय का समापन गोस्वामी विन्दु जी रचित श्रीराम द्वारा मैथिल बालकों के प्रति कथित कवित्त द्वारा किया जा रहा है —

मित्र मन-मानस में पाकर सनेह नीर
कमल समान सदा फूले और फूलेंगे ।
चक्रवर्ति ताज क्या है तीन लोक राज सुख
प्रेम के मुकाबले न तूले हैं न तूलेंगे ।।
"विन्दु" कवि भोले भाले भक्तों के अनाखे चोखे
टेढ़े सूधे बचन कबूले हैं कबूलेंगें।
कार बार जग के हजार बार नष्ट हों पर
प्रेमियों के प्यार को न भूले हैं न भूलगे ।।

अध्याय – नौ

श्री रामचरित मानस में पंचामृत

ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ग्यान संत सुर आहिं ।
कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहि ।।

7/120क

पौराणिक गाथानुसार समुद्र–मंथन से अमृत की प्राप्ति होना सुप्रसिद्ध हैं अमृत की खोज विषयक अपने पूर्व–प्रकाशित (ग्रंथ–"राम और राम–काज" सम्पादक डॉ. मन्नू लाल यदु, छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रतिष्ठान, हनुमान मंदिर, कृष्ण सखा प्रेस, टूरी हटरी, रायपुर पृष्ठ क्र. 374 से 378 तक) में शोध–पूर्ण लेख **"मानस में पंचामृत"** के संक्षिप्त सारांश–विन्दु प्रस्तुत करके भरताब्धि–मंथन से प्रेम–सुधा–प्रकटीकरण का प्रसंग प्रस्तुत करना समीचीन होगा। संस्कृत में अमृत की खोज विषयक एक सुप्रसिद्ध श्लोक है–

अब्धौ विधौ वधु–मुखे फणिनां निवासे, स्वर्गे सुधा वसति वै विबुधा वदन्ति ।
क्षारो क्षयो पतिमृतर्विषमिन्द्र नाशो, कण्ठे सुधा वसति वै भगवज्जनानाम् ।।

संस्कृत श्लोक के भावानुवाद में हिन्दी भाषा में एक कवित्त प्रस्तुत है, जिसमें संस्कृत के क्रमालंकार युक्त वर्णन का स्पष्टीकरण करते हुए श्रीराम चरित मानस में पंचामृत प्राप्ति का संदेश दिया गया है।

अमृत की खोज हेतु तत्पर थे विद्वज्जन
मृत्यु भय समान देख ज्ञानी अज्ञानी में ।
चन्द्रमा में खोजा तो क्षय रोग ग्रस्त देखा
जल निधि में पाया गया खारीपन पानी में ।।
स्वर्ग में भी पतन देखा, नागों में विष पाया
युवती अधरामृत पर पति मरा जवानी में ।
पाँच जगह भटके पर अमृत था कहीं नहीं,
पाँच–पाँच अमृत मिले तुलसी की वानी में ।।

श्रीरामचरित मानस में उपलब्ध वे पाँच अमृत इस छप्पय में परिगणित किये गये हैं।

अमृत दुर्लभ तत्व, परम आनंद प्रदाता ।
विश्व माहिं नाहिं सुलभ, गुप्त रचि दियो विधाता ।।
सोइ तुलसी ने मानस में पंचामृत कीन्हो ।
कथा, नाम अरू रूप, कृपा को अमृत दीन्हो ।।
प्रभु वचनामृत, हरिहिं सम प्रेम सुधा सुखदायिनी ।
पियहु भक्तजन कर्ण-पुट, कह सुरेन्द्र रामायणी ।।

(1) कथामृत :- इसकी उत्पत्ति के लिए संत रूपी देवगण ने ब्रह्म के अथाह समुद्र में ज्ञान का मंदराचल डालकर मंथन किया, तो उससे भगवान् का कथामृत निःसृत हुआ, जिसमें भगवद्भक्ति की अनुपम मधुरता व्याप्त है ।

ब्रह्म पयोनिधि, मंदर ग्यान, संत सुर आहिं ।
कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहि ।। 7/120(क)

इस कथामृत का कर्ण–पुटों से पान करते हुए माता पार्वती के वचन भगवान् शंकर के प्रति इस प्रकार हैं–

नाथ तवानन ससि श्रवत, कथा सुधा रघुबीर ।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि, नहिं अघात मति धीर ।। 7/52(ख)

अशोक–वाटिका में शोक–विह्वला श्रीजानकी माँ भक्त हनुमान से कथामृत श्रवण करके विशोक होकर वक्ता से दर्शन देने का आग्रह करती हैं।

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई । कहीं सो प्रगट होति किन भाई ।।

5/12/7

श्रीमद् भागवत के गोपी–गीत में इस कथामृत की प्रशंसा इन शब्दों में व्यक्त की गई है। श्रीकृष्ण–विरह–विह्वला गोपियाँ विरहावेश में गायन कर रही हैं –

तव कथामृतं तप्त जीवनं, कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं, भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।।

10/31/9

अर्थात् हे प्रभो! तुम्हारी लीला–कथा तो अमृत–स्वरूपा है। विरह से सताये हुए लोगों के

लिये तो वह जीवन सर्वस्व ही है। बड़े–बड़े ज्ञानी महात्माओं–भक्त कवियों ने उसका गान किया है। वह सारे पाप ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवण मात्र से परम मंगल (कल्याण) का दान भी करती है। वह परम सुंदर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला–कथा का गान करते हैं, वास्तव में भूलोक में वे ही सबसे बड़े दाता हैं।

(2) नाम–रूपामृत :– "नाम रूप दुइ ईस उपाधी" 1/21/2 दोनों संयुक्त हैं, अतः पृथक–पृथक वर्णन न करके दोनों को साथ में चित्रित किया गया है। किसी का नाम लेने पर उसका रूप प्रत्यक्ष होता है, एवं रूप के साथ उसका नाम अभिन्न होता है। कथामृत की भाँति नामामृत की उत्पत्ति भी ब्रह्म–पयोनिधि से ही प्रकट है।

ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं कलिमल प्रध्वंसनं चाव्ययं ।
श्रीमच्छम्भु मुखेन्दु सुंदर वरे संशोभितं सर्वदा ।।
संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनं ।
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ।।

4/श्लोक 2

अर्थात् यह राम नाम का अमृत ब्रह्म के महासमुद्र से उत्पन्न हुआ। कलियुग के समस्त मल का विनाशकारक है। यह अविनाशी तत्व है। श्रीशंकर भगवान के श्रेष्ठ सुन्दर मुख–चन्द्र में सदा सुशोभित रहता है। संसार के समस्त मनोरोगों की सुखदायक औषधि है। श्री जानकीजी की तो प्राण–संजीवनी ही है। अस्तु वे महाभाग भक्त जन परम धन्य हैं जो सदा इस राम नाम रूपी अमृत का पान करते रहते हैं।

इस नाम–सुधा का पान करने वाले सर्वकामना शून्य जीवन्मुक्त ब्रह्म–परायण रामभक्ति रसलीन परम भागवत संतजन हैं।

सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन ।
नाम सुप्रेम पियूष हृद, तिन्हहु किये मन मीन ।। 1/22

श्रीमद् भागवत महापुराण में इसी सिद्धान्त का निरूपण प्राप्त होता है ।

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरूक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः ।। 1/7/10

अर्थात् ऐसे नित्यमुक्त मुनिगण जिनकी अविद्या की गाँठ खुल गई है, और जो सदा आत्मा में ही रमण करने वाले हैं, वे भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति करके उनका नाम–सुधा–पान करते हैं, क्योंकि भगवान् समस्त गुणों के समुद्र हैं। भगवान् की भक्ति में तल्लीन होकर वे उनकी रूप–माधुरी के दर्शन में लवलीन रहते हैं।

ऐसे भगवान् के रूपामृत का पान जनकपुर की धनुष–यज्ञ–सभा में साधु राजाओं को सुलभ हुआ था। वे असाधु राजागण को उपदेश दे रहे थे कि संसार की मृगतृष्णा में न भटक कर सम्मुख विराजमान रूप–माधुरी–सुधा का पान करो।

सुधा समुद्र समीप बिहाई । मृगजलु निरखि मरहु कत धाई ।।

1/246/5

वनपथ में अनाम तापस ने भगवान् की रूप–सुधा–माधुरी का पान उसी तरह भावविभोर होकर किया था, जिस तरह कोई चिरकाल का भूखा अति सुंदर सुस्वाद व्यंजनों को पाकर आतुर होकर उन्हें आत्मसात करने को टूट पड़े।

पियत नयन पुट रूपु पियूषा । मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा ।।

2/111/6

(3) कृपामृत :– इसका पान करने का सौभाग्य अनन्य रामानुरागी दम्पति मनु–शतरूपा को तब मिला, जब उन्होंने विधि–हरि–हर त्रिदेव की ओर ऑख उठाकर भी नहीं देखा। निदान, इन त्रिदेवों के स्वामी परब्रह्म परमात्मा अनंत ब्रह्माण्डानायक साकेताधीश्वर श्रीराम ने आकाशवाणी द्वारा अपनी कृपामृत सनी वाणी की वर्षा की। परम सुखद आश्चर्य यह हुआ कि सम्मुख स्थित त्रिदेवों की कृपादृष्टि पड़ने तथा उनकी वाणी में वस्याचना का परम लुभावना आग्रह होने पर भी मनु–सतरूपा की अस्थिपंजर मात्र देह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु अब भगवान् श्रीराम की कृपामृत आप्लावित वाणी को श्रवण करते ही दम्पति का शरीर पूर्ववत् हृष्ट–पुष्ट हो गया, मानों वे अभी अभी अपने राजमहल से आ रहे हों। यह है कृपामृत का प्रत्यक्ष प्रभाव।

प्रभु सर्वग्य दास निज जानी । गति अनन्य तापस नृप रानी ।।
मागु मागुबर भै नभ बानी । परम गँभीर कृपामृत सानी ।।
मृतक जियावनि गिरा सुहाई । श्रवनरंध्र होइ उर जब आई ।।
हृष्ट–पुष्ट तनु भये सुहाये । मानहुँ अबहिं भवन तें आये ।।

1/145/5–8

(4) वचनामृत :– शिशु–रूप श्रीराम के लीला–विलास को न समझ पाने पर काकभुसुंडि मोहग्रस्त होकर भगवान् की पकड़ से दूर भागकर अनेक ब्रह्माण्डों में भटके। अन्ततः श्रीराम का शीतल, सुखद, पाप–ताप–माया–मोचक कर–स्पर्श प्राप्त कर स्वस्थ हुए। श्रीराम द्वारा वर–याचना की आज्ञा पाने पर अनन्य–प्रयोजन बनकर उनकी अविरल विशुद्ध–भक्ति की याचना की। तब श्रीराम ने अपने अनन्य भक्त की श्रीमुख वाणी से प्रशंसा करते हुए कहा कि "मेरा भक्त नर, नारी, नपुंसक किसी वर्ग का क्यों न हो? यदि वह सर्वतो भावेन कपटरहित होकर प्राणिमात्र–जनार्दन की सेवा में रत रहता है, तो वह मुझे ब्रह्मा से भी अधिक प्रिय होता है। अस्तु तू अन्य की आशा त्यागकर नित्य निरंतर मेरा भजन करते रहना। इससे तुझे कभी काल व्याप्त न होगा। तुझे मृत्यु का लेशमात्र भय न रहेगा। श्रीराम के इस वचनामृत का पान करके प्रसाद स्वरूप काकभुसुंडि सत्ताइस कल्प से अजर–अमर होकर पक्षि–वृन्द को श्रीराम कथामृत पान करा रहे हैं।

कबहूँ काल न व्यापिहि तोहीं । सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोहीं ।।
प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ । तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ ।।

7/88/1–2

इसी भाँति प्रभु वचनामृत–पान करने का सौभाग्य शरणागत विभीषण को प्राप्त हुआ। प्रभु ने उन्हें अपने उस स्वभाव की जानकारी दी, जिसे भक्तराज काकभुसुंडि, भगवान शंकर तथा भगवती पार्वती भली भाँति जानती है। अत्यंत अधम समस्त चराचर जगत का द्रोही प्राणी भी यदि आर्त भाव से प्रभु की शरण ग्रहण करे। वह अपने माता, पिता, भाई, पुत्र, पत्नी, शरीर, सम्पत्ति, घर, मित्र एवं परिवार–इन दस दिशाओं में बिखरे अपनी ममता के तागों को समेट कर उन्हें एक साथ बँटकर सुदृढ़ डोरी बनाकर उस डोरी से अपने मन को भगवान के श्रीचरणों में संयुक्त कर दे, तो वह अकिंचन जन भगवान् का प्राणप्रिय बन जाता है। भगवान की इस अमृतमयी वाणी को सुनते हुए विभीषण को तृप्ति नहीं हो रही थी। अंततः उन्हें भी कल्पान्त तक का अमरत्व तथा लंका का सार्वभौम साम्राज्य प्राप्त हुआ।

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी । नहिं अघात श्रवनामृत जानी ।।

5/49/3

(5) प्रेमामृत :– सर्वाधिक विलक्षण इस ग्रंथ का प्रकृत विषय प्रेमामृत है। जो एकदम भगवत्स्वरूप है। भरत के विशाल समुद्र के अन्तराल में निहित इस दिव्य प्रेमामृत को प्रकट करने के लिए स्वयं कृपासिंधु राम को तत्पर होना पड़ा। एक समुद्र ही तो दूसरे समुद्र के

अन्तर्तम में प्रविष्ट हो सकता था। मंथन–कार्य दुष्कर था। अपने प्राणाधिक दुलारे भरत के हृदय में विरह का मंदराचल डालना कठोरता की सीमा थी। पर अन्य कोई चारा न था। प्रेम तत्व–ज्ञाता संस्कृत के आचार्यों का कथन है–

संगम विरह विमर्शे वरमिह विरहो न संगमस्तस्य ।

संगमे स तु एकः विरहे तन्मयं जगत् ।।

अर्थात् संगम (मिलन) और विरह के तुलनात्मक विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि मिलने से विरह ही श्रेष्ठ है, क्योंकि मिलने में तो प्रियतम का अकेला ही साथ रहता है, किन्तु विरह की स्थिति में समस्त जगत् ही प्रियतममय हो जाता है। इससे अनुप्राणित होकर श्रीरामनरेश त्रिपाठी अपने "पथिक" खण्ड काव्य में लिखते हैं।

मिलन अंत है मधुर प्रेम का, और विरह जीवन है।

विरह प्रेम की जाग्रत गति है, और सुषुप्ति मिलन है।

पुनः यही सिद्धान्त श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" के महाकाव्य **"प्रिय- प्रवास"** की चिर वियोगिनी सधा को जीवनादर्श बना, जब वे अपना समस्त निजत्व तथा परत्व भूलकर अपनी भेद बुद्धि तिरोहित करके विश्वप्रेमी बन जाती हैं ।

पाई जातीं जगत जितनी वस्तु हैं जो सबों में ।

मैं प्यारे को विविध रंग औ रूप में देखती हूँ ।।

तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूँगी ।

यों है मेरे हृदयतल में विश्व का प्रेम जागा ।।

तात्पर्य यह है कि विरहाग्नि में दग्ध हुए बिना प्रेम का प्रकटीकरण होता ही नहीं है। भले ही राम भी समुद्र "कृपा सिंधु" हैं, परन्तु उन्होंने प्रेमामृत प्रकट करने के लिए दूसरा समुद्र "भरत सुप्रेम पयोधि" का चयन किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि मंथन करते–करते एक समुद्र दूसरे समुद्र में डूब गया। कृपा के समुद्र ने प्रेम के समुद्र में आत्मसात करके अपने निजत्व का तिरोधान कर दिया।

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ । प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ।।

2/232/8

मंथन–विषयक घर्षण–कार्य के लिए वासुकि नाम के रूप में कैकेयी अम्बा को माध्यम

बनाया गया। उनके लिए नागिन की उत्प्रेक्षा प्रयुक्त की गई है ।

मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि, बिषम भाँति निहारई । 2/25/छंद 2

इस कार्य में प्रेरक सहयोगिनी मंथरा को भी काली नागिन कहा गया है ।

तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि । छाड़इ स्वाँस कारि जनु साँपिनि ॥

2/13/8

भरत के सुकोमल हृदय पर चोट पर चोट पड़ती चली गई। पहले तो उनके प्रिय पुरजनों ने मूक रहकर उपेक्षापूर्ण बहिष्कार जैसा व्यवहार किया–

पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवहिं जोहारहिं जाहिं ।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय विषाद मन माहिं ॥ 2/158

फिर मातृ–मुख से पूज्य पिताश्री के निधन का हृदय–विदारक समाचार श्रवण करने को मिला।

तात तात हा तात पुकारी । परे भूमितल ब्याकुल भारी ॥
चलत न देखन पायउँ तोहीं। तात न रामहिं सौंपेहु मोहीं ॥ 2/160/4,5

श्री भरत की हार्दिक वेदना यह थी कि पिताश्री ने अपने अंतिम क्षणों में मुझे श्रीरामचरण में डालकर सौंप दिया होता, तो मैं कृतकृत्य हो जाता। उन्हें अभी तक यह कहाँ पता हो पाया था, कि उन्हें राज्य सिंहासनासीन बनाने के लिए उनके आत्माराम को वनवासी बना दिया गया है। आगे की वार्ता में जब उन पर रामवन–गमन का भयानक वज्र–पात पड़ा, तो मानों घर्षण प्रक्रिया चरम तीव्रता पर पहुँच चुकी थी। तब तो वे जड़वत् निस्तब्ध होकर रह गये।

भरतहिं बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जियँ, थकित रहे धरि मौनु ॥ 2/160

परन्तु घर्षण अभी भी विराम नहीं ले रहा था। वे जड़वत् ऐसी दशा में थे, जिस दशा में अधिक समय तक रह जाने पर व्यक्ति के हृदय की धड़कन बंद हो जाती है। किन्तु इसी दशा में माता कैकेयी द्वारा राजपाट सँभालने का निर्देश मानों पके घाव पर अंगारा रख देने के समान हो गया, जिससे वे चिहुँक पड़े और अपनी वाणी से अंगार वर्षाने लगे। वे वचन एक पुत्र द्वारा माता को सम्बोधित नहीं थे, प्रत्युत् एक राजकुमार द्वारा राजमाता बनने की लोलुप कुलक्षिणी नारी के प्रति प्रलाप था। इस स्थल पर महाकवि ने भरत के लिए राजकुमार शब्द का प्रयोग

किया है।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाके छत जनु लाग अँगारू ।।
धीरज धरि भरि लेहिं उसाँसा । पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ।।
जो पै कुरूचि रही अति तोहीं । जनमत काहे न मारे मोहीं ।।

2/161/5–7

देवासुर वाले समुद्र–मंथन में सर्वप्रथम विष ही तो प्रसूत हुआ था। अतः इस भरताब्धि –मंथन में भी सर्वप्रथम राजकुमार भरत द्वारा प्रयुक्त कठोर वचनों का विष निकलना स्वाभाविक ही था। यहाँ भगवान शिव की भाँति माता कैंकेयी ने यह विष–पान किया।

दधि–मंथन में बीच बीच में जल के छींटे डाले जाते हैं। ऐसे ही श्रीभरत के प्रति माता कौशल्या के सान्त्वना वचन–

राम प्रानहु ते प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु ते प्यारे ।।
बिधु बिष चवै श्रवै हिमुआगी । होइ बारिचर बारि बिरागी ।।
भएँ ग्यानु बरू मिटै न मोहू । तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू ।।
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ।।

2/169/1–4

आगे श्रंगवेरपुर में रामसखा गुह के प्रेमोद्‌गार–

राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहिं । यह निरजोसु दोष बिधि बामहिं ।।
छंद–बिधि बाम की करनी कठिन, जेहि मातु कीन्हीं बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी ।।
तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहत हौं सौहें किएँ ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ ।।
दो0 – अंतरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन ।
चलिअ करिअ बिश्रामु ,यह बिचारि दृढ़ आनि मन ।। 2/201

एवं प्रयागराज की पावन भूमि में माता त्रिवेणी द्वारा सुमंगल वचन सुनाये गये–

बादि गलानि करहु मन माहीं । तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं ।।

दो0 – तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि, बेनि बचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरसहिं फूल ।। 2/205

इस प्रकार शीतल जल के छींटों के साथ भरताब्धि–मंथन चलता रहा। अब तीर्थराज–निवासी **"बैखानस बटु गृही उदासी"** 2/206/1 ने प्रमुदित होकर प्रेममूर्ति के दर्शन किये। गृहस्थों को ऐसा लगा, मानों हमें कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ा रहे हैं। ब्रह्मचारियों ने उनसे संयम व्रत का पाठ सीखा। वानप्रस्थों ने तपस्या का मूर्तिमान स्वरूप देखा। सन्यासियों को सर्वस्व–त्याग की शिक्षा प्राप्त हुई। जबकि महर्षि भरद्वाज ने अपने मूर्तिमान सौभाग्य को साकार रूप में देखा।

दंड प्रनामु करत मुनि देखे । मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ।। 2/206/4

महर्षि भरद्वाज ने भरत के निर्मल यश चंद्र में अद्भुत विलक्षणता का दर्शन किया। एक ऐसा चन्द्रमा जो सदा उदित रहता है। कभी अस्त होता ही नहीं है। लौकिक चंद्रमा की भाँति घटने एवं अस्त होने की बात तो बहुत दूर, यह तो दिन दूना प्रवर्द्धमान होता रहता है। वस्तुतः प्रेम का यही तो स्वरूप है। उसकी सार्थकता, नवीनता, नित्यता, निरंतरता और उत्तरोत्तर वृद्धि में है।

प्रेम सदा बढ़िबो करै, ज्यों शशिकला सुवेष ।
पै पूनो या में नहीं, ताते कबहुँ न शेष ।।

इसी भाँति निरन्तर बढ़ते रहने के कारण भरत के यश चन्द्र में भी पूर्णिमा नहीं आती। मजे की बात तो यह है, कि यहाँ श्रीराम का प्रताप सूर्य तथा भरत का यश चन्द्र एक ही आकाश में दोनों साथ–साथ प्रकाशित हैं। अमावस्या न होने से इसमें कभी सूर्य–ग्रहण नहीं होता तथा पूर्णिमा न आने से कभी चन्द्र–ग्रहण भी नहीं होता है। इसमें रामप्रेम का ऐसा दिव्य अमृत निःसृत होकर श्रवित होता है कि भूमंडल पर रामभक्त जितना सुधा–पान करना चाहें; जी भरकर, छककर, राम–प्रेम–सुधा को पीते रहें। कभी इस अमृत का सोत सूखने वाला नहीं है।

नव बिधु विमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।।
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ।।
कोक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रभु प्रताप रबि छबिहिं न हरिही ।।
निसि दिन सुखद सदा सब काहू । ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू ।।
पूरन राम सुप्रेम पियूषा । गुरू अवमान दोष नहिं दूषा ।।

राम भगत अब अमियँ अघाहू । कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू ।। 2/209/1-6

महर्षि भरद्वाज बतलाने लगे, कि एक दिन हमने भगवान् श्रीराम के दर्शन किये। तब हमें ऐसा लगा कि हमारी तपस्या, सर्वस्व–त्याग, तीर्थ–राज प्रयाग–वास, मंत्रराज–जप, योग–साधना, वैराग्य आदि समस्त शुभ साधन एक साथ सफल हो गये हैं, क्योंकि हमने अपने परमाराध्य राम का दर्शन पा लिया है। यही तो लाभ की अवधि परमानंद है। भगवत् दर्शन से बढ़कर कुछ होता ही नहीं है। उसे प्राप्त कर हम कृत्कृत्य हो गये हैं। अब इसके बाद हमें कोई चाह शेष नहीं रह गई हैं।

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग बिरागू ।।
सफल सकल सुभ साधन साजू । राम तुम्हहिं अवलोकत आजू ।।
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी । तुम्हरे दरस आस सब पूजी ।।

2/107/5-7

अब भरत दर्शनोपरान्त उनकी पूर्व मान्यता अधूरा सत्य सिद्ध हो गई। अब वे सौगन्धपूर्वक बोले, हम संसार के लोक–व्यवहार से परे, गृह–त्यागी, तपोवन–वासी महात्मा हैं। अब हमें किसी के लिये मुँह देखी बात कहने की आवश्यकता ही नहीं है। वस्तुतः आज अब हमें पूर्ण कृत्कृत्यता का अनुभव हुआ है; क्योंकि आद्या शक्ति एवं जीवाचार्य संयुक्त भगवान श्रीराम, सीता, लक्ष्मण का दर्शन हमारे साधनों का सुफल था। उस फल से ही दिव्य फल की उत्पत्ति हो गई है। अब आज हमें भगवत्कृपा के फल से प्रेममूर्ति भरत तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ है। यह हमारे साधनों का फल नहीं है। हमारे साधनों में केवल भगवान तक पहुँचाने की क्षमता थी। इसके आगे वे निरूपाय थे। सत्य तो यह है कि रामदर्शन के सुफल ने तुम्हारा दर्शन सुलभ करा दिया। आज तुम्हारे श्रीचरण पड़ने से हमारा प्रयागराज धन्य हो गया। आप ही वह प्रेममूर्ति हैं, जो "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" कहे जाते हैं।'

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ।।
सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसन पावा ।।
तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभाग हमारा ।।

2/210/3-5

ऋषि भरद्वाज की वाणी में समस्त रामभक्त समुदाय प्रेम–सुधा के पान में आत्मविभोर हो

गया। इस प्रेम—सुधा के प्राकटय हेतु भरत रूपी गंभीर पयोधि का मंथन कृपा—सिंधु श्रीराम ने स्वयं सम्पन्न किया।

प्रेम अमिअ मंदर बिरहु, भरत पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपा सिंधु रघुबीर ।। 2/238

इस प्रकार श्रीरामचरित मानस के सार—तत्व पंचामृत— (1) कथामृत (2) नामरूपामृत (3) कृपामृत (4) प्रभुवचनामृत (5) प्रेमामृत के संक्षिप्त विवेचन का प्रस्तुतीकरण सम्पन्न हुआ। प्रभु—प्रसाद के पंचामृत में, दुग्ध, दधि, घृत, शर्करा, मधु ये पाँच तत्व समाहित होते हैं तथा इस पंचामृत में तुलसी—दल पड़ने पर प्रभु को ग्राह्य बन जाता है। श्रीरामचरित मानस के उक्त पंचामृत में इन तत्वों का निरूपण करके इस अध्याय का समापन —

पंचामृत के तत्व परत यहि विधि दर्शाई ।
कथा सबहिं को मूल, दुग्ध सम जानहु भाई ।।
नाम रूप यह युगल, मनहुँ दधि, घृत बनि आये ।
वचनामृत अरू कृपा शर्करा मधु सम छाये ।।
बिनु तुलसी जिमि भोग हरि, बनै नहीं हितकारिणी ।
तिमि प्रेमामृत जानिये, कह सुरेन्द्र रामायणी ।।

अध्याय - दस

प्रेमी भरत का स्वागत प्रभु श्रीराम से विशिष्ट

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।।

7/120/16

पूर्व अध्याय नौ में महर्षि भरद्वाज द्वारा व्यक्त उद्‌गार कि "हे भरत! श्रीराम दर्शन के सुफल ने हमें तुम्हारा दर्शन सुलभ करा दिया है" के आधार पर प्रेमीभक्त की महिमा भगवान से भी उत्कृष्ट निरूपित की गई है। तदनुसार अध्याय सात में समस्त प्रकृति को श्रीराम के प्राण प्रिय बन्धु प्रेममूर्ति श्रीभरत के स्वागत में पलक–पाँवड़े बिछाने का चित्रण किया गया है। अब यहाँ यह दर्शनीय है कि स्वयं भगवान् श्रीराम ने अपने दुलारे **"भरत सरिस प्रिय को जग माहीं"** 2/7/7 के स्वागतार्थ चित्रकूट में कैसी व्यवस्था प्रकट की है। श्री भरतागमन के पूर्व श्रीराम ने चित्रकूट में विवेक–नरेश के आधिपत्य में रामराज्य की पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी, जो प्रेम–साम्राज्य के अधीश्वर श्री भरत के स्वागतार्थ उत्कृष्ट स्तर पर सन्नद्ध हो गया। एक नरेश दूसरे नरेश का स्वागत कर रहा था। श्रीराम के मन की भावना यह थी कि यहाँ भरत को लेशमात्र कष्टप्रद वातावरण न दिखलाई पड़े, जिससे उसे ग्लानि हो कि मेरे आराध्य श्रीराम यहाँ वनवास का कष्ट भोग रहे हैं। अतः श्रीराम के स्वागत से भी विशिष्ट व्यवस्था श्रीभरत के स्वागत में दृष्टिगोचर हो रही थी। यथा श्रीराम के स्वागत में पाँच वनचर पशु (1) करि (हाथी) (2) केहरि (सिंह) (3) कपि (वानर) (4) कोल (बराह) (5)कुरंग (हिरण) थे ।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा । बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ।। **2/138/1**

किन्तु श्री भरत के स्वागतार्थ सात वनचर पशु (1)खगहा (2) करि (3)हरि (4) बाघ (5) बाराह (6)महिष (7) वृष उपस्थित कर दिये ।

खगहा करि हरि बाघ बराहा । देखि महिष बृष साज सराहा ।।
बयरू बिहाइ चरहिं एक संगा । जँह तँह मनहुँ सेन चतुरंगा ।। **2/236/3,4**

इसी भाँति श्रीराम के स्वागत में केवल 6 पक्षी (1) नीलकंठ (2) कलकंठ (कोयल) (3) शुक (4)चातक (5) चक्क (चकवा) (6) चकोर थे ।

नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर ।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, श्रवन सुखद चितचोर ।। 2/137

किन्तु श्री भरत के स्वागतार्थ संख्या वृद्धि करके आठ पक्षी (1) चक (2) चकोर (3) चातक (4) शुक (5) पिक (6) मराल (7) अलिगण (8) मोर उपस्थित हो गये ।

चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मंजु मराल मुदित मन ।।
अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ।। 2/236/6,7

श्रीराम के स्वागत में वृक्ष और लतायें पुष्प फल अर्पित कर रहे थे ।

फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना । मंजु बलित बर बेलि बिताना ।।
2/137/6

वहीं अब श्री भरत के लिए बेलि वृक्ष के साथ तृण तक प्रफुल्लित होकर स्वागत करने लगे।

बेलि बिटप तृन सफल सफूला । सब समाज मुद मंगल मूला ।। 2/236/8

रामशैल के इस शोभायमान स्वागत समारोह से श्री भरत की प्रेम–विभोरता सीमातीत हो गई।

भरत प्रेम तेहिं समय जस, तस कहि सकइ न सेषु ।
कबिहिं अगम जिमि ब्रह्म सुखु, अह मम मलिन जनेषु ।। 2/225

एवं

राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदयँ अति प्रेमु ।
तापस तप फलु पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ।। 2/236

प्रेम की परम स्थिति में नियम अपने आप समाप्त हो जाता है। प्रेम का उदय ही समस्त धर्मों के नियम से ऊपर उठ जाने पर होता है। उसमें प्रेमास्पद के लिए समग्र समर्पण होता है। अन्य के लिए कोई स्थान शेष नहीं रहता हैं। उसे तो देह की भी सुधि बुधि नहीं रहती है। अतः नियम का परिपालन कौन करे ? उसकी कोई चाह भी नहीं रहती। अतएव नियम अपने बंधन में उसे कैसे बॉध सकता है ?

परौं नरक, फल चारि सिसु, मीच डाकिनी खाउ ।
तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ ।। दोहावली 92

वेद विहित साधन सबै, सुनियत दायक फल चारि ।
राम प्रेम बिनु जानिबो, जैसे सर सरिता बिनु बारि ॥

इधर भरत मोक्ष पर्यन्त चारों फल से पूर्णतया निस्पृह होने से वेद, नियम–धर्म से परे प्रेम–विभोर पथ–संचलन कर रहे हैं।

जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ॥
2/234/6,7

उधर श्रीराम अपने सहचर अनुज लक्ष्मण के शंका–जनित रोष का समाधान करते हुए भरत के गुणगान में निमग्न हो गये। वे कहने लगे, 'लक्ष्मण ! ध्यान से सुनकर समझ लो कि भरत विधाता के प्रपंच में उत्पन्न नहीं हुआ है। ऐसा भ्राता सृष्टि में सुना ही नहीं गया है; फिर देखे जाने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। भरत को त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश के पद पर एक साथ प्रतिष्ठित कर दिया जावे, तो भी उसे राजमद स्पर्श कर नहीं सकता। जैसे अनंत क्षीर–समुद्र में काँजी में डूबी हुई सींक से छिड़की गई बूँदों से कोई विकार उत्पन्न होना असंभव है। वैसे ही भरत के हृदय में विकार उत्पन्न होना असंभव है। वैसे ही भरत के हृदय में विकार उत्पन्न करने में तो ब्रह्माण्ड के अधीश्वर का पद भी सक्षम नहीं है।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥
दोहा– भरतहिं होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ ॥ 2/231

विधि–प्रपंच के पाँचों तत्वों (छिति, जल, पावक, गगन, समीरा । 4/11/4) में विकार उत्पन्न हो जावे। जैसे दोपहर के प्रचंड सूर्य को अंधकार निगल ले। इस प्रकार तेज तत्व का अवसान हो जावे। अनंत आकाश बादल के एक टुकड़े में समा जावे। इस तरह आकाश तत्व का तिरोधान हो जावे। गोखुर के जल में वे अगस्त्य मुनि डूब जावे, जिन्होंने तीन चुल्लू में समस्त समुद्र का जल पी लिया था। इस प्रकार जल तत्व में परिवर्तन हो जावे। क्षमाशील पृथ्वी अपनी सहज क्षमा को छोड़कर पापीजन के लिए विदीर्ण हो जावे। इस प्रकार पृथ्वी तत्व अपना स्वरूप परिवर्तन कर दे। मच्छर की फूँक से सुमेरू पर्वत उड़ जावे। इस प्रकार वायु तत्व उद्वेलित हो जावे। फिर भी भरत को राजमद स्पर्श नहीं कर सकता।

शुचिता में पूज्य पिताजी की तथा बंधुत्व में लक्ष्मण तुम्हारी सौगंध खाकर मैं घोषणा करता हूँ कि भरत जैसा भाई न हुआ है, न है, और न होगा ।

तिमिर तरून तरनिहिं मकु गिलई । गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई ।।
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी । सहज छमा बरू छाँड़ै छोनी ।।
मसक फूँक मकु मेरू उड़ाई । होइ न नृपमदु भरतहिं भाई ।।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना ।।

2/232/1–4

आश्चर्य की बात तो यह हो गई कि भरताब्धि के मंथनकर्ता श्रीराम प्रेममूर्ति श्रीभरत के गुण–गण–गान में इतने प्रेम विभोर हो गये कि उस प्रेम–समुद्र में स्वयं डूब गये। आज एक समुद्र (कृपा सिंधु राम) को मंथन करते–करते श्रीभरत के प्रेम–पयोधि में मग्न देखा गया।

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ । प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ।।

2/232/8

इस अध्याय के प्रारंभिक अंश में प्रेममूर्ति भरत के स्वागतार्थ जड़, चेतन, अर्द्ध चेतन, पशु, पक्षी, लता, विटप, तृणादिक का चित्रण किया गया है। यह सत्य केवल त्रेतायुग का अपवाद नहीं है। आज भी यदि कोई अनन्य–प्रयोजन प्रेमी भक्त प्रभु–दर्शनार्थ चलता है, तो उससे सर्वथा अपरिचित जन भी पलक–पाँवड़े बिछाकर उसका स्वागत करते हैं। प्रेमावतार पंचरसाचार्य पद प्रतिष्ठित स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज के चतुर्धाम–यात्रा–पथ में सर्वत्र ऐसे अलौकिक दृश्य दृष्टिगोचर हुए हैं। आचार्य पादस्वामी जी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक सुधी पाठक निम्नांकित ग्रंथो का अनुशीलन करके लाभान्वित हो सकते हैं ।

(1) **चतुर्धाम यात्रा वृत्त :– लेखक** – श्री हरिगोविन्द द्विवेदी, साहित्याचार्य एवं एम.ए. हिन्दी एवं इंग्लिश, उपरहटी, रीवा, म.प्र.

(2) **श्रीरामहर्षण–लीला–पीयूष** :– पाँच खण्डों में प्रकाशित तथा छठवाँ खण्ड शीघ्र प्रकाश्य। **लेखक** – स्वनाम धन्य संत श्री अवध किशोर दास, पूर्व नाम "मानस–केशरी" पं. वाल्मीकि प्रसाद मिश्र, एम.ए., एम,एड, सेवानिवृत्त प्राचार्य शासकीय उच्च. माध्यमिक विद्यालय म.प्र.

(3) **प्रेमावतरण**:– दो खण्डों में प्रकाशित तथा तीसरा खंड प्रकाश्य, **लेखक** – श्री रसिकेश्वर

दास पूर्व नाम न्यायमूर्ति श्री आर.बी.दीक्षित, सेवानिवृत्त न्यायाधीश म.प्र. तथा अध्यक्ष न्यायाधिकरण छत्तीसगढ़

(4) **श्री सद्गुरू-भक्ति-योग** :– गुरूदेव का पद्यात्मक चरित्र–चित्रण, **लेखक** – संत प्रवर श्री श्यामसुंदर दास (श्रीरामजी)

(5) **श्री सद्गुरू-स्वरूपामृत** :– प्रेमावतार चैतन्य महाप्रभु के पुनः अवतरण की प्रामाणिक पृष्ठभूमि में आचार्य महाप्रभु का दर्शन, **लेखक** – श्री वैष्णवदास

(6) **भक्त चरितावली** :– तीन खण्डों में प्रकाशित । **लेखक** – श्री स्वामीशरण उपाध्याय (छप्पय छंद में श्री मधुर – भक्तमाल) उक्त चरितावली से वंदना का एक छप्पय ।

सुंदर सुभग स्वरूप, सुखद जैसे रघुनंदन ।
पावन परम पुनीत, प्रेम पूरण जगवंदन ।।
राम राम नित रटत, नाम मय रूप, रमे विभु ।
श्रवत मधुर प्रेमाश्रु, मनहुँ चैतन्य महाप्रभु ।।
(श्री) लक्ष्मी निधि अवतार जनु, जीवन के कल्याण हित ।
दास रामहर्षण प्रभु, प्रेममूर्ति सब जग बिदित ।।

संक्षिप्त जानकारी हेतु शाब्द ब्रह्म निष्णात, ब्रह्मनिष्ठ इन अवतारी महापुरूष के जीवन–वृत्त के कुछ विन्दु :–

(1) विशाल भाल पर जन्मजात ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक की तीन सुस्पष्ट रेखायें, जिससे इनका प्रथम नामकरण–संस्कार "तिलकधारी राम" हुआ। हाथ की आजानु–बाहु दसों उँगलियों में चक्र चिन्ह तथा दाहिने चरण के तलवे में आरपार करती हुई ऊर्ध्व–रेखा।

(2) शैशव से ही श्रीरामभक्ति तन्मयता, चित्त की आर्द्रता, करूणा, दया आदि स्थायी भाव। अनेक चमत्कारिक लीलायें।

(3) परमाकर्षक स्वरूप तथा विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न देखकर लीला–रसिक भक्तों, संतों ने जगजननी जानकीजी, जीवाचार्य लक्ष्मणजी तथा भगवान श्रीराम का लीला स्वरूप बनाकर कई वर्षों तक दर्शन, पूजन, वन्दन करके परमानंद प्राप्त किया।

(4) किशोरावस्था में विशेष प्रकार के वैष्णव–ज्वर से ग्रस्त, वैराग्य–जाग्रत हुआ। अतः एकाकी

ही बिना सम्बल–राशि एवं पाथेय–रहित ही श्री अयोध्या धाम की यात्रा पर प्रस्थित हुए। वहाँ श्रीसरयू–तट पर भगवद्–दर्शन। अंततः संत–भूषण श्री कौशल किशोर दास उन्हें समझा बुझाकर वापस लाये।

(5) अल्पायु से ही भगवान् श्रीराम के श्याल मैथिल–युवराज कुमार श्रीलक्ष्मीनिधि के भाव में तन्मयता। लीला स्वरूप जनकनंदिनी श्री जानकीजी द्वारा उन्हें अपने अग्रज भ्राता के रूप में मान्यता की अनेक चमत्कारिक घटनायें।

(6) अपनी आर्थिक परिस्थिति सुदृढ़ न होते हुए भी अपने घर की आर्थिक क्षमता से अधिक व्यय करके श्रीसीताराम विवाहोत्सव का प्रतिवर्ष आयोजन करके अपने भाव सम्बन्ध की परिपुष्टि की। इस विवाहोत्सव समैया में प्रतिवर्ष अनेक चमत्कारिक लीलायें होती रही हैं तथा अद्यावधि भक्तजन कृपानुभूतियों द्वारा आनंदलाभ कर रहे हैं। इस विषय में इस लेखक की पूर्व प्रकाशित पुस्तक **"पौंड़ी की श्रीसीताराम विवाहोत्सव समैया"** अवलोकनीय है।

(7) एक बार विशेष तन्मयता की अवस्था में प्रेममूर्ति श्रीभरत जी ने अष्टाक्षर शरणागति मंत्र "श्रीरामः शरणं मम" की एकान्तिक संकीर्तन स्वीकृति प्रदान की। श्री आचार्य–पाद के शरणागत शिष्य इस एकान्तिक संकीर्तन को भक्ति–पथ का पाथेय बनाकर परमानंद में निमग्न होते हैं ।

(8) सन् 1960 में अट्ठाइस दिन व्यापी "प्रेम–समाधि" में देह–दशा का भान भूलकर निरन्तर तैल धारावत् प्रेमाश्रुओं द्वारा करूणा वरूणालय प्रेमास्पद श्रीराम का ध्यान मग्न दशा में चिंतन, पूजन, आत्मसर्मपण किया। इसमें प्रेमी, प्रेमास्पद एवं प्रेम की त्रिपुटी का विलीनीकरण हुआ । चरणाश्रित शिष्य भक्तों ने आचार्यपाद की देह में स्थान–स्थान पर "राम" नाम अंकित देखा। प्रभु का वचन है कि मैं प्रेमी के एक प्रेमाश्रु में बिना मोल बिक जाता हूँ। फिर जिन प्रभु–प्रेमी के अनवरत असंख्य प्रेमाश्रु बहते रहे हैं, उनकी महिमा तो अनिर्वचनीय ही है।

भक्तन के जो प्रेम के आँसू, वाको मोल न तोल ।
इक दल तुलसी इक बूँद आँसू, मोहे भक्तन लीन्हो मोल ॥

(9) एक बार खजुहा के शिव–मंदिर में स्वप्नावस्था में भगवान् शिव ने विप्र वेश में दर्शन देकर

यह श्लोक उच्चारित किया ।

रामहर्षण इति ख्यातो रामचन्द्रस्य श्यालकः ।

ज्ञान वैराग्य प्रेमाढ्यो, भविष्यति कलौयुगे ।।

(10) सन् 1964 में पन्द्रह–दिवसीय "श्री प्रेमन्यज्ञ"– महानद सोन एवं पुण्य–सलिला महानदी के संगम पर स्थित मार्कण्डेय आश्रम में अपने प्रेमेच्छुक साधक शिष्य–गण के द्वारा प्रेमाश्रुओं की आहुतियों सें अभूतपूर्व प्रेम–यज्ञ सम्पन्न कराया गया; जिसके द्वारा प्रभु प्रेमियों को प्रेम रस का प्रशिक्षण दिया गया। यह अपने आपमें **"न भूतो न भविष्यति"** सिद्ध हैं।

(11) अक्टूबर 1997 में आचार्यपाद द्वारा पूर्वकाल में जप किये गये त्रयोदश्कोटि श्रीराम–महामंत्र के दशमांश का विराट महायज्ञ; जिसमें आचार्य महाप्रभु के कृपा–पात्र पन्द्रह सहस्त्र भावुक भक्त–गण कंठी–तिलक–सुशोभित, पीत वस्त्र धारी, करताल तथा अन्यान्य वाद्य–यंत्र धारण किये हुए अयोध्या–धाम की वीथियों में कीर्तनरत शोभित हुए। आठ सौ क्विंटल शाकल्य–हवन युक्त विराट् श्रीराम–महामंत्र महायज्ञ के संत–सम्मेलन में विश्व–हिन्दू–परिषद के अध्यक्ष छोटी छावनी के महन्त श्री नृत्यगोपालदासजी ने अपने उद्गार इन शब्दों में प्रकट किये थे–"श्री अवधवासी तो कृतार्थ रूप हैं ही, परन्तु इस यज्ञ ने तो उन कृतार्थों को भी कृतार्थ कर दिया। त्रेता में श्री भरत जी प्रेमावतार थे, कलियुग में श्रीस्वामी जी प्रेमावतार हैं। श्री स्वामी जी पंचरसाचार्य हैं। आचार्य के लक्षणों में "शाब्दे परे च निष्णातः" कहा गया है। शब्द ब्रह्म में निष्णातकत्व उनके द्वारा प्रणीत ग्रंथो में देखा जा सकता है। परब्रह्म की निष्णातता के वे स्वयं प्रकट विग्रह हैं।"

(12) अमूल्य भक्ति–साहित्य–सृजन द्वारा प्रभु–प्रेम–भक्ति प्राप्त करने के इच्छुक जिज्ञासु साधकों को गंतव्य–पथ–प्रदर्शन किया।

(क) **श्री प्रेम रामायण महाप्रबन्ध काव्य :–** मैथिल युवराज श्रीलक्ष्मी–निधि का समग्र जीवन वृत्त जिसमें अनेक ज्ञाताज्ञात लीलाओं का साहित्यिक रूप में प्रकटीकरण हूआ, जिनके पाठ से साधकों में प्रेम–रस में तल्लीनता, प्रेम–विभोरता प्रत्यक्ष देखी जाती है।

(ख) **श्री सिद्धि-स्वरूप-वैभव :–** श्रीराम–प्रेम की सिद्धावस्था–स्वरूप मैथिल युवराज्ञी

श्रीसिद्धि कुँवरि के जीवन वृत्त का शताधिक दृश्यों में वर्णित महानाटक, जिसका रसमय अभिनय कटनी जिला अंतर्गत विजयराघवगढ़ में कन्या पाठशाला की छात्राओं द्वारा प्रशंसनीय रूप में सम्पन्न हुआ।

(ग) **गीति काव्यः-** विनय-वल्लरी, विरह-वल्लरी, प्रेम-वल्लरी आदि जिनमें सीताराम-रसानुभूति हेतु उपासना परक गेय गीतों का संग्रह है।

(घ) **लीला-सुधा-सिंधुः-** समग्र भगवल्लीलाओं से सम्बन्धित प्रायः सोलह सौ गेय पदों का अनुपम गीति-काव्य।

(ड.) **रस-चंद्रिकाः-** रस-प्राप्ति की विधि का सिद्धान्त-ग्रंथ जिसमें विशेष रूप से मैथिल-सख्य-रस का निरूपण किया गया है।

(च) **चिदाकाश की चिन्मयी लीलाः-** श्रीसीताराम की अनेक गुप्त प्रकट-लीलाओं का औपन्यासिक विधि से चित्रण।

(छ) **प्रस्थान-त्रयी के रूप में दार्शनिक ग्रंथों के व्याख्या-ग्रंथः-** औपनिषद-ब्रह्म बोध, वेदान्त-दर्शन, गीता-ज्ञान, प्रपत्ति-दर्शन, विशुद्ध ब्रह्म-बोध, रस विज्ञान एवं आत्म-विश्लेषण, आदि। इस सम्बन्ध में डॉ. श्रीकृष्ण उपाध्याय पूर्व रीडर हिन्दी-विभाग साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय अयोध्या अपने श्रीप्रेम-रामायण भाष्य-ग्रंथ में लिखते हैं।

प्रेम रामायण रचकर, प्रस्थान त्रयी का भाष्य ।
प्रेम रस आस्वाद हित, तुलसी हर्षणदास ।।

(ज) **पद्य-काव्यः-** 1. हर्षण-सतसई (सात सौ दोहों का नीति काव्य) 2. मिथिला-माधुरी (मिथिला धाम दर्शन एवं महिमा) 3. प्रेम-प्रभा (श्याल-भाम संवाद के रूप में प्रेम वार्ता) 4. श्रीसीता जन्म-प्रकाश (श्री मिथिलाधिराज नंदिनी के प्राकट्य का काव्य-नाटक) 5. राम राज्य (पद्य-गद्य मय दृश्य काव्य) आदि।

(झ) **वैष्णवीय-विज्ञानः-** वैष्णव शरणापन्न जन के लिए वैष्णव-धर्म-सिद्धान्त निरूपित करते हुए समग्र स्मृति-शास्त्र।

(इ) **वैदेही-दर्शनः-** गद्य-प्रबन्ध में सीता-तत्व का निरूपण।

(ट) **उपासना-ग्रंथः**– ध्यान वल्लरी, लीला–विलास एवं श्रीसीताराम–विवाहाष्टक (संस्कृत श्लोक) आदि।

(ठ) **नित्य पाठ हेतु साधना-स्तोत्र एवं ग्रंथः**– 1. प्रपत्ति–प्रभा–स्तोत्र 2. पंच– शतक 3. आत्मरामायण 4. उपदेशामृत 5. सिद्धि सदन की अष्टयामीय सेवा 6. श्रीलक्ष्मी निधि–निकुंज की अष्टयामीय सेवा आदि ।

उक्त ग्रंथ–सूची से यह स्वयं–सिद्ध है कि साहित्य–सृष्टा आचार्य–महाप्रभु ने साहित्य की समस्त विधाओं में काव्य–रचना द्वारा हमारे दर्शनाचार्यों एवं महाकवियों द्वारा निर्धारित पथ को पूर्ण रूप से प्रशस्त किया है। उधर अपनी प्रेममयी रहनि से मानव–मात्र में चैतन्य महाप्रभु की भाँति प्रेम–ज्योति जाग्रत की है। अतः संत श्रीअवधकिशोरदास द्वारा रचित मैथिल–माधुरी ग्रंथ के अन्तर्गत श्रीहर्षण–चालीसा में सहज स्वाभाविक सिद्ध उक्ति अवलोकनीय है।

तुलसी रामानँद चैतन्या। एकहिं वपु प्रगटे जनु धन्या ।।

साथ ही उन्हीं संत द्वारा रचित रजत–सिंहासनासीन महाप्रभु की विरूदावली भी मननीय है।

जगद्गुरू श्रीमद्रामानंदाचार्य-कुल-कमल दिवाकराः, श्रीमद् योगानन्दाचार्य - हंसवंशावतंसाः, वैष्णव धर्मधुरा धौरेयाः, वैष्णवाब्जवरवंश भास्कराः, प्रपन्नार्ति विदारकाः, भगवद् रस-रसिक-शेखराः, श्रीमन्मैथिल-सख्य रसाचार्याः, निखिल वेद-वेदान्त-सार संवलित हृदयाः, एवं प्रेमरामायण महाकाव्य कर्तारः, वैष्णवीय विज्ञान, प्रपत्ति-दर्शन प्रपत्ति-प्रभा प्रभृति ग्रंथानां रचना काराः, यम-नियम आसन-प्राणायाम परायणा, योगिराट् यतिराट् प्रेम-सुधा सरसांग-यष्टिः, पंचरसाचार्याः, अयोध्यायाः अभिनव वाशिष्ठ-पद वाच्याः, श्रीमदखिलेश्वर पाद वशंवदाः, अनंत श्रीमंडिताः स्वामी रामहर्षण देवाचार्याः विजयन्तेतराम्।

विजयी भव, विजयी भव, विजयी भव ।

इन अलौकिक अवतारी महापुरूष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के उपरान्त अब श्रीहरि गोविन्ददास द्विवेदी लिखित आचार्य महाप्रभु के चतुर्धाम यात्रा–वृत्त से कतिपय असामान्य घटनाओं का अवलोकन करें।

(1) श्री वैधनाथ धाम में एक लोभग्रस्त पंडा श्री बसंतराम पर ऐसी अनुपम कृपाद्रष्टि डाली कि वे गद्गद् कंठ से बोल उठे "श्रीमान ने मेरी आँखो पर पड़ा लोभ का पर्दा खोल दिया है।

मुझे सब कुछ मिल गया है। अब कुछ भी नहीं चाहिये। कृपया मेरे सिर पर अपना हाथ रख दीजिये।" ऐसा कहकर वे फूटफूटकर रोए।

(2) खडगपुर रेलवे स्टेशन के यात्री प्रतीक्षालय में एक मद्रासी युवक भावविभोर होकर आचार्य का दर्शन कर रहा था उसे कभी श्रीराम, कभी श्रीसीता, कभी श्रीकृष्ण, कभी श्रीहनुमान, कभी श्रीगणेश, कभी श्रीरामकृष्ण परमहंस, कभी श्रीचैतन्य महाप्रभु, आदि नाना रूपों के इनमें दर्शन हुए। तब उसने श्री द्विवेदीजी से पूछा कि "ये, या तो कोई देव हैं, या कोई जादूगर हैं ? कौन हैं ये ? तब द्विवेदीजी ने गुरूदेव का परिचय दिया। उसने साष्टांग दण्डवत् प्रणिपात किया। वार्ता अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हुई थी।

(3) श्री जगन्नाथ धाम के गरूड़ स्तम्भ पर प्रेमोद्रेक से मूर्च्छाग्रस्त हो गये। सेवकों द्वारा अथक–प्रयास करने पर भी उनकी दशा में परिवर्तन न हो रहा था। तब एक छह–सात वर्ष का श्याम–वर्ण बालक सेवारत हुआ। उसने प्रभु को प्रेम–समाधि से जाग्रत किया। जागने पर प्रभु बालक की भाँति प्रसाद के लिए मचल पड़े। बाल भगवान् ने अंदर से लाकर अपने हाथ से प्रसाद पवाया। समग्र मंदिर में भ्रमण कराकर दर्शन करवाये फिर उस बालक का कहीं पता नहीं चला। स्पष्ट था कि श्रीजगन्नाथ स्वामी ही बालक रूप धारण कर सेवारत हुए थे। पुनः इसी धाम में समुद्र तट पर संत श्रीहरिदासजी की समाधि पर बँगाली भक्त–समुदाय ने साक्षात् चैतन्य महाप्रभु के रूप में दर्शन किये। वे यही पुकारते रहे कि हमारे महाप्रभु आ गये हैं। चरणों से लिपटे रहे। बड़ी कठिनाई से सेवकद्वय उन्हें बाहर ला पाये। बंगाली भक्त रोते रह गये।

(4) श्रीमीनाक्षी देवी मंदिर में दर्शन का समय व्यतीत हो चुका था। सब दर्शकगण चले गये थे। प्रभु अपनी भाव सम्बन्धी बहिन देवी के दर्शनार्थ चलते गये। अतिकाल हो जाने पर भी पुजारी प्रतीक्षारत रहा। इन्हें देखते ही अंदर गर्भ–गृह में देवी के पास ले जाकर केशर मिश्रित चंदन, इत्र, तुलसी सुगंधित पुष्पहार से विधिपूर्वक स्वागत किया। देवी का चरणामृत नहीं दिया, क्योंकि अनुजा ने अपने अग्रज को चरणामृत देना उचित नहीं समझा। स्पष्ट है कि श्रीमीनाक्षी देवी अपने अग्रज के स्वागतार्थ पुजारी के हृदय में तदनुरूप भाव जागृत कर रही थीं।

(5) आचार्य महाप्रभु तिरूपति बालाजी मंदिर में श्रीव्यंकटेश भगवान् के दर्शन के लिए टिकिट

लेकर पंक्तिबद्ध खड़े होकर प्रतीक्षारत नहीं हुए। पास के श्रीनृसिंह भगवान् के मंदिर में जाकर जप करने लगे। एक धर्मशाला–निर्माण में प्रयत्नशील श्रेष्ठी को रात्रि में स्वप्न हुआ कि कल एक प्रेमी संत अश्रु बहाते हुए जप करते मिलेंगे। उन्हें ससम्मान श्रीव्यंकटेश भगवान् के दर्शन करवाना तथा उनके श्रीचरण धर्मशाला में पधराना तो धर्मशाला–निर्माण–कार्य पूरा हो जावेगा। निदान, वह व्यक्ति खोज करते हुए पहुँचा। स्वप्न में वर्णित प्रेमी संत को पाकर उसने तदनुसार व्यवस्था की। महाप्रभु के प्रेम–नेम की रक्षा भी हो गई तथा प्रभु–विधान से धर्मशाला–निर्माण श्रीचरण कृपा से पूर्ण हो गया।

(6) पण्डरपुर मंदिर के वयोवृद्ध महन्त श्रीभजनदास ने आचार्य श्री के सेवारत युगल शिष्यों की निष्ठा देखकर प्रार्थना किया कि हमारे मंदिर में उत्तराधिकारी बनाने को अपना एक शिष्य प्रदान कीजिये। प्रभु ने कहा– "इनमें से जो उत्तराधिकारी बनना चाहे, उसे आप ले जाइये।" प्रभु की सेवा छोड़कर कोई शिष्य महान्त बनने को तैयार नहीं हुआ। विशाल सम्पत्ति का प्रलोभन उन्हें कर्त्तव्यपथ से डिगा न सका।

वहीं श्री पांडुरंग मंदिर में आचार्य श्री समाधिस्थ दशा में विराजे थे । चित्रकूट बड़ी गुफा श्रीजानकी कुंड के प्रख्यात सिद्ध संत महात्मा श्रीरणछोड़दासजी (जिनके समृद्ध गुजराती शिष्यों ने चित्रकूट में विशाल नेत्र–चिकित्सालय का निर्माण कराकर प्रतिवर्ष विराट नेत्र–यज्ञ करके सहसों जनों को नेत्र–दान का पुण्य लाभ किया है) ने समाधिस्थ आचार्य महाप्रभु का दर्शन किया। उनकी समाधि भंग न करके भूमिष्ठ होकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

(7) मुम्बई के श्रीमुम्बा देवी मंदिर के पुजारी को देवी ने स्वप्न में आदेश दिया कि कल मेरे अग्रज–बंधु प्रेमी संतवेश में आवेंगे उनका समुचित सम्मान–सत्कार करना। अतः वे प्रतीक्षारत रहे। आचार्य प्रभु को देखते ही जगमोहन में पाठरत सभी पंडितों ने खड़े होकर स्वस्ति वाचन किया। पुजारी ने गर्भगृह में ले जाकर स्वागत किया। श्रीमुम्बा देवी ने पुष्प–माल गिराई। पुजारी ने प्रसाद माल पहिराई ।

(8) श्रीद्वारिका पुरी में भी जगन्नाथ–धाम की भाँति ही छः सात वर्ष के पीताम्बरधारी बाल–भगवान् प्रकट हुए। आचार्य प्रभु के पहुँचते ही अनायास कहीं से पहुँचकर सेवारत हो जाते थे। तीनों पुजारी चंदन, इत्र, माला, प्रसाद से स्वागत् करते थे। मंदिर का प्रहरी

अपनी विनोद वार्ता से आचार्य श्री का मनोरंजन करता था। नापित ने बड़ी प्रेमनिष्ठा पूर्वक क्षौर–कर्म की सेवा सम्पन्न की। श्रीरूक्मिणी देवी मंदिर में जाने पर पर्दा बार–बार गिर जाता था। देवी मान लीला कर रहीं थीं । उनके अग्रज तीसरे दिन उनके यहाँ आये थे। अतः वे रूठी थीं। पुजारी ने बतलाया कि देवी ने उनसे स्वप्न में इस रहस्य से अवगत कराया है। अतः आप उनके पास जाकर उन्हें मना लीजिये। आचार्य श्री भेंट लेकर अंदर गये। श्रीरूक्मिणी जी के श्रीविग्रह से लिपटकर फूट–फूटकर रोये। श्रीद्वारिका धाम में ही एक भगवत्कृपा–पात्रा वृद्धा माताजी से आचार्य प्रभु का अनुपम प्रेम–मिलन सत्संग हुआ, जिसमें मानस की श्रीहनुमान–विभीषण–मिलन की स्थिति साकार हुई।

एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा । पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा ।। 5/8/2

(9) वेट द्वारिका के मार्ग में ओखा स्टेशन पर टिकट संग्राहक ने रेलवे पास में मार्ग वैभिन्न्य कहकर आपत्ति की। जब आचार्य श्री ने पहुँचकर सीताराम–सीताराम कहा तो दर्शन पाते ही उसने श्रद्धा–विभोर होकर कक्ष में ले जाकर आसन पर विराजमान किया। पुनः दर्शन देने की प्रार्थना की। वापसी–यात्रा में पुनः स्वागत कर निवेदन किया कि "मेरे पूर्वजन्म के सुकृत से ही मेरी इस स्टेशन पर पदस्थापना हुई है, जिससे आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हुआ।"

वेट द्वारिका में एक माताजी प्रभु के चरणों से लिपट गई। विनयपूर्वक अपनी बहिन के मंदिर में ले जाकर उनसे कहा "भगवान पधार गये हैं। पुत्र–शोक का रोदन संताप भूलकर स्वागत करो।" तदनुसार स्वागत हुआ।

(10) श्री गोवर्धन गिरि–परिक्रमा में आँधी–तूफान ने घेर लिया। घोर अंधकार में सचमुच जहाँ कोई नहीं था, वहाँ भी थोड़ी–थोड़ी दूर पर लालटेन–युक्त पुरूष प्रकट होकर अपने प्रकाश से मार्ग प्रदर्शित करता रहा। मयूर–कुटीर बरसाने में आचार्य महाप्रभु की प्रेम–समाधि लग गई। सीताराम नाम संकीर्तन से जागृत नहीं हुए। एक संत ने पहुँचकर कहा कि यह चैतन्य महाप्रभु का आवेश है। उनके इष्ट श्रीकृष्ण नाम का कीर्तन करो। तदनुसार श्रीकृष्ण नामध्वनि करने पर ही प्रभु जाग्रत हुए। बरसाना में ही महान्त जी ने बतलाया कि ललीजू ने मुझे स्वप्न में बतलाया था कि मेरे अग्रज आवेंगे। तदनुसार स्वागत किया गया। ग्रामवासियों ने श्यामा–श्याम की लीलाओं के पद रसिया सुनाकर

मंत्रमुग्ध कर दिया ।

(11) नंदगाँव के प्रेम सरोवर में जल का स्पर्श करते ही आचार्य श्री मूर्च्छित होकर जल में जा गिरे। धूप तेज थी। दोनों सेवक उठाकर कहीं ले जाने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे। तब एक अनजान व्यक्ति आया और अपनी पीठ पर रखकर सुरक्षित स्थान में ले गया। उसने अपना नाम हनुमान बतलाया।

(12) श्री वृन्दावनधाम में श्री बाँके बिहारी जी के मंदिर में बड़ी भीड़ होने से दर्शन नहीं हो पा रहे थे। तब पुजारी ने स्वयं आकर प्रभु को गर्भ–गृह के द्वार पर ले जाकर दर्शन करवाये। बिना परिचय के ही अज्ञात आकर्षण से पुजारी के माध्यम से श्री बाँके बिहारी जी ने ही अपने दर्शन सुलभ करवाये।

वहीं इसी धाम में श्रीकृष्णचंद्र अपनी माखन चोरी लीला में माखन चोरी करते–करते आचार्य श्री को देखते ही आकर उनकी गोद में बैठ गये। अपने हाथ से माखन मिश्री खिलाई तथा विनोदस्वरूप मुँह पर भी लपेट कर हँसते हुए मंच पर चले गये। वहीं एक संन्यासी महात्मा निर्विकारानन्द ने शिष्यवत् प्रभु की सेवा की।

श्रीवृन्दावन से वापसी में स्टेशन पर स्टेशन मास्टर ने स्वागत किया। वहीं एक विद्वान पंडित ने अपनी जिज्ञासाओं के समुचित समाधान पाकर हार्दिक निष्ठा प्रकट की। बिछुड़ते समय संक्षिप्त मिलन में ही उनकी ऐसी विरह निमग्न दशा थी, मानों जन्म जन्मातर का साथ छूटा जा रहा था। इसी समय एक मुसलमान नवयुवक अज्ञात आकर्षण से चरणों में गिरा। उसका विवरण इसी अध्याय के अंतिम भाग में कुछ विस्तार से लिखा जावेगा।

(13) श्री ऋषिकेश धाम में प्रातःकाल आचार्य श्री शौच हेतु लोटा लेकर जा रहे थे। अचानक गंगाजी में एक विलक्षण शब्द हुआ। उन्होंने देखा कि जल के मध्य एक विशाल आकार का अरूण कमल खिला हुआ है। कमल के मध्य नीलाम्बुद विनिन्दक वर्ण की एक चतुर्भुज मानवाकृति बिराजी थी। लोकोत्तर आभामंडित चतुर्भुज भगवान देखते ही देखते द्विभुज भुवनाभिराम श्रीरामजी के रूप में दर्शन देने लगे। आचार्य श्री स्तम्भित होकर किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में खड़े रहे। कालान्तर में वह नीलमणि आभा वातावरण में परिव्याप्त हो गई। एक अपूर्व मादकता के प्रभाव से वे मंत्रमुग्ध सामने स्थित शिला पर

बैठ गये। जब अतिकाल तक प्रभु नहीं लौटै। तो खोजते हुए द्विवेदीजी ने उन्मन, शांत, विगत स्मृति दशा में उस शिला पर बैठे हुए देख महाप्रभु को इस समाधि से प्रकृतिस्थ करने के लिए संकीर्तन का आश्रय लिया। तब एक संत ने आकर प्रभु को समाधि से विरत किया।

(14) श्री बद्रीनाथ धाम के मार्ग में एक नवविवाहिता अनुपम सुंदरी किशोरी ने आचार्य श्री को अपने अग्रज बन्धु के रूप में देखकर रूदन प्रारंभ कर दिया। मानों दो चिरपरिचित एवं चिरस्नेही हृदय मिलन के लिए उत्कंठित एवं उद्वेलित हो रहे थे। महाप्रभु ने अपने दोनों कर कमल उस सौभाग्यशालिनी भगिनी के सिर पर रख दिये और अधैर्य से रो पड़े एक अनुजा के प्रति अग्रज के स्नेह भाव से। नारियल प्रसाद देकर भगिनी को बिदा किया।

(15) जोशीमठ से आगे जाने पर पगडंडी मार्ग की मिट्‌टी नीचे फिसल गई थी। मात्र 6 इंच चौड़ा रास्ता निकलने को बचा था। यहाँ पैर रखने को भी पर्याप्त स्थान नहीं था। दाई ओर ऊँचा पर्वत जिसमें कुछ पकड़ने को सहारा नहीं था। बाई ओर हजारों फीट की गहराई, जहाँ अलकनंदा प्रवाहित हो रही थी। लगभग डेढ़ मीटर लम्बे और 6 इंच चौड़े मार्ग को पार करने की असमंजसमयी समस्या थी। ऐसा लगता था कि पैर रखते ही वह 6 इंच की मिट्‌टी भी फिसल जावेगी और हजारों फीट नीचे गिरा देगी। भयावह दुरभिसंधि की स्थिति थी। अनायास लम्बे चौड़े शरीर के दो व्यक्ति आगे की ओर से आकर उपस्थित हो गये, जबकि उस मार्ग में कोई व्यक्ति कहीं से आ जा नहीं रहा था। उन्होंने हाथ बढ़ाकर आचार्य श्री तथा दोनों सेवकों को विकट मार्ग पार करवाया। उन्होंने कहा "हम तो कहीं और ही जा रहे थे। पता नहीं किसकी प्रबल–प्रेरणा हमें अचानक और अनचाहे यहॉ खींच लाई है। यह रास्ता बंद है। खतरे का सूचना–पट भी लगा है। पर फिर भी न जाने इधर हम क्यों चले आये। यह कुछ न कुछ महाराजजी की ही करामात लगती है। महाराजजी कुछ इनाम देने को कह रहे हैं तो हमें आप भवसागर से पार कर दें।"

(16) श्री बद्रीनाथ धाम में भी जब भीड़ के कारण दर्शन में गतिरोध था, तो एक महात्मा ने प्रभु को अंदर ले जाकर दर्शन की सुव्यवस्था की। मंदिर के अर्चकों ने पुष्पमाला, तुलसी, इत्र आदि के द्वारा स्वागत किया।

(17) श्री बद्रीनाथ धाम के तप्तकुंड में स्नान करते समय प्रभु की भावविभोर दशा देखकर भारत के सुविख्यात संत, एक सौ आठ खंडों में भागवती कथा के लेखक श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी अत्यंत प्रभावित होकर कहने लगे, "ये अद्भुत प्रेममूर्ति हैं; जो अर्घ्यदानार्थ जल तर्पण कर रहे हैं या ऑसुओं से तर्पण कर रहे हैं। यह समझ में नहीं आता।"

(18) पूर्व में वर्णित श्री वृन्दावन धाम स्टेशन पर जब आचार्यश्री एक शास्त्री पंडित की जिज्ञासा के समाधान में सदुपदेश कर रहे थे, तो थोड़ी दूर पर खड़ा एक मुसलमान नवयुवक ध्यान से प्रभु की वाणी को श्रवण कर रहा था। ट्रेन आने पर जिस डिब्बे में प्रभु को लेकर सेवकद्वय चढ़े; उसी में अधिकांश श्रोतागण भी चढ़ गये। वह मुसलमान नवयुवक भी मंत्र–कीलित सदृश वहॉ पहुँचकर खड़ा हो गया। वह निर्निमेष दृगों से आचार्य श्री के मुखमंडल की ओर देख रहा था। उसे बैठने को भी कहा गया किन्तु वह खड़ा ही रहा। तब स्वामी जी महाराज ने कहा–"आप लोग इतने कष्ट से खड़े हैं। क्या दूसरे डिब्बों में भी इसी प्रकार का स्थानाभाव हैं ?" वह नवयुवक बोला– "नहीं सरकार, जगह तो है पर वहाँ आप नहीं हैं।" वह सीट पर न बैठकर सरकार के श्रीचरणों के समीप नीचे बैठ गया। सरकार ने कहा–"आप यहाँ नीचे हमारे पास बैठने का कष्ट क्यों कर रहे हो। हम तो साधु हैं। हमारे पास आपको क्या मिलता है?" वह बोला–"मालिक; मैं अर्ज करू ? मुझे एक गजब का अजीबो–गरीब मजा आ रहा है, जिससे मैं खुद ही वाकिफ नहीं हूँ। मुझे जाना तो दूसरी ओर था, मगर आपकी वजह से इस तरफ चला आया। इनसानी मजहब तथा पैगम्बर, पीर, मौलवी, फकीर और संत सब एक ही हैं। गर्चे ऐसा नहीं होता, तो हमारे रसखान, रहीम खुसरो और मियाँ काले खाँ वगैरह क्यों आपके श्यामसुंदर की ओर मुड़कर, अपनी सारी जिन्दगी निसार कर जाते। संत और फकीरों का कोई मजहब नहीं होता। सभी मजहब उनके होते हैं। सभी इंसान उनकी नजर में एक होते हैं। वे सभी के और सभी उनके होते हैं। उनका एक खुदाई नजरिया अलग ही होता है।" आचार्य महाप्रभु ने कहा–"अरे भाई, हम तो कोई साधु और फकीर नहीं हैं। हाँ साधुओं का बाना अवश्य धारण कर लिया है। पर कुछ है नहीं हमारे पास। यदि आपको कुछ लग रहा हो, तो वह आपका नजरिया है।" नवयुवक बोला– "वाह, सरकार, वाह, यह तो अच्छी जर्रेनवाजी है। फकीर चाहें तो जर्रे को पहाड़ बना दे सकते हैं। लेकिन हुजूर मेरी नजरों से छिप नहीं पा रहे हैं आप। जरा गुस्ताखी माफ फरमायेंगे

लगता है पैगम्बर हुजूर या खुद ही खुदा हैं ।
दुनियाबी इंसानियत से आप दिखते जुदा हैं ।।
उस नूर का नजारा यूँ कुछ आता नजर है ।
तारों से आफताब जुदा दिखता फजर है ।।
एक करिश्मा-सा करामात सी कुछ है हुजूर में ।
दीदार करके लगा नशे में हूँ चूर मैं ।।
गुजारिश है असलियत को न पोशीदा बनाइये ।
नजरों में आ गये हैं तो नजरें मिलाइये ।।

आप जैसे फकीर साधुओं का मिलना किशमत से नहीं, वरन् उस परवरदिगार की नेक नजरी से होता है। मैं आप पर निसार हूँ। खुदा पाक से मेरी मुहोब्बत हो सके, बस यही दुआ हुजूर से चाहता हुँ।" उसे लौंग, इलायची और इत्र प्रसाद प्रदान कर सरकार की श्री मुख वाणी प्रस्फुटित हुई।

भइया, परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य एक विशेष कृति है; जिसे आपलोगों की भाषा में "असरफुल्मक्लूकात" कहते हैं। इस मानव चेतन का प्रमुख कर्तव्य या जीवन का परम और चरम लक्ष्य परमात्म-प्राप्ति है और यह प्रेम-प्राप्ति प्रेम-मार्ग से सर्वोत्तम है एक जागतिक प्रेम और दूसरा परमात्म-प्रेम कहलाता है। जिसे आप लोगों की फारसी भाषा में इश्क-मजाजी और इश्क-हकीकी कहते हैं। यह प्रेम-पंथ बड़ा ही कठिन है। आपके ही किसी शायर ने इस शेर के माध्यम से सचेत किया है।

इश्क वह शै है न कोई बात इससे करे ।
संखिया खा के मरे न जुबाँ पर इसको धरे ।।

इतना ही नहीं किसी ने इन प्रेमियों की बेरहम मौत पर बहुत दूर तक चिन्ता करते हुए सावधान किया है। उसने प्रेमीशलभ (पतिंगे) का उदाहरण प्रस्तुत किया है और कहा है कि मधुमक्खी को वाटिका में नहीं जाने देना, अन्यथा वह पुष्प-पराग कणों को लेकर मधु बनायेगी और उसी से मोम बनेगी तथा मोमबत्ती के जलने पर रूप का प्रेमी पतिंगा उस पर गिरेगा और इस प्रकार उस बेचारे की करूण दुर्दशा पूर्ण मृत्यु हो जावेगी।

मगज को जाने न देना बाग में, कि नाहक खून परवाने का होगा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रेम का मूल्य है त्याग और वह भी प्यारे प्राणों तक का; और वह भी हँसते हँसते। हमें प्रसन्नता है कि जिस वय में लोग संसार के वैषयिक आकर्षण में फँसते हैं। आपका रूझान परमात्म–प्रेम की ओर है। उनकी कृपा का भरोसा करो। उन पर भरोसा रखनेवालों का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

फानूस बनके जिसकी हिफाजत हवा करे ।
वह शमा क्या बुझे जिसे रौशन खुदा करे ।।

वह नवयुवक इन शब्दों से आभार प्रकट कर नतमस्तक होकर खो गया ।

इस रहमते दुआ से मैं आबाद रहूँगा ।
मालिक तुम्हें हमेशा मैं याद करूँगा ।।

(19) ऋषिकेश में श्रीमनोकामना हनुमान से आचार्य श्री की प्रार्थना से अध्याय का समापन ।

प्रतिक्षण अभिराम छबि–छटा नवनवायमान
नवलघन–दामिनि द्युति दमन सियराम की ।
मंड़ित मणि मौरी–मौर सेहरा ब्याह भूषण पट
कोटि, रबि चंद्र प्रभा दलन सुख धाम की ।।
देत मणि मंडप में मिथिला के भाँवरि दोऊ
शोभा अनूप रूप निन्दनि रति काम की ।
लक्ष्मीनिधि भावलली लालकर लावा देत
"हर्षण" बसै झाँकी उरभगिनी और भाम की ।।

अध्याय - ग्यारह

प्रेमी एवं प्रेमास्पद का दिव्य मिलन

अरबरात मिलिबे कहँ निसि दिन
मिलेहिं रहत मानों कबहुँ मिले ना ।
"भगवत-रसिक" रसिक की बातें
रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना ।।

भगवत–रसिक

पूर्व अध्याय दस में यह चित्रित किया गया है कि स्वयं भगवान श्रीराम ने अपने दुलारे भरत के स्वागतार्थ चित्रकूट में विवेक–नरेश के आधिपत्य में रामराज्य की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करके विशेष उत्कृष्ट स्तर पर अभिनंदन करवाया था। इससे अभिभूत होकर प्रेम विह्वल दशा में भरत के हृदय से चार मनोभाव विसर्जित हो गये। हर्ष, शोक, सुख और दुख के वे द्वन्द्वात्मक भाव, जिनसे जीव विवश होकर ब्रह्म से पृथक सत्ता पाता है, उनसे मुक्त होकर श्रीभरत ब्रह्म के समरूप बन गये। यह तुरीयावस्था है।

सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ।।

2/240/1

विनय–पत्रिका में ब्रह्म–मिलन की इस दशा का वर्णन है। इस दशा में शोक, मोह, भय, हर्ष, दिनरात और देशकाल नहीं रह जाते। एक सच्चिदानंद घन परमात्मा ही रह जाता है।

सोक, मोह, भय, हरष, दिवसनिसि, देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन, संसय निर्मूल न जाहीं ।।

पद 167/5

भगवान् का विरद है कि मेरा भक्त जिस भाव से मेरी शरण ग्रहण करता है, मैं भी उसी भाव से उसे ग्रहण करता हूँ। श्री मद्भगवतगीता में उनका उद्घोष है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम् । 4/11

अस्तु भगवान् श्री राम भी चार वस्तुयें–पट, निषंग, धनु, तीर का समर्पण कर अधीर होकर प्रेमी भरत से भेंट करने को दौड़ पड़े ।

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ।।

2/240/8

समर्पण की यह समरूपता अक्षरशः परिलक्षित हुई है। हरष और निषंग में तीन तीन अक्षर हैं; जबकि शोक, सुख, दुख में दो दो अक्षर की वस्तुयें ही गिराई गई हैं। इतना ही नहीं निषंग, धनु, तीरा आदि अस्त्र शस्त्र त्याग कर भगवान् ने भक्त के सामने हथियार डाल दिये हैं। साथ ही पट त्याग कर निरावरण दर्शन दे रहे हैं। वे नहीं चाहते कि हम दोनों भाइयों के हृदय–मिलन में वस्त्र भी व्यवधान बनें। हृदय से हृदय का सीधे आलिंगन हो। वैसे अधीरता अवगुण है। धैर्य का विलोम है। पर प्रेमक्षेत्र में परम पावन बनाने वाला गुण है। यथा अहिल्योद्धार में–

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही ।

1/211/छंद.3

अतः भगवान भी भक्त के प्रेम में ऐसे ही अधीर बन जाते हैं। भक्त और भगवान के मिलनकाल में तो अंतःकरण–चतुष्टय का भी विलीनीकरण हो गया। ब्रह्म जीव का पूर्ण योग हो गया। अन्तर्मुखी दृष्टि होने पर "योगश्चित्त वृत्ति निरोधः" की सिद्धि होती है। यहाँ प्रेमाद्वैत दशा है, जिसमें मन, बुद्धि, चित्त एवं अहं चारों का पूर्ण विलीनीकरण हो गया है। यह विशुद्ध प्रेमलोक का मिलन है।

परम प्रेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई ।।

2/241/2

इसमें प्रेम के सात्विक चिन्ह भी प्रकट नहीं हो रहे हैं । यह भक्त भगवान् का इतना एकाकार मिलन है, कि भगवान् श्रीराम को भी यह भान न रह गया कि मैं राम हूँ और यह भरत है। तो भरत को ही अपनी पृथक् सत्ता का भान कहाँ रह जाता ? इस दशा में कुछ पूछने, कुछ बोलने, कुछ जानने समझने की बात कहाँ पैदा होती है–

डूबै सो बोलै नहीं, बोलै सो अनजान ।
गहरो प्रेम समुद्र कोउ, जानै चतुर सुजान ।।

पूर्व अध्याय चार में वर्णित लंका–विजय के पश्चात् अयोध्या आगमन के समय श्रीराम–भरत–मिलाप में श्रीराम ने पहले प्रकृतिस्थ होकर कुशल समाचार बार–बार पूछा है । प्रेम–पयोधि–मग्न भरत के मुख से वाणी प्रस्फुटित नहीं हो रही थी। श्रीराम के बार–बार प्रश्न

करने पर कियत् कालोपरांत श्रीभरत भी प्रकृतिस्थ होकर कह सके कि प्रभो। जब आपने विरह–वारीश में डूबे हुए अपने इस दास को हाथ पकड़ कर उबार लिया है, तो अब आपका यह किंकर कुशल कहने की स्थिति में हो गया है।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहिं बचन बेगि न आवई ।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन तें भिन्न जान जो पावई ।।
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहिं कर गहि लियो ।।

7/5/छंद 2

इसके विपरीत चित्रकूट के इस राम भरत मिलाप में न श्रीराम राम रह गये थे, न भरत, भरत। वहाँ एकमात्र प्रेम–साम्राज्य का प्रसार था, जिसमें सात्विक भावों का संचार भी स्वतः रूक गया था। अस्तु इस दशा का वर्णन अनिर्वचनीय होता है। वर्णन में कवि अपनी असमर्थता तो प्रकट करता ही है, साथ ही वह कहता है कि त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश के लिए भी यह अगम्य है। फिर अन्य की पहुँच यहाँ कहाँ हो सकती है ? यह निर्विकल्प समाधि से भी आगे की दशा है, क्योंकि उसमें तो अहं का स्फुरण होता है। यहाँ अहं भी विलीन हो गया है।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई । केहिं छाया कबि मति अनुसरई ।।
कबिहिं अरथ आखर बल साँचा । अनुहरि ताल गतिहिं नटु नाचा ।।
अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को ।।

2/241/3–5

अर्थ, आखर, ताल गति तो वहाँ तक पहुँचे, जहाँ कोई ध्वनि हो। यहाँ तो ऐसी निःशब्द शून्य की स्थिति है, जहाँ केवल प्रेम है। प्रेमातिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। यहाँ मिलन नहीं, पूर्णतः एकाकार दशा है। इस प्रेमरस पूर्ण वातावरण में एकदम निःस्तब्धता थी। जब मन की अपनी निरन्तर चलायमान संकल्प–विकल्प की गति समाप्त थी, तो उसके द्वारा संचालित जिह्वा इन्द्रिय कहाँ मुखर हो सकती थी ?

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा । प्रेम भरा मन निज गति छूंछा ।।

2/242/7

प्रेम के इस उच्चतम स्तर में शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहं ये सब तो निश्चेष्ट हो ही गये

हैं। प्रेमी, प्रेमास्पद, आराध्य, आराधक, दर्शक, दर्शनीय, दृश्य, द्रष्टा ये सारे भेद मिटकर केवल प्रेम ही प्रेम रह गया है। इस दशा में कर्त्ता, कर्म, क्रिया, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, भक्ति, भक्त, भगवंत की त्रिपुटी का पूर्णतः विलीनीकरण हो गया है। धन्य है यह प्रेमाद्वैत, जो विश्व की समस्त भाषाओं के वाङ्‌मय से एकदम अद्वितीय, अनूठा, अप्रतिम बेजोड़ है। अभागे स्वार्थी नीरस देवगण प्रेमरस की इस सर्वोच्च भूमि से पृथक स्वार्थ के आकाश में स्थित थे। देवगुरू बृहस्पति के समझाने पर बुझे मन से पुष्पवर्षा करने लगे। उस नीरस देव समाज को कवि–कुल–कलाधर गोस्वामिपाद ने जड़ की संज्ञा से सम्बोधित किया है। फलस्वरूप अरसिक देवगण के नीरस–पुष्पों का चित्रकूट के रसमय वातावरण में प्रवेश होते ही यह प्रेमाद्वैत व्यावहारिक जगत के धरातल में परिवर्तित हो गया।

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरू जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥

2/241/7,8

तदनन्तर सानुज–भरत अपनी परमाराध्या सर्ववेदमयी, इच्छा–ज्ञान–क्रिया–शक्तिमयी, सच्चिदानंद रूपिणी, अनंत ब्रह्माण्डाधीश्वरी, सर्वश्रेयष्करी, जगत जननी–जानकी के श्रीचरणों में लोट जाते हैं। प्रेम–प्राबल्य से बार–बार प्रणाम् किये जा रहे हैं। उधर वे मातेश्वरी ब्रह्मबेला में दृष्ट स्वप्न के समय से ही भावविभोर दशा में आत्मविस्मृत थीं। अपने दुलारे भरत के सिर पर स्नेहाशीषपूर्ण करकमल–स्पर्श द्वारा ही उन्होंने अपनी सानुकूलता की मौन अभिव्यक्ति करते हुए भरत की ग्लानि, वेदना एवं हृदय की जलन (जिय की जरनि) आदि सबका शमन कर दिया।

सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये । सिर कर कमल परसि बैठाये ॥
सीय असीस दीन्ह मन माहीं । मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं ॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर बीता ॥

2/242/3–6

मातेश्वरी श्री जानकी की सानुकूलता से जीव कैसे चिन्तामुक्त हो जाता हैं; इस संदर्भ में परमभक्तिमयी "प्रेमलताजी" का पद किंचित् परिवर्द्धित स्वरूप में उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है।

स्वामिनी सियाजू हमारी, फिकर हमें काहे की ।

नैहर मिथिलाराज बिराजे, अवधपुरी ससुरारी । फिकर..........

भइया जिनके श्री लक्ष्मीनिधि, भाभी सिद्धि कुमारी । फिकर..........

जिनके श्वसुर महीपति दशरथ, स्वामी श्री अवधबिहारी । फिकर..........

देवर भरत, लखन, रिपुसूदन, हनुमत चरण पुजारी । फिकर..........

ऋद्धि सिद्धि सब पाँव पलोटत, खास दास त्रिपुरारी । फिकर..........

उपजहिं जासु अंश ब्रह्माणी, उमा रमा सुखकारी । फिकर..............

भृकुटि-बिलास सृष्टि जेहिं होई, अग जग की महतारी । ....

(सबकी पालन हारी) फिकर............

लोकप होहिं बिलोकत जाके, क्लेश विनाशन हारी । ....

(विपति विदारण हारी) फिकर..........

"प्रेमलता" कलियुग का करिहै, रखिहैं स्वामिनी सँभारी । फिकर..........

समग्र श्रीरामचरितमानस में जग–जननी श्रीजानकी के कर स्पर्श का सौभाग्य प्रेम–विहवल श्रीभरत के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं मिला, जबकि करूणानिधान श्रीराम के द्वारा सिर पर कर स्पर्श का सौभाग्य पाँच प्रमुख भक्तों को प्राप्त हुआ है, जिनका विस्तृत वर्णन न करते हुए केवल अंगुलि–निर्देश किया जा रहा है।

प्रथम– अनन्य भक्त मनुशतरूपा को –

सिर परसेउ प्रभु निज कर कंजा । तुरत उठाये करूना पुंजा ।।

1/148/8

द्वितीय– आत्म–बलिदानी गृद्धराज जटायु को–

कर सरोज सिर परसेउ, कृपा सिंधु रघुबीर ।

निरखि राम छबिधाम मुख, बिगत भई सब पीर ।।

3/30

तृतीय– वानरराज बालि को आत्म–समर्पण के पश्चात्–

सुनत राम अति कोमल बानी । बालि सीस परसेउ निज पानी ।।

4/10/1

चतुर्थ– परमप्रिय अनन्य सेवक हनुमान को दो बार–

पहले– श्रीसीतान्वेषण को प्रयाण करते समय–

परसा सीस सरोरूह पानी । कर मुद्रिका दीन्ह जनजानी ।।

4/23/10

दुबारा–श्रीसीतान्वेषण करके उनका समाचार श्रीराम को सुनाने पर–

प्रभु कर पंकज कपि के सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ।।

5/33/2

पंचमः– अविरल प्रेम भक्ति युक्त काक भुसुंडि को–

कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ । दीनदयाल सकल दुख हरेऊ ।। 7/83/4

श्रीराम द्वारा इन पाँच भक्तों के सिर पर कर–स्पर्श के अतिरिक्त बालि द्वारा प्रताड़ित बहु–व्रण–युक्त शरीर वाले सखा सुग्रीव के पूर्ण शरीर पर कर–स्पर्श किया गया ।

कर परसा सुग्रीव सरीरा । तनु भा कुलिस गई सब पीरा ।। 4/8/6

अब दिव्य मिलन सम्बन्धी प्रकृत–विषय में आगे विचार करते हुए श्री राम–भरत के मधुर प्रेमाद्वैत–मिलन की समकक्षता का मिलन समग्र संस्कृत तथा हिन्दी वाङ्मय में खोजने का प्रयास करें। रहस्य–रसिक सम्प्रदाय में मधुर रस के आचार्यें ने मधुर मिलन की उत्तम झाँकियों का दर्शन कराया है। राधा–कृष्ण उपासना में भक्त रसखानि द्वारा वर्णित युगल सरकार के मिलन की झाँकी सुप्रसिद्ध है।

ए री आजकाल दोऊ लोकलाज त्याग करि,
सीखें हैं सबै बिधि सनेह सरसाइबो।
कहैं "रसखानि" दिन द्वै में बात फैल जैहै,
कहाँ लौं सयानी चन्दा हाथन दुराइबो।।
आजु हौं निहारयो सखि निपट कालिंदी तीर,
दोउन को दोउन सों मुरि मुसुकाइबो।
दोऊ परैं पैंया, दोउ लेत हैं बलैंया,
उन्हें भूलि गई गैयाँ, इन्हें गागर उठाइबो ।।

इसी शैली पर वर्णित पुष्पवाटिका में श्रीरामसीता का मिलन–दृश्य अवलोकनीय है ।

दोउन के दृग में परी, चपला की सी चौंध।
इन्हें भूलि गो जनकपुर, उन्हें भूलिगो औध।।

मिलन के इन दोनों दृश्यों में श्रीराम भरत मिलाप के प्रेमाद्वैत एवं एकाकारिता की छाया भी नहीं है। अवश्य ही विरह–वर्णन में तदाकारिता के दृश्यों का दर्शन संस्कृत के आचार्यों ने कराया है। कीट–भृंग–न्याय से विरही का अपने प्रियतम के चिन्तन में तदाकार हो जाना भक्ति–शास्त्र का प्राण है। प्रिया–प्रियतम की ऐसी तदाकारिता के एक उदाहरण से तत्सम्बन्धी झाँकी का दर्शन करें।

विरहिणी श्री राधा प्रतिक्षण माधव–माधव की रट लगा रही हैं। विरह–वेदना की प्रबलता में चिन्तन की पराकाष्ठा बन गई। तब राधा का स्वरूप साक्षात् माधव के समान बन गया। मैथिल कवि विद्यापति के शब्दों में –

अनुखन माधव माधव रटतल राधा भइल मधाई ।

विप्रलंभ श्रृंगार में ऐसे दृश्यों की प्रचुरता है। श्रीप्रेमरामायण के वन–विरह–कांड में विरही युवराज कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि के चिन्तन की पराकाष्ठा का दृश्य है, जिसमें वे चिन्तन करते–करते रामाकार बन जाते हैं। उनका गौर वर्ण शरीर एकदम श्याम वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों श्रीराम अयोध्या में अपने भ्राताओं के साथ कंदुक–क्रीड़ा कर रहे हैं। फूलों को ही कंदुक की तरह उछालते हुए भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न को पुकारते हैं कि सभी भाई मिलकर बाल सखाओं के साथ कंदुक–क्रीड़ा में भाग लीजिये। युवराज के मैथिल अनुज राजकुमार तथा सखागण आश्चर्य–मग्न होकर देख रहे थे कि सुंदर श्यामवर्ण नयनाभिराम श्रीराम साक्षात् खेल रहे हैं, तो वे सब देश–काल की सुधि–बुधि भूल गये। उन्हें भी प्रतीत हुआ कि अयोध्यानगर में वे श्रीराम के साथ ही कंदुक–क्रीड़ा के आनंद में मग्न हैं। यहाँ तक कि युवराज्ञी सिद्धि कुँअरि भी भूल गई कि इस समय श्रीराम वनवास–काल में चित्रकूट वास कर रहे हैं। अस्तु उनके वियोग में हम सब लोग मिथिला में कमला नदी के तट पर पर्णकुटियों में तपस्या कर रहे हैं। समस्त मैथिल समुदाय को इस प्रेमविभोर दशा में देखकर देवगण भी आनंद मग्न होकर नगाड़े बजाते हुए पुष्पवर्षा करने लगे। वे सब युवराजकुँवर की जय जयकार करते हैं। उन्हें धन्य–धन्य कहते हैं, जिन्होंने अपने चित्त को श्रीरामाकार बना लिया है। इस प्रकार

वे निमिवंश के कुलदीपक के रूप में सुहावने प्रतिष्ठित हो गये हैं। प्रेमरामायण वन–विरह कांड में देखिये–

चिंतन करत चित लय लयऊ । तदाकार वृत्ती जिय जयऊ ।।
बोल यकायक जनककुमारा । हौं ही अहौं श्याम सुकुमारा ।।
कैसो मेरो श्यामल अंगा । लाजैं लखि लखि अमित अनंगा ।।
धनुर्वाण मम सुंदर हाथा । खेलौं अवध बालकन साथा ।।
कहत कहत करि कंदुक फूला । लगे उछारन मंगल मूला ।।

दोहा– भरत लखन रिपुसूदनहिं, कहत पुकारि पुकारि ।
भैया खेलहु सखन सँग, आनँद होय अपारि ।। 18

खेलत दौड़ि दौड़ि निमिवारा । मनहुँ राम निज अवध मँझारा ।।
कुँअर सखा अरू भ्राता सिगरे । सिद्धि कुँअरि सँग विस्मय पगरे ।।
लखि लखि कुँअर केर आवेशा । भूले सबहिं काल अरू देशा ।।
रामस्वरूप कुँअर तन देखी । सुंदर श्याम मनोहर वेषी ।।
कर कंदुक इत उत तहँ फेंकी । छीनत चित्त नारि नर छेंकी ।।
भूलि अपनपौ खेलन लागे । सखा भ्रात सिगरे रस पागे ।।
सिद्धिहु भूलि गई बनवासा । खेलत गेंद गिनैं प्रभु पासा ।।
पेखि प्रेम बरसहिं सुर फूला । हनत दुंदुभी आनँद मूला ।।

दोहा– जय जय वदत विभोर ह्वै, धनि धनि सुवन महीप ।
रामाकारहिं चित्त करि, राम बन्यो कुल दीप ।। 19

विप्रलंभ श्रृंगार के ऐसे ही तदाकारिता के दृश्य अनेक काव्यों में यत्र–तत्र प्राप्त हैं, किन्तु संयोग काल में श्रीराम–भरत–मिलाप जैसा प्रेमाद्वैत का दृश्य अन्यत्र दुर्लभ है।

श्रीभरत ने तो समग्र वन–पथ में श्रीराम से सम्बन्धित प्रत्येक प्राणि–पदार्थ में श्रीराम के मिलन जैसी अनुभूति की है। जिन कोल–किरातों ने श्रीरामदर्शन लाभ कर लिया था, वे श्रीभरत के लिए श्रीरामवत् आनंददायक बने।

मिलहिं किरात कोल बनबासी । बैखानस बटु जती उदासी ।।
करि प्रनामु पूँछहि जेहि तेही । केहि बन लखनु राम बैदेही ।।

ते प्रभु समाचार सब कहहीं । भरतहिं देखि जनम फलु लहहीं ।।
जे जन कहहिं कुसल हम देखे । ते प्रिय राम लखन सम लेखे ।।

2/224/4-7

श्रृंगवेरपुर में मातेश्वरी श्रीजानकी के आभूषण से गिरे स्वर्ण कण उनके लिए जगजननी की भाँति आदरणीय शिरोधार्य बन गये थे।

कनक-बिंदु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीय सम लेखे ।। 2/199/3
मार्ग में राम के विश्रामस्थल के वृक्ष देखकर भेंटने को दौड़ पड़ते हैं ।
राम बास थल बिटप बिलोके । उर अनुराग रहत नहिं रोके ।। 2/216/7

वे रजकण, जिन्होंने श्रीरामचरण का स्पर्श पा लिया है भरत के लिए श्रीरामवत् शिरोधार्य हो गये।

हरषहिं निरखि रामपद अंका । मानहुँ पारस पायउ रंका ।।
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं । रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ।।

2/238/3,4

प्रेम दीवाने श्रीभरत समस्त चराचर प्रकृति को विरहोद्दीप्त प्रेमरस में डुबाकर रस ही रस स्वरूप बना देते हैं। तब तो अचेतन, जड़, कठोर पाषाण, यहाँ तक कि वज्र भी मोम की तरह पिघलकर पानी—पानी हो जाता है। सचेतन जीव तो अवर्णनीय प्रेमरसास्वादन में परमानंद की अनुभूति करते हैं।

जबहिं राम कहि लेहिं उसाँसा । उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा ।।
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना । पुरजन प्रेम न जाइ बखाना ।।

2/220/6,7

आश्चर्य! महदाश्चर्य! प्रकट हो रहा था, क्योंकि विश्व में इसके पूर्व कभी न देखा गया अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया था। जो जड़ कहे जाने वाले पदार्थ पॉषाणादि थे, वे द्रवित हो रहे थे। अर्द्धचेतन पदार्थ वृक्षादि मस्ती से झूमकर आनंद विभोर हो रहे थे। चेतन चकोर पक्षी भरत के यशचंद्र की ओर टकटकी लगाये स्तब्ध निश्चेतन हो गये थे। पूर्ण चेतन सिद्ध—साधक—गण मूकास्वादनवत् "सकुचत बोलत बचन सिखे से" 2/303/3 आहलाद प्रकट कर रहे थे, क्योंकि "भरत भगति सब कै मति जंत्री" 2/303/2 अतः कोई पूर्ण विवेकयुक्त बोलने

की स्थिति में रह ही नहीं गया था ।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेह सराहन लागे ।।

होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।

2/238/7,8

इस "को"? का उत्तर देने में सब निरूत्तर हो गये। वस्तुतः प्रकृति में ऐसा अनुपम चमत्कार प्रकट करने वाला "न भूतो न भविष्यति"। अतः अयोध्या कांड के अंतिम छंद में गोस्वामि पाद ने "को" शब्द की झड़ी लगाकर उन्हें अभूतपूर्व कहा! वे प्रश्न पर प्रति–प्रश्न करते हैं कि प्रेमावतार भरत न होते तो संसार में मुनियों के लिए अगम यम, नियम, शम, दम, अनेक विषम व्रतों का पूर्णतः पालन करने का आदर्श कौन प्रस्तुत करता ? तब धर्म का रहस्य प्रत्यक्ष कैसे होता ? प्रेम की पूर्णता का दर्शन कैसे होता ? समाज के दोष, दुःख, दरिद्रता, दंभ आदि नाना दोष अपने सुयश द्वारा समाप्त करने का विषम कार्य कौन सम्पन्न करता ? इस कलिकाल में मेरे–सदृश कुटिल जनों के लिए कौन अवलम्ब बनकर प्रभु श्रीराम के सम्मुख ले जाता ? अयोध्याकांड के समापन के छंद में इस "को" प्रश्न की बार–बार पुनरावृत्ति करते हुए गोस्वामि पाद को एकमात्र श्री भरत का आश्रय अवलम्बन प्राप्त होता है।

छंद– सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमुन भरत को ।
मुनिमन अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत आचरत को ।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।

(छंद13)

दोहा– भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहि ।
सीय राम पद प्रेमु, अबसि होइ भव रस बिरति ।। 2/326

भक्तिकाल में अष्ट छाप के अप्रतिम महाकवि संत सूरदास जी के प्रेमपरक पद के साथ अध्याय का समापन–

सबसे ऊँची प्रेम सगाई ।
दुर्योधन को मेवा त्यागो, साग बिदुर घर पाई ।।
जूठे फल शबरी के खाये, बहु बिधि प्रेम लगाई ।

प्रेम के वश नृप सेवा कीन्हीं, आप बने हरि नाई ।।
राज सुयज्ञ युधिष्ठिर कीन्हो, तामें जूठ उठाई ।
प्रेम के वश अर्जुन रथ हाँक्यो, भूल गये ठकुराई ।।
ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दाबन, गोपिन नाच नचाई ।
"सूर" क्रूर इस लायक नाहीं, कहँ लगि करौं बड़ाई ।।

अध्याय - बारह

प्रेमी एवं प्रेमास्पद का विचारैक्य

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति, तदेव भाषयति, तदेव चिन्तयति ।

श्रीनारद भक्ति-सूत्र सं. 55

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्योमनागपि ।।

श्रीमद्भागवत 9/4/68

जेहि रहीम तन मन दियो, किियो हिये बिच भौन ।
तासों सुख दुख कहन की, रही बात अब कौन ।।

रहीम

उक्त उद्धरणों से भक्त–भगवंत के हृदय की एकाकारिता प्रकट है। अतः श्रीराम एवं श्रीभरत का पूर्ण विचारैक्य है। भरत अपना स्वतंत्र मत नहीं रखते। वे श्रीराम का पूर्णतः अनुसरण करते हैं। श्रीराम भगवान् शंकर का भजन पूजन करते हैं। गंगातट पर

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा । पूजि पारथिव नायउ माथा ।।

2/103/1

पुनः समुद्र तट पर

करिहउँ इहाँ संभु थापना । मोरे हृदयँ परम कलपना ।। 6/2/4

श्री भरत भी शिवाराधन करते हैं –

सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ।। 2/157/7

इस विषय में श्रीलक्ष्मण का मत भिन्न है। वे अपनी अनन्यता में बट्टा नहीं लगने देते हैं। उनके उद्गार हैं कि श्रीराम के अतिरिक्त मेरा कोई अन्य पूज्य नहीं है। मेरे परमाराध्य श्रीराम हैं। वही एकमात्र मेरे सर्वस्व हैं।

मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ।। 2/72/6

अतः लंका से पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या यात्रा के समय मार्ग में श्रीरामेश्वर स्थापना–स्थान

पर श्रीराम एवं श्रीसीता के साथ शिव के ज्योतिर्लिंग को लक्ष्मण द्वारा प्रणाम करना नहीं कहा गया।

इहाँ सेतु बाँध्यों अरू थापेउँ सिव सुख धाम ।

सीता सहित कृपा निधि, संभुहिं कीन्ह प्रनाम ।। 6/119(क)

इतना ही नहीं वे तो भरत के ससैन्य चित्रकूट पहुँचने के समय प्रेमानिष्ट–शंका से भरत से युद्ध की घोषणा करते हुए उनके पूज्य शंकरजी को भी चुनौती दे डालते हैं।

जौ सहाय कर संकरू आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ।।

2/230/8

भरत सब प्राणि–पदार्थ में श्रीराम को देख रहे हैं, जिनके उदाहरण पूर्व अध्याय ग्यारह में उद्धृत किये जा चुके हैं। श्रीलक्ष्मण ने अपने इष्टदेव श्रीराम में ही अपने समस्त पूज्यवर एवं नाते रिश्तों को केन्द्रीभूत कर दिया है।

गुरू पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ।।

जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीत निगम निजु गाई ।।

मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबँधु उर अंतर जामी ।।

2/72/4,6

किन्तु ऐसे अनन्य सेवाव्रती श्रीलक्ष्मण ने जब प्रेममूर्ति श्रीभरत के विह्वल कंठ से व्याकुलता भरी वाणी में **"पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई।"** 2/240/2 ऐसी आर्त्त पुकार सुनी, तो उनका मन प्रभु सेवा से विरत होकर श्रीभरत के चरणों में लिपट जाने को आतुर हो गया। महाकवि ने दूर पड़े भरत के लिए **"बन्धु सनेह सरस एहिं ओरा।"** तथा जिन प्रभु की सेवा में रत थे उनके लिए **"उत साहिब सेवा बस जोरा।"** 2/240/4 लिखकर लक्ष्मण के मन की स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है । यह है श्रीभरत के प्रेम का आकर्षण, जिसने दूर होते हुए भी **"एहिं ओरा"** बनकर पास में स्थित साहिब राम को **"उत"** बना दिया है। बाद में सेवाधर्म प्रमुख मानकर वे **चढ़ी "चंग जनु खैंच खेलारू"** 2/240/6 की भाँति मन को उधर से खींचकर प्रेमार्द्र हृदय से भरत के प्रणाम् की बात श्रीराम से निवेदन करते हैं।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ।।

2/240/7

श्री लक्ष्मण का यह हृदय–परिवर्तन श्री भरत के हृदय में श्री लक्ष्मण के प्रति छलकते हुए प्रेमपूर्ण दुलार के कारण संभव हुआ। श्रीभरत में ईर्ष्या और मात्सर्य का लवलेश नहीं था। उनकी दृष्टि में श्रीराम की सेवा हेतु लक्ष्मण जितने उपयुक्त थे, अपने संकोची स्वभाव के कारण वे अपने आपको उस स्तर का सेवक बना सकने में न्यूनता का अनुभव करते थे। अतः वे दुलारे लक्ष्मण की भूरि–भूरि प्रशंसा, हार्दिक अनुराग से करते हैं।

लालन जोगु लखन लघुलोने । भे न भाइ अस अहहिं न होने ।।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे ।।
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ । तात बाउ तन लाग न काऊ ।।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती । निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ।।

2/200/1–4

पुनः–

अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारबिन्दु अनुरागी ।। 7/1/3

शिवाराधन–निष्ठा की भाँति श्रीराम की गुरूभक्ति भी स्तुत्य है । शस्त्रगुरू विश्वामित्र की चरणसेवा का दृश्य अत्यंत मार्मिक है । उस दिन मुनि विश्वामित्र के साथ श्री राम लक्ष्मण उनके बक्सर स्थित सिद्धाश्रम से पैदल चलकर जनकपुर पहुँचे थे। ऐसी थकान की परिस्थिति में भी अत्यंत श्रद्धाभक्ति से गुरूदेव के चरणों को पलोटते रहे। गुरूदेव बार–बार उन्हें विश्राम करने को कह रहे थे। पर राम को गुरूचरणों की सेवा छोड़कर अपने विश्राम की चिंता ही नहीं थी। महाकवि ने याद दिलाया कि ये वही श्री राम हैं, जिनके चरण कमलों का स्पर्श पाने के लिए वैराग्य–वान मुनिगण जन्म–जन्मातर तक विविध जप–तप–योग–साधना करते हैं। वही प्रभु प्रेमपरवश होकर गुरूसेवा में मन, वचन, कर्म से निमग्न हैं।

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ।।
जिनके चरन सरोरूह लागी । करत बिबिध जप जोग बिरागी ।।
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनुजीते । गुरू पद कमल पलोटत प्रीते ।।

1/226/3–5

इसी भाँति शास्त्रगुरू कुलगुरू वशिष्ठ जी का आगमन सुनते ही द्वारदेश में पहुँचकर चरण–वंदन किया। फिर आसन पर बैठाकर षोड़शोपचार पूजन किया। पुनः प्रार्थना की कि

दास को संदेश भेजकर अपने आश्रम पर पहुँचने की आज्ञा देना उचित था। मेरे आवास पर पधारने का कष्ट उठाकर आपने मुझपर अपार कृपा की है। अब आज्ञा दी जावे। सेवक भवदीय सेवा हेतु तत्पर है।

गुरू आगमन सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायउ माथा ।।
सादर अरघ देइ घर आने । सोरह भाँति पूजि सनमाने ।।
गहे चरन सिय सहित बहोरी । बोलें रामकमल कर जोरी ।।
सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगलमूल अमंगल दमनू।।
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती । पठइअ काजनाथ असि नीती ।।
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू । भयउ पुनीत आजु यह गेहू ।।
आयसु होइ सो करौं गोसाई । सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ।।

2/9/2-8

गुरू–सेवा–भावना में श्रीराम का अनुसरण करते हुए चित्रकूट में भरत गुरूदेव वशिष्ठ की वंदना करते हुए उनके शुभाशीष की कामना करते हैं।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि जग जाना ।।
सो गोसाईं बिधिगति जेहिं छेंकी । सकइ को टारि टेक जो टेकी ।।

दोहा– बूझिअ मोहिं उपाउ अब, सो सब मोर अभागु ।
सुनि सनेहमय बचन गुरू, उर उमगा अनुरागु ।।

2/255

गुरूदेव के प्रस्ताव पर कि तुम दोनों भाई पिता के दूसरे वरदान के अनुपालन में वनवास करो, तो श्रीराम–सीता–लक्ष्मण को वापस अयोध्या जाने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। भरत हर्षातिरेक से नाच उठे, मानों पिता–दशरथ जीवित हो गये हों एवं श्रीराम का राज्याभिषेक हो गया हो। वे तो चौदह वर्ष क्या आजीवन वनवास करने को प्रस्तुत हो गये।

तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई । फेरअहिं लखन सीय रघुराई ।।
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता । भे प्रमोद परिपूरन गाता ।।
मन प्रसन्न तन तेज बिराजा । जनु जिय राउ राम भये राजा ।।

2/256/3-5

गुरूदेव के वचन पालन हेतु श्री भरत की भावपूर्ण निष्ठा देखकर मुनि वशिष्ठ भी प्रेमविभोर हो गये। उन्होंने राम से स्पष्ट कह दिया कि मेरी बुद्धि भरत की वशवर्ती बन गई है। अस्तु भरत की रूचि के अनुसार चलने में सबकी भलाई है। तब तो श्रीराम गद्‌गद्‌ हो गये। उन्होंने गुरूदेव की सौगन्ध तथा पितृचरण की दोहाई देकर शपथपूर्वक उद्‌घोष किया कि भरत जैसा भाई त्रैलोक्य में हुआ ही नहीं है। जो शिष्य गुरू चरणों में अनुरागी होता है, वह लोकवेद दोनों में महाभाग्यवान है। फिर जिस शिष्य के प्रति गुरू का अनुराग हो जावे, वह तो धन्यातिधन्य है। उसके भाग्य का लेखाजोखा कौन प्रस्तुत कर सकता हैं ?

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ।।
जे गुरूपद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ।।
राउर जापर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ।।

2/259/4–6

श्रीराम के कथनानुसार गुरू वशिष्ठ का अनुराग अपने शिष्य भरत के प्रति होना सचमुच में अभिनन्दनीय है। वे तो ऐसा सत्‌ शिष्य पाकर उस पर बलिहार हो गये। श्रृंगवेरपुर में उन्होंने रामसखा निषादराज गुह को लाड़ले अनुज लक्ष्मण के समान प्रिय बनाकर हृदयालिंगन करते हुए भरत की प्रेमविभोरता का दृश्य देखा था। भरत का अनुसरण करते हुए समस्त अयोध्यावासियों ने गुह को श्रीलक्ष्मण के समान प्रिय बना लिया था। रह गये थे केवल गुरूदेव, जिन्होंने दूर से ही उसे आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया था। चित्रकूट पहुँचने पर उन्हें अवसर लग गया। वहाँ गुह ने पुनः दूर से ही गुरूदेव को प्रेमपूर्वक दण्डवत्‌ प्रणाम किया। अबकी बार गुरूदेव दूर से आशीर्वाद न देकर उसे भेंटने को दौड़ पड़े। वह बेचारा अपने को अस्पृश्य मानते हुए संकोच से भूमि में सिमटा जा रहा था, किन्तु गुरूदेव उसे बरबस उठाकर भेंट रहे थे। मानों वे संसार को यह शिक्षा दे रहे थे कि मेरे शिष्य भरत ने रामभक्त के प्रति जिस अनुराग भाव से व्यवहार किया है, उसे मैं मान्यता देकर उसका अनुसरण कर रहा हूँ। मैं उस प्रेम–सिद्धान्त की पुष्टि कर रहा हूँ कि जो जन भगवान्‌ का हो गया, वह विश्ववंद्य है। उस दृश्य के वर्णन के समय प्रतीत होता है कि महाकवि भी प्रेमविभोर हो गये थे। देवगण भी धन्य–धन्य कहते हुए पुष्पवर्षा कर रहे थे। विचार करे, कि लोकदृष्टि से इस निषाद जैसा निम्न स्तर का व्यक्ति कौन होगा एवं मान्यता की दृष्टि से ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जैसा महान कौन हो सकता है ? किन्तु वही मुनिश्रेष्ठ गुरूदेव आज इस निषाद को श्रीलक्ष्मण से भी अधिक वात्सल्य–भाजन बना रहे हैं।

यह भगवान् श्रीराम के भजन का ही प्रताप एवं प्रभाव है तथा प्रभुप्रेमी श्रीभरत ने इसको अनुज लक्ष्मण के समान प्यार भरा आलिंगन देकर सबका प्रिय बना दिया है।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू ।।
राम सखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा ।।
रघुपति भगति सुमंगल मूला । नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला ।।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं ।।

दोहा– जहि लखि लखनहु तें अधिक, मिले मुदित मुनिराउ ।
सो सीतापति भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ ।। 2/243

अपने प्रभु राम के परमोदार स्वभाव पर भरत को अटूट विश्वास है। उनका कथन है कि समस्त विश्व मुझे अपराधी मानेगा, क्योंकि दैवदुर्विपाक से परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं कि मेरी निरपराधिता का कोई साक्षी नहीं है, प्रत्युत् बाह्य रूप से मैं स्पष्ट ही अपराधी दृष्टिगोचर हो रहा हूँ। केवल अन्तर्यामी सीताराम ही मेरे हृदय की सत्यता पर विश्वास करके मुझे क्षमा करेंगे, क्योंकि वे तो अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते हैं।

परिहरि राम सीय जग माहीं । कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं ।

2/182/3

एवं

मैं जानउँ निज नाथ सभाऊ । अपराधिहुँ पर कोह न काऊ ।।

2/260/5

इधर यही बात श्रीराम स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मैं तुम्हारे हृदय को भली भाँति जानता हूँ। क्या करूँ, मैं पिता के वचन की रक्षा हेतु असमंजस में पड़ा हूँ। तुम ग्लानि मत करो। मैं तुम्हारे प्रति संकोच को पिता के वचन से भी अधिक अनुभव करता हूँ। अतः तुम जो कह दो, मैं उसे सहर्ष पालन करूँगा।

तात तुम्हहिं मैं जानउँ नीके । करौं काह असमंजस जी के ।।
राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी ।।
तासु बचन मेंटत मन सोचू । तेहिं ते अधिक तुम्हार सँकोचू ।।

2/264/5–7

यह मर्यादा पुरूषोत्तम धर्मधुरीण श्रीराम की लीला का अद्वितीय प्रसंग है, जिसमें उन्होंने भरत की रूचि के आगे आत्म–सर्मपण कर दिया है। आकाश स्थित देव–वृन्द, सभा में विराजमान गुरूदेव वशिष्ठ एवं विश्वामित्र आदि मुनीश्वर तथा समस्त अयोध्यावासी सभासद सबके लिए यह कल्पनातीत था कि सबके स्तुत्य श्रीराम स्वयं ही स्तोता बनकर श्रीभरत का अभिनंदन कर रहे हैं। आज प्रभु श्रीराम ने भरत को विश्व–ब्रम्हाण्ड में सर्वोत्कृष्ट धर्मात्मा व्यक्ति बतलाया। उन्होंने कहा कि त्रैलोक्य में भूत, भविष्य, वर्तमान–त्रिकाल में भरत जैसा पुण्यात्मा न है, न हुआ है और न होगा। सारे पुण्यश्लोक महात्मा महापुरूष भरत से निम्नस्तर पर रहेंगे। प्रभु ने यह भी घोषणा की कि तुम्हें जन्म देने के नाते तुम्हारी माता कैकेयी भी परम धन्य है। भला महामानव को जन्म देने वाली माता कभी निन्दनीय हो सकती है। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने अपने "साकेत" महाकाव्य में श्रीराम के वचन इस रूप में उद्‌घोषित किये हैं।

सौ बार धन्य वह एक लाल की माई ।
जिस जननी ने है जना भरत सा भाई ।।

अब तो श्रीराम श्रीभरत को जन्म देने के नाते उनकी माता कैकेयी को सभी लांछनों से मुक्त करने की घोषणा करते हुए उन पर दोषारोपण करने वाले व्यक्ति को जड़ की संज्ञा देते हैं तथा पूर्ण निर्दोष भरत पर हृदय के अन्तराल में भी कुटिलता की भावना रखने वाले व्यक्ति के इस लोक तथा परलोक दोनों के विनष्ट हो जाने का शाप भी देते हैं।

तीन लोक त्रिभुवन मत मोरे । पुन्यसि लोक तात तर तोरे ।।
उन आनत तुम पर कुटिलाई । जाइ लोक परलोक नसाई ।।
दोसु देहिं जननिहिं जड़ तेई । जिन्ह गुरू साधु सभा नहिं सेई ।।

2/263/6–8

भरत एवं उनकी माता कैकेयी पर दोषारोपण करने वाले अपराधी के प्रायश्चित तथा दोष परिमार्जन का विधान नाम जप होगा। प्रश्न हुआ कि किसका नाम जप ? श्रीराम ने निर्णय सुनाया भगवन्नाम जप नहीं, प्रत्युत् भरत के नाम जप से ही अपराधी दोषमुक्त हो सकेगा और तब उसके समस्त पाप तथा परिणामस्वरूप होने वाले अमंगल समूल नष्ट हो जावेंगे। और उसे लोक में सुयश तथा परलोक में सुख की प्राप्ति होगी।

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नाम तुम्हार ।। 2/263

इस प्रकार चित्रकूट की पुण्यस्थली में श्रीमुखवचन द्वारा श्रीभरत के पावन नाम की महिमा उद्घोषित की गई। अतः अपने मानस सर वर्णन में महाकवि ने श्रीभरत–चरित्र को समस्त उत्पातों के शमन करने वाले नाम जप–यज्ञ की संज्ञा दी।

समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप जाग । 1/41

श्रीमद् भगवद्गीता में नाम जपयज्ञ को सर्वश्रेष्ठ यज्ञ निरूपित किया गया है। गीतोक्त द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञान यज्ञ, सकाम यज्ञ, निष्काम यज्ञ, सर्व समर्पण यज्ञ आदि विविध यज्ञों की तुलना में दशम अध्याय के विभूति–योग में भगवान् के श्रीमुख वचन हैं–

"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" 10/25

जप यज्ञ को अपना स्वरूप निरूपित करने में प्रभु का अभिप्राय यह हो सकता है कि अन्यान्य यज्ञों में साधक अपना कर्तृत्व मान सकता है। अतः लोक में सम्माननीय भी बन सकता है। किन्तु जप–यज्ञ तो मानसिक रूप से भीतर ही भीतर चलता है। उसे कोई देख नहीं सकता। उसमें वाह्य–वृत्ति का सर्वथा अभाव है। अतः समस्त अमंगल–विनाश हेतु नाम जप यज्ञ ही श्रेयष्कर है।

श्रीभरत इतने जागरूक महापुरूष हैं कि प्रभु के इन प्रशस्ति–वचनों में उन्होंने अपनी महानता नहीं, प्रत्युत् प्रभु की कृपा का दर्शन किया। वे प्रभु की कृपालुता पर विभोर हो गये। प्रेमी में "तत्सुखे सुखित्वं" का भाव प्रधान होता है। अतः श्रीभरत सोचते हैं कि मैं आग्रह करके प्रभु को वापस अयोध्या चलने को कहता हूँ, तो प्रभु लौट तो चलेंगे, किन्तु वे वहाँ आजीवन मानसिक कष्ट में घुलते रहेंगे, कि मैने पिता की आज्ञा की अवहेलना की है। अतः लोग भले ही मुझे दोष देते रहेंगे कि भरत ने ऐसा सुअवसर पाकर भी इसका सदुपयोग नहीं किया। मैं तो वही कहूँगा, जिसमें प्रभु को लेशमात्र क्षोभ न हो।

करि बिचार मन दीन्ही ठीका । राम रजायसु आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा । छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥

2/266/7–8

वे तो प्रथम से ही यह मानकर चल रहे हैं कि सेवक के लिए स्वामी का हित ही सर्वोपरि सिद्धान्त है।

करइ स्वामि हित सेवक सोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ॥ 2/186/5

श्रीभरत के इस आत्मबलिदानी स्वभाव को यथा तथ्य समझ पाना सबके लिए अगम्य है। श्रीराम का स्वभाव तो सुस्पष्ट है। वे स्वयं श्रीमुख से विभीषण को बतलाते हैं।

सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंडि संभु गिरजाऊ ।।
जो नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोहीं ।।
तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ।।

5/48/1-3

प्रभु का स्वभाव भली भाँति जानने वाले काकभुसुंडि पक्षिराज गरूड़ से बतलाते हैं

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहिं काऊ ।।
संसृत मूल सूलप्रद नाना । सकल सोकदायक अभिमाना ।।
ताते करहिं कृपा निधि दूरी । सेवक पर ममता अति भूरी ।।

7/74/5-7

पुनः

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ । केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ ।।

7/124/4

सरन गएँ मोसे अघरासी । होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी ।। 7/124/8

दूसरे विशिष्ट जानकार भगवान शंकर इस राम स्वभाव की चर्चा पार्वती से करते हैं–

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना । ताहि भजन तजि भाव न आना ।।

5/34/3

देवगुरू बृहस्पति देवराज इन्द्र से बतलाते हैं

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काऊ ।।

(पूर्वोक्त) 2/218/4

श्री भरत स्वयं कह चुके हैं –

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहुँ पर कोह न काऊ ।।

(पूर्वोक्त) 2/260/5

इसके विपरीत श्रीभरत का स्वभाव समझ पाना वेदों तक के लिए दुष्कर है, फिर अन्य

की तो क्षमता ही क्या है ? महाकवि कहते हैं कि मेरी मति की गति बाल–वचन की तरह तोतली है। वह चकोर की बच्ची की तरह छोटी है। जबकि भक्त के निर्मल हृदयाकाश में प्रकाशित होने वाले चन्द्रमा की भाँति प्रेमी भरत के यश चन्द्र से आकर्षित होकर वह मंत्रमुग्ध की भाँति टकटकी लगाकर देखने से अपनी वाणी की क्षमता खो बैठी है। भरत के सहज, सरल, कपटरहित स्वभाव को कहने सुनने से अवश्यमेव सभी को श्री सीताराम–चरण–प्रीति की प्राप्ति हो जाती है। यदि श्री भरत के स्मरण से किसी अभागे को श्रीराम प्रेम सुलभ न हो, तो यह मान लेना चाहिये, कि इस व्यक्ति के समान अभागी विश्व में कहीं कोई भी नहीं है।

महिमा तासु कहै किमि तुलसी । भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी ।।
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी । कबि कुल कानि मानि सकुचानी ।।
कहि न सकति गुन रूचि अधिकाई । मति गति बाल बचन की नाई ।।

दोहा– भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि ।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि ।। 2/303
भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ । लघु मति चापलता कबि छमहूँ ।।
कहत सुनत सति भाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ।।
सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को । जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ।।

2/304/1-3

"प्रेम–वल्लरी" के एक पद द्वारा अध्याय का समापन–

प्यारे मैं तो तवमुख चन्द्र चकोर ।
निरखत तृप्ति न मानत नैना, पलक गिरत नहिं भोर ।।
रस ही रस आवत इन अँखियन, रहहिं रसे रस बोर ।
कैसो मन मोहन प्रिय दर्शन, हृदय रह्यो चित चोर ।।
अमिय-प्रपूरित अनुपम आनन, लखत लगन लगी जोर ।
बिन साधन भई प्रेम प्रबलता, भयो तू सर्बस मोर ।।
बात कहा नहिं जानौं मोहिं में, प्रिय हुलसत मम ओर ।
"हर्षण" इकटक देखत अहनिशि, मम मुख चंद चकोर ।।

पद सं. 153

❋ ❋ ❋

अध्याय – तेरह

श्री प्रेम रामायण में वर्णित भरत सिद्धांत

जानहुँ राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ।।
सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।।
जलद जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पबि पाहन डारउ ।।
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई ।।
कनकहिं बान चढ़ई जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ।।

मानस 2/205/1-5

श्रीप्रेमरामायण साकेत काण्ड में वर्णन किया गया है कि मैथिल युवराज कुँवर लक्ष्मीनिधि अपनी अनुजा को विदा करवाने हेतु अयोध्या धाम पहुँचे। वहाँ प्रवास–काल में, एक दिन श्रीभरत के राजमहल में, प्रेमपूर्वक उनका स्वागत सत्कार सम्पन्न हुआ। सानंद बिराजने पर श्रीभरत ने उनकी प्रशंसा करते हुए बतलाया कि हमारे अग्रज प्रभु श्रीराम सदा आपकी याद करते ही प्रेम–विभोर हो जाते हैं। आप तो उनके हृदय–बिहारी बने हुए हैं। हम लोगों से नित्य आपके विशाल प्रेम की चर्चा करते रहते हैं। माता श्रीसीता के अग्रज होने के नाते आप हमारे पूज्य हैं।

श्रीभरत के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कुँवर लक्ष्मीनिधि संकुचित होकर बोले, यह तो महापुरूषों का स्वभाव है कि वे अपने से नीचे स्थित व्यक्ति को मान्यता प्रदान करते हैं। मेरे हृदय की लालसा है कि आप मुझे अपना दास मानकर अपने गृह की छोटी से छोटी सेवा टहल प्रदान करें।

कुँवर लक्ष्मीनिधि का दैन्य भाव देख सुनकर श्रीभरत को वे उनके प्राणों के समान प्रिय लगने लगे। उन्होंने पुनः कुँवर के राम–प्रेम का गुण–गान करते हुए कहा कि आपने अपने दैन्य भाव से श्रीराम को अपने वश में कर लिया है। वे दीनबन्धु तुम्हें तो अपना परम प्रिय बनाये ही हैं, मुझे भी अत्यंत दीन जानकर उन्होंने अपने हृदय में रख लिया है। हे कुमार! जब प्रभु कृपा से जीव के हृदय में दैन्य भाव का प्रवेश हो जाता है, तो वह त्रिदेवों का पद पाकर भी कभी अहं भावग्रस्त नहीं होता। जब जीव अपने को साधनहीन, अकिंचन, "पापोऽहं, पापकर्माऽहं,

अध्याय - तेरह

श्री प्रेम रामायण में वर्णित भरत सिद्धांत

जानहुँ राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ।।
सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।।
जलद जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पबि पाहन डारउ ।।
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई ।।
कनकहिं बान चढ़ई जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ।।

मानस 2/205/1-5

श्रीप्रेमरामायण साकेत काण्ड में वर्णन किया गया है कि मैथिल युवराज कुँवर लक्ष्मीनिधि अपनी अनुजा को विदा करवाने हेतु अयोध्या धाम पहुँचे। वहाँ प्रवास–काल में, एक दिन श्रीभरत के राजमहल में, प्रेमपूर्वक उनका स्वागत सत्कार सम्पन्न हुआ। सानंद बिराजने पर श्रीभरत ने उनकी प्रशंसा करते हुए बतलाया कि हमारे अग्रज प्रभु श्रीराम सदा आपकी याद करते ही प्रेम–विभोर हो जाते हैं। आप तो उनके हृदय–बिहारी बने हुए हैं। हम लोगों से नित्य आपके विशाल प्रेम की चर्चा करते रहते हैं। माता श्रीसीता के अग्रज होने के नाते आप हमारे पूज्य हैं।

श्रीभरत के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कुँवर लक्ष्मीनिधि संकुचित होकर बोले, यह तो महापुरूषों का स्वभाव है कि वे अपने से नीचे स्थित व्यक्ति को मान्यता प्रदान करते हैं। मेरे हृदय की लालसा है कि आप मुझे अपना दास मानकर अपने गृह की छोटी से छोटी सेवा टहल प्रदान करें।

कुँवर लक्ष्मीनिधि का दैन्य भाव देख सुनकर श्रीभरत को वे उनके प्राणों के समान प्रिय लगने लगे। उन्होंने पुनः कुँवर के राम–प्रेम का गुण–गान करते हुए कहा कि आपने अपने दैन्य भाव से श्रीराम को अपने वश में कर लिया है। वे दीनबन्धु तुम्हें तो अपना परम प्रिय बनाये ही हैं, मुझे भी अत्यंत दीन जानकर उन्होंने अपने हृदय में रख लिया है। हे कुमार! जब प्रभु कृपा से जीव के हृदय में दैन्य भाव का प्रवेश हो जाता है, तो वह त्रिदेवों का पद पाकर भी कभी अहं भावग्रस्त नहीं होता। जब जीव अपने को साधनहीन, अकिंचन, "पापोऽहं, पापकर्माऽहं,

पापात्मा, पापसंभवः" मानकर प्रभु के शरणागत होता है, तो प्रभु अपनी प्रभुता को भुलाकर उस जीव के वशवर्ती बन जाते हैं ।

दैन्य भाव की महिमा श्रवण कर इस विषय में हार्दिक जिज्ञासा प्रकट करते हुए कुँवर लक्ष्मीनिधि ने श्रीभरत से आर्त्त–भाव से भुक्ति–मुक्ति–प्रदाता इस वशीकरण मंत्र का ज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना की। कुँवर की जिज्ञासा के प्रत्युत्तर में श्रीभरत ने जो आप्त वचनामृत प्रदान किया, उसे श्रीप्रेमरामायण की मूल–वाणी से प्राप्त करना उपादेय होगा। सुधी पाठक संक्षिप्त रूप में अनुशीलन करें।

बोले भरत कुँअर सब जाना । तदपि सुनन रूचि उर अधिकाना ।।
प्रेमिन कर यह सहज स्वभाऊ । हरि यश सुनत होत अति चाऊ ।।
कहहुँ सुनहु सादर चित लाई । साधक श्रद्धा प्रथम बढ़ाई ।।
हरि गुरू संत शास्त्र अनुकूला । चलै शरण पथ तजि प्रतिकूला ।।
रक्षा करिहैं राम सुजाना । दृढ़ विश्वास हृदय निज आना ।।
पाप स्वकृत मन माहिं बिचारी । प्रभु सों बिनतीं करैं उचारी ।।
रक्षहु नाथ जानि निज दासा । करै प्रार्थना नित्य सुआशा ।।
आत्म निवेदन प्रभु कहँ करई । षड्विधि शरणागति उर धरई ।।

दोहा– **अहंकार ममकार तजि, अरू स्वशक्ति मन काम ।**
साधक चलै प्रपत्ति पथ, तब पावै विश्राम ।। 334

गुरू प्रदत्त अष्टाक्षर मंत्रा । जप कीर्तन कर प्रभु परतंत्रा ।।
"श्रीरामः शरणं मम" भाया । शरणागति है मंत्र सुहाया ।।
अर्थ सहित करि ध्यान राम कर । जप इकान्त नित बैठि मोद भर ।।
प्रेम सहित अभ्यासहिं तेरे । बढ़ै दीनता कृपा घनेरे ।।
सहज दीनता करि हिय बासा । राम प्राण प्रिय बनै सुदासा ।।
दया करैं प्रभु दीन दयाला । जन रूख राखत प्रणतन पाला ।।
तैसहिं मंत्र कीर्तन साधक । करै नित्य प्रभु पद आराधक ।।
देश विविक्त भरे अनुरागा । नृत्यत अश्रु बहाय सुभागा ।।
"श्रीरामः शरणं मम" गावत । पुलक पुलक कर वाद्य बजावत ।।

दोहा– भाव भरे उन्मत्त सम, हँसत रूदत करि ध्यान ।
दीन भाव निज हृदय धर, भूलो तन मन भान ।। 335 ।।

कीर्तन सों प्रभु आशु प्रसन्ना । दासहिं देहिं भाव अति खिन्ना ।।
दैन्य भाव वश कीर्तन बीचा । प्रगटहिं राम सिया रस सींचा ।।
वरण करैं दै प्रेम अथोरा । रहहिं वशी नित अवध किशोरा ।।
जागत सोवत रघुवर दासा । शरण मंत्र नित जपै हुलासा ।।
रक्षै राम ताहि दिन राती । यथा शिशुहिं माता पुलकाती ।।
योग क्षेम सब भाँतिहिं केरा । करत राम नित सुखद सुहेरा ।।
गति अनन्य की सब बिधि लाजा । राखत राम देव सजि साजा ।।
शरणागति कर मंत्र प्रभावा । नारद शुक सनकादिक गावा ।।

दोहा– जप कीर्तन ये नित्य करि, भे परमारथ रूप ।
परम प्रेम सिय राम कर, पाये अमल अनूप ।। 336 (क)
साधक साथहिं नेम करि, शरणाष्टक करि गान ।
दैन्य भाव द्रुतहीं लहै, सो मैं करौं बखान ।। 336 (ख)

श्लोक–निरूपायस्य दीनस्य, मायाधीनस्य सर्वथा।
पापमूर्तेरनाथस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 1 ।।
संसार सिंधु मग्नस्य, कामदासस्य दुर्मतेः ।
ज्ञाननेत्रविहीनस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 2 ।।
अविद्याग्रस्त चित्तस्य, बहिर्वृत्तेश्च सर्वदा ।
विषयानल दग्धस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 3 ।।
दुष्टातिभावापन्नस्य, श्रुति शास्त्र बहिर्मतेः ।
साधुभाव विहीनस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 4 ।।
कुसंगोत्फुल्ल चित्तस्य, साधु निन्दन कृन्मतेः ।
कामिनी कान्तिलुब्धस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 5।।
ममाहं बुद्धि-रूपस्य, भवासक्तस्य पूर्णतः ।
अज्ञान तिमिरान्धस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 6 ।।

प्रेमाति शून्यचित्तस्य, लोकेषणा रतस्यच ।
आत्मज्ञान विहीनस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 7 ।।
जगत्पादाहतस्यास्य, दुःख पिण्डस्य सर्वतः ।
नान्यथा गतिर्दासस्य, श्रीरामः शरणं मम ।। 8 ।।
शरणाष्टक पाठेन, ह्येतदर्थ स्व धारणात् ।
स्वाचार्य सेवनरतः, नाप्नुयाद्दैन्यमन्यथा ।। 9 ।।
इदं भरत संप्रोक्तं, शरणाष्टक तारकम् ।
यः पठेद् दैन्य भावेन, मानवः राममाप्नुयात् ।। 10 ।।

दोहा- अष्टक् दियो सुनाय, भरत प्रेम वारिधि सुखद ।
कुँअर सुन्यो चित चाय, दास रामहर्षण मगन ।। 337 ।।

अध्याय दस में आचार्य महाप्रभु के व्यक्तित्व पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए उल्लेख किया गया है कि "एक बार विशेष तन्मयता की अवस्था में प्रेममूर्ति श्री भरत जी ने इसी अष्टाक्षर शरणागति मंत्र "श्री रामःशरणं मम" का एकान्तिक–संकीर्तन प्रदान किया था" तदनन्तर आचार्य–महाप्रभु ने अपने विशिष्ट साधक शिष्यों को निर्धारित साधन–प्रक्रिया पूर्ण करने के उपरान्त इस शरणागति मंत्र की दीक्षा प्रदान की। श्री रामहर्षण–मंडल के साधक शिष्य इस शरणाष्टकका नित्य भावपूर्ण पाठ करके शरणागति मंत्र की एकान्तिक–संकीर्तन में दत्तचित्त रहते हैं। श्री भरत द्वारा प्रदत्त यह शरणागति–मंत्र आशु सिद्धि–प्रदाता हैं। इस कारण प्रेमेच्छु साधकों के लिए यह जीवन–पथ का पाथेय सम्बल बन गया है। आचार्य महाप्रभु का तो यह जीवन प्राण ही है। उनके लिए यह उक्ति चरितार्थ हो गई है।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना । भूरिभाग को तुम्हहिं समाना ।।

श्रीरामचरित मानस अयोध्या कांड 208/1

अब अपने मूल प्रकृत विषय पर आगे की चर्चा श्रवण कीजिये। शरणागति मंत्र प्रदान करने के उपरान्त श्रीभरत ने कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि को शरणागति (प्रपत्ति) की महिमा सुनाई।

भरत कहा सुनु जनक कुमारा । प्रपति महा महिमा सुख सारा ।।
कर्म ज्ञान अरू भक्ति बिरागा । योग रहस्य अनूपम यागा ।।
करन प्रसन्न प्रभुहिं ये सिगरे । प्रपति समान एक नहिं लग रे ।।

प्रपति ग्रहण युत साधन साधै । तब यह जीव राम फल लाधै ।।
प्रपति शुद्ध कर एकहिं बारा । जीव लहै सिय प्रीतम प्यारा ।।
सिद्धोपाय प्रपति प्रभु थापी । सुख स्वरूप निर्विघ्न अलापी ।।
आत्मऽनुरूप प्रपत्ति अनूपा । नहिं आगन्तुक सहज स्वरूपा ।।
देश काल फल अरू अधिकारी । प्रपति माहिं नहिं नियम विचारी ।।
परम स्वतंत्र प्रपत्ती भाई । जो प्रभु कृपा जीव कर पाई ।।
प्रपति रहस विद रामहिं काहीं । एक उपाय उपेय बताहीं ।।

दोहा- होय कृतारथ सत्य सत, राम लेहिं सब भार ।
परमानन्दहिं जिवलहै, केवल शरण अधार ।। 338

एक बार शरणागति लीन्हें । रहै जीव रामहिं वश कीन्हें ।।
तो कत कीर्तन जाप विधाना । यह संशय कर सुनहु प्रमाना ।।
जीव अनंत काल अभ्यासी । जगहिं केर मन माहिं उपासी ।।
प्रपति यथावत् दशा न आवै । जस स्वरूप बुध वेद बतावै ।।
भव दुख प्रथम न ताहि लखाई । विषय प्रीति मम अहं रहाई ।।
देहहिं आत्म भाव करि जानै । नित्य अविद्या भ्रमत भुलानै ।।
प्रभु पद प्रेम न साधन एका । जल्पत कल्पित वाक्य अनेका ।।
कबहुँ कृपा प्रभु मिलि सत्संगा । भजन चाह हिय होय अभंगा ।।

दोहा- तब सतगुरू सौं मंत्र लहि, भव तारक सुख मूल ।
नित्य करै अभ्यास वर, आदर युत अनुकूल ।। 339।।

दीर्घकाल अनवरत सुसाधक । करै कीर्तन जप मन बाधक ।।
करत करत अभ्यास महाना । दृढ़ स्थिति तब लहै सुजाना ।।
पावन योग वस्तु सब पावै । जानन योग ज्ञान हिय आवै ।।
दैन्य भाव लहि रामहिं पाई । आनँद महँ नित रहै समाई ।।
ताते नित अभ्यासहिं केरा । प्रथमहिं कीन्हेउँ सखे निबेरा ।।
कालक्षेप हित वर्धन प्रेमा । सिद्धहु शरण मंत्र जप नेमा ।।
मोरे शरण राम पद त्राना । साधन और नेक नहिं जाना ।।

सब बिधि हीन दीन गुनि आपुहिं । रहौं भरोसे शरण सुजापहिं ॥
ताही बल प्रभु कृपा को पाई । आनँद सिंधु मगन नित भाई ॥

दोहा– सब विधि मानत राम मोहिं, करत अनंत सुप्यार ।
मम रूख देखत नित रहत, लीन्हें सब छर भार ॥ 340॥

अपने प्रति श्रीराम की अनंत कृपा का वर्णन करने के उपरान्त श्रीभरत ने कहा कि केवल मेरे ऊपर ऐसी कृपा अपवाद स्वरूप नहीं है, प्रत्युत् समस्त भक्तजन पर प्रभु की ऐसी सहज कृपा का वरद हस्त है।

जन की हार कबहुँ नहिं देखी । बरूक आप दुख सहेव विशेषी ॥
पाहि सुनत प्रभु रह अकुलाई । जोगवैं जनकहँ गोद उठाई ॥
भक्त चोट निज छाती लेहीं । कबहुँ दुखी नहिं देखहिं तेहीं ॥
सरवस आपन जन पर वारी । क्वन स्वामि अस कहहु अघारी ॥
जन कहँ देवहिं अमित बड़ाई । आपहु रहत स्वशीश झुकाई ॥
पाँव पलोटत पद पय धारत । तब पवित्र निज काहिं उचारत ॥
जासु नाम जपि एकहिं बारा । लोग तरहिं भव सिंधु अपारा ॥
सो प्रभु जन पद रज सिर राखी । कहत पूत अपने मुख भाषी ॥
निज समान जन काहिं बनाई । भोगहिं भोग साथ रघुराई ॥

दोहा– अस प्रभु शील सु सिन्धु गुनि, जो न भजै श्रीराम ।
कुँअर सुनहु सत सत कहहुँ, सो नहिं लहै अराम ॥ 342॥

निज यश सुनत जाहिं सकुचाई । जन यश सुनत अधिक हर्षाई ॥
जन सुख सुखी रहत नित रामा । जन दुख होवहिं विकल स्वधामा ॥
सेवक सेव गुनहिं निज सेवा । सेवक वैर आपु गुनि लेवा ॥
पत्र पुष्प फल तोय सुभावा । भक्त दीन करि ग्रहण सो पावा ॥
चुल्लु मात्र जल या दल तुलसी । पाइ बिकैं जन के कर हुलसी ॥
प्रेम अश्रु इक बूँदहिं पाई । बिके रहत ऋणिया कहवाई ॥
रहत नित्य भक्तन सँग डोलत । हृदय प्रेम रस छिन छिन घोलत ॥
दरस परस सेवा सरसानी । देत स्वभक्तहिं निज सुख मानी ॥

दोहा– कबहुँ न छोड़त भक्त कहँ, राखत नित निज धाम ।
परमानँद बोरे रहत, प्राण प्राण गुनि राम ।। 343 ।।

अरि हितकारि राम भगवाना । जानहिं वेद संत मतिमाना ।।
अस प्रभु छाँड़ि अन्य की शरणा । जाय जीव होवै नित मरणा ।।
अभय देन गहि शरण रामकी । जीव लहै गति वर सुधाम की ।।
बिनु प्रभु शरण त्रिसत्य उचारौं । नाहिन जीव केर निस्तारौं ।।
शरणागति अवलम्बन नीको । ता बिनु साधन हैं सब फीको ।।
श्रेष्ठ श्रेष्ठ अति श्रेष्ठ बताई । कुँअर श्रुती बहु विधि समुझाई ।।
प्रपतिहिं है पर ज्ञान विरागा । प्रपतिहिं है वर योग सुभागा ।।
प्रपतिहिं भक्ति प्रपति वर करमा । प्रपतिहिं यज्ञ दान सब धरमा ।।
शम दमादि गुण प्रपतिहिं बसई । प्रपति रहस बिनु विघ्न सुलसई ।।

दोहा– यथाकाश नित नखत मय, बीज मई शुभ भूमि ।
तथा प्रपति सब योग मय, दैन्य प्रेम रस झूमि ।। 344 ।।

श्री भरत के वचनामृत में प्रपत्ति योग की महिमा सुनकर कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि **"राम पाहि माम सीताराम पाहि माम"** की रट लगाते हुए प्रेम–समाधि में निमग्न हो गये। उसी समय वहाँ पहुँचकर श्रीराम ने कुँवर को अपने हृदय से लगाकर प्रकृतिस्थ किया।

श्रीभरत द्वारा वर्णित ऐसा दैन्य भाव उनका प्राण संजीवन है। अतएव वे "विनय–पत्रिका" में वर्णित इस सिद्धांत के मूर्त्त–रूप हैं।

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ।
राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो ।।

पद संख्या 72/2

किन्तु उनका अवमूल्यन करने वाले व्यक्ति का श्रीराम से भी उच्चाटन हो ही जावेगा। यही हुआ भी। चित्रकूट में गुरूदेव वशिष्ठ के प्रस्ताव में श्रीराम के वनवास की आज्ञा–पूर्ति में भरत का वनवास तथा श्रीराम की अयोध्या वापसी का विचार रखा गया। यद्यपि यह प्रस्ताव काल्पनिक ही था, फिर भी जिन लोगों ने राम की वापसी को बड़ा लाभ तथा भरत के वनवास को छोटी हानि मान लिया था –

बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी ।।   2/256/6

उन्होंने श्रीराम की तुलना में श्रीभरत का अवमूल्यन ही तो किया था। इस भक्तापराध से वही लोग देवमाया के शिकार बने। इन लोगों ने श्रीराम की इच्छा में अपने "स्व" का बलिदान नहीं किया था। उनका "स्व" अलग बना रह गया था। राम से अलग रहने के कारण ही देवता उन पर प्रभावी हो गये।

सुर माया सब लोग बिमोहें । राम प्रेम अतिसय न बिछोहे ।।
भय उचाट बस मन थिर नाहीं । छन बन रूचि छन सदन सोहाहीं ।।
दुबिध मनोगत प्रजा दुखारी । सरित सिंधु संगम जनु बारी ।।
दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं । एक एक सन मरमु न कहहीं ।।

मानस 2/302/4-7

वे सभी लाग द्वन्द्वात्मक जटिल परिस्थिति के शिकार होकर मन ही मन संकुचित हो रहे थे। अपने भाव एक दूसरे से व्यक्त करने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। श्रीराम को छोड़कर घर की स्मृति आने लगे, यह भली बात तो नहीं है। अतः इसे कैसे व्यक्त करें? इस दुरभिसंधि में वे भरत का अवमूल्यन करने का अभिशाप ही भोग रहे थे।

इसी सभा में श्रीराम ने ऐसी महत्वपूर्ण बात कही है, जो आज भी पारिवारिक संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। वे कहने लगे– देखो भैया भरत! विश्व में सभी भाई आपस में पैतृक–सम्पत्ति का बँटवारा किया करते हैं। परन्तु हमारे भाइयों ने आपस में विपत्ति का बँटवारा किया है। वनवास का साधारण कष्ट तो मेरे भाग में पड़ रहा है। किन्तु तुम्हारे भाग में, मैं भारी कष्ट का भार डाल रहा हूँ। चौदह वर्ष की असह्य विरह–वेदना में तपते हुए तुम्हें अयोध्या की प्रजा का रक्षण तथा उन्हें शोक–सागर पार करा देने का गुरूतर उत्तरदायित्व सौंप रहा हूँ। तुम सूर्यकुल के पालक बनकर यह भार सँभाल लोगे, तो मैं पिता की आज्ञा का पालक बन सकूँगा।

समस्त धर्म पृथ्वी के समान भारी हैं। उन्हें धारण करने वाले को शेषनाग के समान मान्यता दी जाती है। माता, पिता, स्वामी एवं गुरूजन की आज्ञा का पालक ही शेषनाग है। उसी के बल पर समस्त धर्म रूपी पृथ्वी टिकी हुई है। तुम इस शेषनाग के भी आधार बन जाओ। तुम्हारे प्रयास से ही धर्म की रक्षा हो सकती है। सचमुच माता, पिता, स्वामी एवं गुरूजन के वचन–पालन की एकमात्र साधना से समस्त सिद्धियाँ करतलगत हो जाती हैं। गुरूजनों की

आज्ञा का पालन ही कीर्ति, सद्गति एवं समस्त विभूतियों को प्रदान करने वाली त्रिवेणी है। यह विचार कर तुम्हें भारी संकट सहते हुए भी प्रजा एवं परिवार को सुखी बनाना होगा। तुम वियोगाग्नि में जलते रहोगे, परन्तु तुम्हें अपनी वेदना छिपाकर माताओं को प्रसन्न रखने के लिए स्वयं प्रसन्न दिखने का अभिनय करना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि ऐसा अभिनय सुदुष्कर होता है। पर किया क्या जावे, अन्य कोई उपाय भी तो नहीं है। अतः विवश होकर ही अपने सुकोमल हृदय वाले भ्राता को ऐसा कठोर कर्म सौंप रहा हूँ। कुसमय के कारण इसे मेरा अनुचित व्यवहार न माना जावे। आखिर विपत्तिकाल में सद्भ्राता ही तो सहायक बनता है। देखो न ! शरीर पर किसी ओर से वज्र प्रहार हो रहा हो, तो उसे रोकने को हाथ ही आगे बढ़ता है। भले ही वह हाथ चकनाचूर हो जावे, किन्तु शरीर का रक्षक बनने से वह मुँह नहीं मोड़ता है ।

मातु पिता गुरू स्वामि निदेसू । सकल धरम धरनी धर सेसू ।।
सो तुम करहु करावहु मोंहू । तात तरनि कुल पालक होहू ।।
साधक एक सकल सिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय बेनी ।।
सो बिचारि सहि संकट भारी । करहु प्रजा परिवार सुखारी ।।
बाँटी बिपति सबहिं मोहिं भाई । तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई ।।
जानि तुम्हहिं मृदु कहउँ कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ।।
होहिं कुठायँ सुबन्धु सहाये । ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाये ।।

मानस 2/306/2–8

श्रीराम के इन वचनों से भरत को परम संतोष की प्राप्ति हो गई। उनका सारा विषाद दूर हो गया। स्वामि राम की अनुकूलता तथा दुख–दोष की विमुखता से हार्दिक प्रसन्नता ने वरण कर लिया। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे संसार में जन्म धारण करने का फल प्राप्त हो गया हो। वे बोल पड़े–"हे नाथ ? अब मुझे आपके साथ रहने की अनुभूति हो रही है। चौदह वर्ष पृथक रहने पर भी नित्य निरन्तर सान्निध्य का परमानंद प्राप्त होता रहेगा।"

मानस– नाथ भयउ सुखु साथ गए को । लहेउँ लाहु जग जनमु भए को ।

2/307/6

आगे प्रश्न उपस्थित हुआ कि श्रीराम राज्याभिषेक हेतु आनीत पावन तीर्थ जल का क्या सदुपयोग किया जावे ?

मानस– देव देव अभिषेक हित, गुरू अनुसासन पाइ ।

आनेउँ सब तीरथ सलिलु, तेहि कहँ काह रजाइ ।। 2/307

महर्षि अत्रि ने इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा कि चित्रकूट गिरि के समीप अनादि सिद्ध स्थल अगाध कूप के रूप में स्थित है, उसमें यह पावन, अनुपम, अमृतमय तीर्थजल स्थापित किया जावे ।

मानस- अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप ।
राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ।। 2/309

स्वाभाविक तो यह प्रतीत होता है कि श्रीराम राज्याभिषेकहितार्थ आनीत पावन तीर्थजल से संयुक्त कूप का नामकरण "श्रीराम कूप" किया जाता, किन्तु महर्षि अत्रि की दृष्टि में प्रेम सनेम निमज्जन द्वारा मन वचन कर्म से त्रिकरण पवित्र करने वाले कूप की संज्ञा "श्रीभरत कूप" उचित प्रतीत हुई। इस प्रकार उन्होंने तीर्थजल के साथ श्रीभरत की प्रतिष्ठा संयुक्त की। "श्रीभरत कूप" महिमा का गुणगान करते हुए सभी श्रीरामदरबार में पहुँचे तथा इस पावन तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाकर प्रभु को भी आनंद मग्न कर दिया।

मानस- भरत कूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ।।
प्रेम सनेम निमज्जन प्रानी । होइहहिं बिमल करम मन बानी ।।

दोहा- कहत कूप महिमा सकल, गए जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायऊ रघुबरहिं, तीरथ पुन्य प्रभाउ ।। 2/310

अध्याय के समापन में "प्रेम–वल्लरी" के पद संख्या 8 में प्रेम के निराले पंथ की महिमा एवं विशेषता का रसास्वादन कीजिये।

प्रेम का पंथ निराला बतायो मेरे सद्‌गुरू ।
कमल तन्तु ते पतरो प्यारो, सूक्ष्म ते सूक्ष्म विशाला ।।
गुण ते रहित कामना हीना, एकांगी व्रत पाला ।
अनुभवगम्य अनिर्वचनीया, अमल अगाध रसाला ।।
तत् सुख सुखी स्वभाविक इक रस, वर्धमान सब काला ।
रसमय हृदय गुफा ते निकसत, ऊर्ध्व जात तजि जाला ।।
परम पवित्र दोष–दुख–दारक, पथिकहिं करत निहाला ।
"हर्षण" हरि–तोषक दिल–द्रावक, प्रेमिहिं बनै बिहाला ।।

अध्याय - चौदह

श्री प्रेमरामायणान्तर्गत श्रीराम-भरत-संवाद

अब करूणाकर कीजिअ सोई । जन हित प्रभु चित छोभु न होई ।।
जो सेवक साहिबहिं सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ।।
सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ।।

श्रीरामचरित मानस 2/268/2-4

पिछले अध्याय तेरह में मैथिल युवराज कुँवर लक्ष्मीनिधि की जिज्ञासा के प्रत्युत्तर में श्रीभरत ने दास्य भाव एवं प्रपत्ति–धर्म के विषय में अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट किये थे। अब इस अध्याय में श्रीभरत अपनी करूणा–विगलित वाणी में अपने प्रभु श्रीराम को अपना सिद्धान्त किन शब्दों में व्यक्त करते हैं, इसका अनुशीलन कीजिये। श्रीप्रेम रामायण के चित्रकूट काण्ड में यह संवाद प्रसाद–गुण परिपूर्ण रसमय वाणी में चित्रित किया गया है। सुधी पाठक इसकी रसानुभूति करें।

दोहा– आपन रूचि सिद्धान्त मैं, अह निशि छन छन केर ।
सबहिं सुनावत सुनहिं सो, रघुपति करहिं निबेर ।। 137 ।।

शतगुण आनँद आयसु पाले। होय हृदय हे दीनदयाले।।
मम रूख रखि निज रूखहिं दबाई। जो करिहैं निर्णय रघुराई।।
तौ मोहिं यहि अवसर दुख दाता। होय अवसि अस उरहिं जनाता।।
नित परतंत्र राम कर दासा। सेवन धर्म मोर सहुलासा।।
सीय राम सुख सुख निज जानी। तिन इच्छा इच्छा निज मानी।।
नहिं स्वतंत्र नहिं चाह जनाई। सेवक भाव नसै जेहिं पाई।।

दोहा– प्रभुहिं सँकोचै दासु बनि, निज स्वारथ के हेतु ।
दास धर्म तुरतहि नसै, करि विवेक चित चेत ।। 138 ।।

स्वामि प्रदत्त प्रसाद सुजानी। सुख दुख सह नित दास अमानी ।।
इक रस रहै प्रसन्न सदाहीं। किये समाधि प्रपति पथ माहीं ।।

मैं अरू मोर देय सब त्यागी। दास रमै रामहिं रस पागी ।।
जेहि बिधि स्वामि सहज सुख लहई। सोइ करै सेवक हिय गहई ।।
स्वामि स्वार्थ गुनि आपन स्वारथ। दास चलै मग नित परमारथ ।।
आपन स्वार्थ तनिक हिय आई। देय तुरत सम्बन्ध मिटाई ।।
जहॉ स्वार्थ तहॅ भाव न प्रेमा। स्वामी सेवक सेव न नेमा ।।
चारि पदारथ त्यागि कुआसा। स्वामी सेवन करै सुदासा ।।

दोहा– योग क्षेम तजि आपनो, दास शरण पथ होय ।
बनि अनन्य स्वामिहिं भजै, आपा डारै खोय ।। 139 ।।

स्वामि धर्म जहँ स्वारथ नाहीं। स्वारथ बिच नहिं स्वामि लखाहीं ।।
सेवक धर्म कठिन जग अहई। राम कृपा कोउ विरलहिं लहई ।।
राम कृपा चाहौं सोइ धर्मा। गति अनन्य शुचि दास सुकर्मा।।
सेंवक सुख हित सेवन प्रभु की। त्यागि आस अतिशय पद विभु की ।।
स्वामि सु आयसु निज सिर धारी। चलै सदा सेवक अविकारी ।।
आज्ञा सम नहिं सेवा कोपी। गनै सदा शुचि सेवक चोपी ।।
आयसु मानि नरक महँ रहई। कोटि कोटि दारूण दुख दहई ।।
सो सेवक अति प्रभुहिं पियारा। गुनि प्रसाद दुख सुख सिर धारा ।।

सोरठा– होय राम प्रतिकूल, बरूक निकट सब दिन रहैं ।
लहहि न सुख अनुकूल, आज्ञा मेटनहार जन ।। 140 ।।

इहै आस मन माहिं समाई। रहौं नाथ कर सदा कहाई।।
जहॉ चहैं जेहि विधि जेहि काला। मो कहँ राखैं दीन दयाला।।
वेद परम पद दुर्लभ गावा। बनि स्वतंत्र नहिं चहौं सुहावा।।
सहज स्वरूप दास परतंत्रा। मंत्री आश्रित जिमि कोउ मंत्रा।।
तेहिं ते अमित काल पर्यन्ता। पराधीन यह दास जियन्ता।।
मम सकोच तजि जानि अधीना। शरणागत चेतन मति हीना।।
साधनहीन समर्थ विहीना। प्रेम प्यास त्रासित अति दीना।।
शेष भोग्य आपन जिय जानी। देवहिं आयसु मोहिं प्रमानी।।

सोरठा– तनिक सँकोच न होय, मम दिशि देखि सुनाथ कहँ ।

सुख सह ढोइहौं सोय, आज्ञा सिर धरि रावरी ।। 141 ।।

मम सुख हित प्रभु देहिं रजाई। सेवा जानि लेहुँ अपनाई ।।
मोरे सरवस दीनदयाला। पावौं अति दुलार यहि काला ।।
सब विधि मन महँ नाथ भरोसा। नसिहैं आज सबहिं दुख दोषा ।।
मोरे प्रभु तुम एक अधारा। नहिं जानौं कछु और विचारा ।।
अहहिं नाथ प्राणन के प्राणा। जीव जीव सुख के सुख जाना ।।
राखहु शरण सदा अपनाई। झारौं पाँवरि नाथ सुहाई ।।
अस कहि भरत जाय प्रभु चरणा। पकरि परे गहि प्रेम अवरणा ।।
त्राहि त्राहि कहि रोवन लागे। फेरत कर प्रभु शीशहिं रागे ।।

दोहा– बहुरि उठाये गोद निज, सूँघि शीश दुलराय ।

निज कर कमल सुनयन जल, पोंछत दृगन बहाय ।। 142 ।।

श्रीराम ने श्रीभरत को गोद में बिठाकर वात्सल्य सुख प्रदान किया। एक बार पुनः गुरूजनों से विनयपूर्वक आज्ञा देने का अनुरोध किया। उनके निर्देशानुसार श्रीराम अत्यंत मार्मिक हृदय–स्पर्शी बचनों द्वारा भरत को सान्त्वना प्रदान करते हैं। श्रीप्रेमरामायण चित्रकूट कांड में मूल पाठ का अनुशीलन करिये।

सुनहु भरत मम प्राण पियारे। हौ मम जीवन सत्य सहारे ।।
साधु स्वभाव कार्पण गहहू। ह्वै अति दीन प्रेम पथ बहहू ।।
शरणागत चेतन अनुकूला। पै मोहिं लगत दुसह दुख मूला ।।
जौ तुम कहौ मोहिं लगि रामा। बसे आइ चितकूटहिं धामा ।।
मोहिं समान को पाप स्वरूपा। ठौर न मिलिहैं नरकन कूपा ।।
सो मो सन अब सुना न जाई। श्रवण परत रहिहौं पछताई ।।
अहह हृदय मम वज्र कठोरा। भरत गलानि सुनी सुख बोरा ।।
द्रवित होय हिय बहि नहिं गयऊ। बन्धु विकल लखि धीरज लयऊ ।।

दोहा– भरत प्रेम जस मोहिं पर, कियो त्याग सिरमोर ।

मैं न सकेउँ करि तिनहिं पर, लाज लगत लखि ओर ।। 144 ।।

छंद–मोहिं लाज लागति लखि भरत, धनि प्रेम सहज सुहावनो ।
नहिं होत सम्मुख मोर मन, सत सत भरत भल भावनो ।
बनि तात ऋणिया तोर मैं, करतो सदा तव ध्यान है ।
नहिं छनहु बिसरहुँ चित्त ते, लखि लेहु प्रेम प्रमान है ।। 1 ।।
तव नाम सुमिरत लोग सब, अरू चरित सुनि नवनेह करि ।
प्रिय प्रेम लक्षण भक्ति भलि, पैहैं अवसि आनंद भरि ।।
तजि काम इच्छहिं विरति मन, परमार्थ पथ शोधन करैं ।
वर धाम अच्युत पाइ जन, हर्षण मगन सुखमय चरैं ।। 2 ।।

सोरठा– **सुनहु तात मति धाम, अच्युत प्रेम प्रवाह नद ।**
तव सुख मोहिं विश्राम, सत्य सत्य वर वचन मम ।। 145 ।।

गुनहु प्रेम महिमा बड़ि ताता। मृतहिं बनावै अमृत भाता ।।
ममता अहं सुदूर भगाई। राग द्वेष की वृत्ति मिटाई ।।
मैत्री करूणा मुदिता देई । प्रेम देव जब कृपा करेई ।।
दुख सुख सम दर्शन मति होवै । बनै तितिक्षु क्षमा मति मोवै ।।
हिये बसत निशि दिन संतोषा । सम दम वृत्ति सहज सुख कोषा ।।
दृढ़ निश्चयी बनावत प्रेमा । मन बुधि परे भूल तन नेमा ।।
प्रेमास्पद कहँ आतम अरपी । जगत लखै तेहिमय तजि दरपी ।।
आनँद सिन्धु मगन दिन राती । प्रेम देव की कृपा विभाती ।।
अभय देय पुनि शान्तिहु देवैं । शक्ति अचिन्त्य प्रेम की धेवैं ।।

दोहा– **प्रेम रूप तुम भरत सत, दिव्य गुणन आगार ।**
विरह विवश बहु दुख दहें, मोरे प्राण पियार ।। 147 ।।

प्रथमहिं प्रेमी सेवक भावा। निज मुख कहि तुम सबहिं सुनावा ।।
तैसहिं रहनि करनि सुखकारी। बारेहिं ते मम प्रतिहिं तुम्हारी ।।
मम रूचि राखि सदा तुम ताता। चले प्रेम पथ पर सुख दाता ।।
सहज प्रीति पगि मोहिं सुख देई। बितये दिन एतने प्रिय धेई ।।
तेहि बल हिय कठोर करि भाई। छेदहुँ कंज बान झरि लाई ।।

काह कहौं अस समय करावा । नहिं मम दोष तनिक दरशावा ।।
जानि स्व करतब तजि रिस रागा । कहौं भरत सुन करि अनुरागा ।।
जानहु बंधु भानुकुल रीती । सत्यसंध निर्मल मन जीती ।।

दोहा– तेहि कुल उपजे रघु सदृश, त्याग शील महराज ।
सत्य संध दृढ़ व्रत धरी, जग महँ विरद बिराज ।। 148 ।।

रघुकुल भये मोर पितु नामी । जासु सुयश तिहुँ लोकहिं यामी ।।
सत्य वाक रत अति रणधीरा । दानि शिरोमणि सुमति प्रवीरा ।।
मो कहँ कहैं दाशरथि रामा । कोउ कहै रघुराज ललामा ।।
सो मैं पिता बचन अब काटी । केहि विधि जिऔं जगत सुख चाटी ।।
वचन राखि मोहिं अरू प्रिय प्राणा । त्यागे पिता सकल जग जाना ।।
तासु वचन राखन मम धर्मा । किये उलट बहु होय कुकर्मा ।।
जो कछु समय बिधाता दीन्हा । सहै बंधु दोउ बाँटि प्रवीना ।।
जो भय हरैं कहावै भाई । विपति परे महँ होय सहाई ।।

दोहा– अस विचारि सुनु भ्रातु प्रिय, जानु विपति कर काल ।
धरि धीरज दुख सब सहत, पिता वचन दृढ़ पाल ।। 149 ।।

यदपि कठिनता तुमहिं विशेषी । चौदह बरष बिना मोहिं देखी ।।
तदपि सहहु दुख प्रेम प्रवीरा । मम हिय चाह जानि मति धीरा ।।
होई सुजस धवल जग माहीं । दहें कनक जिमि विमल लखाहीं ।।
निज निज करहिं दोउ आचारा । तबहिं लोक शिक्षण सुकुमारा ।।
जस जस नृपति करहिं आचरणा । होय प्रजा तेहि मय श्रुति बरणा ।।
रघुकुल गौरव राखिहिं दोऊ । पिता वचन जिय धारैं जोऊ ।।
पितु बच पालन समय सुहावा । बड़े भाग सुत पावइ भावा ।।
निदरब ताहि उचित नहिं होई । निदरे नरक वास कर सोई ।।

दोहा– पितु की दीन्हीं बन अवधि, सम्मत मातु स्वभाव ।
त्यागब उचित न होय प्रिय, मेरो यही सुझाव ।। 150 ।।

तुमहुँ तात गुनि आयसु मोरी । पालहु पुहुमि अवधि दिन जोरी ।।
यामहँ तुम कहँ दोष न नेका । मम वच गौरव प्रीति विवेका ।।
गुरू मिथिलेश रहैं जहॅं प्यारे । तहॅं न सोच संकट दुख सारे ।।
गुरू प्रसाद करिहै रखवारी । अवधि रही मुद मंगलकारी ।।
मैं वन बसिहौं युत अहलादा । रक्षक रह नित गुरू प्रसादा ।।
हमहिं तुमहिं तजि बालहिं माहीं । पिता गये पर धामहिं काहीं ।।
भये अनाथ अवशि सब भाई । जननि सहित प्रिय प्रजौ दुखाई ।।
गुरू अरू राव सँभार सो कीन्हीं । मेटि शोक अवलंबन दान्हीं ।।

दोहा– तात सुनहु इनके रहत, हमहिं तुमहिं नहिं क्लेश ।
पितु इव रहहिं सनाथ सब, छोहहिं पाय विशेष ।। 151 ।।

अस विचार मुद मंगल मूला । पितु आयसु पालिय अनुकूला ।।
कुल मर्याद राखि दोउ भाई । रहिहैं इक सँग अवधि बिताई ।।
जस कहिहौ पुनि तैसहिं भ्राता । रहिहौं तुमहि सदा सुखदाता ।।
करन योग तुम यद्यपि प्यारा । तदपि दबायो बोझ उदारा ।।
लखि कठोर मोहिं जनि तुम ताता । करेहु असूया वचन कुभाता ।।
तव उर पीर जान मैं नीके । विरह सनी गुनि गाहक जी के ।।
तापर पुनि वच सुई चुभोई । पालहु अवध अवधि जिय जोई ।।
भरत अश्रु मैं ध्यान न दीन्हा । हाय दैव उर वज्रहिं कीन्हा ।।

दोहा– मनुज धरम क्षत्री धरम, रघुकुल धर्म महान ।
आर्य धर्म अतिहीं कठिन, विवश कियो मोहिं आन ।। 152 ।।

प्रभु श्रीराम अपने दुलारे भरत को इन मर्मस्पर्शी वचनों द्वारा उपदेश देते हुए विह्वल होकर अश्रुओं से अभिषेक करने लगे। भरत भी कंपित वदन, शिथिल तन, श्रवित नीर नयन, प्रभु के श्रीचरणों में गिर गये। दोनों बंधु हृदयालिंगन में बँधे हुए चिरकाल तक भावविभोर रहे। पुनः श्रीराम अपने हृदयहार भरत को सान्त्वनादायक वचन बोले।

दोहा– हृदय लाय धरि चिबुक कर, कहत राम रघुराज ।
कहहु अनुज तुम मोहिं गिने, कठिन हृदय का आज ।। 153 ।।

मन महँ कछु दुख तो नहिं माने। सहि लीन्हें किमि मम बच बाने ।।
गोद उतरि भल भरत सुजाना। मन प्रसन्न हिय हर्ष महाना ।।
बोले वचन भाव सरसाने। सबहिं बढ़ावत मोद महाने ।।
आजु सुफल भो जनम हमारा। सफल भयो पुनि साधन सारा ।।
योग ज्ञान फल पायो आजू। सेवन फल पुनि साधु समाजू ।।
पायो राम कृपा भरि पूरी। लहेउ न कोऊ प्यार अस भूरी ।।
सबहिं भाँति प्रभु दीन्ह बड़ाई। भूषण साधु समाज बनाई ।।
आज्ञा दिय मोहिं गुनि निज सेवा। राखेउ मोर दुलार सुदेवा ।।

दोहा– अमित भाग भाजन भयो, गये नाशि दुख दोष ।
मम सम नहिं तिरदेवहूँ, पाये प्यार सुकोष ।। 154 ।।

युगल बन्धु प्रेमानंद में निमग्न हैं। अतएव उनको इसी प्रेम विभोर दशा में रखते हुए इस अध्याय के समापन की ओर रूख करते हुए "प्रेम वल्लरी" का पद संख्या 54

प्रभु जी अब अपने न रहे ।
सबहिं भाँति भे प्रेमिन के वे, प्रेम प्रवाह बहे ।।
अह मम सर्वस सौंपि भक्त को, सेवक रहनि गहे ।
दौरि दौरि सब कार्य सम्हारत, पै नहिं कछुक चहे ।।
बिन देखे निज नेहिन तलफत, विरह के वन्हि दहे ।
आँख ओट नहिं होवन देवत, आशिक वृत्ति लहे ।।
पूर्ण ब्रह्म परमातम स्वामी, जेहिं श्रुति नेति कहे ।
"हर्षण" सो अनुरागिन पीछे, प्रभुता त्यागि अहे ।।

प्रेम वल्लरी पद संख्या 54

❁

❁ ❁

अध्याय – पन्द्रह

प्रेमी श्रीभरत के लिये प्रभु का पादुकावतार

अंतरजामिहु तें बड़े बाहेर जामि हैं रामु, जे नाम लिये तें ।
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों, बालक-बोलनि कान कियेतें ।।
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बाबरि बात बियेतें ।
पैज परें प्रहलादहु को, प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हियेतें ।।

कवितावली–उत्तर कांड पद संख्या 129

नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदयँ समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ।। 2/325

युगल–बन्धु के हृदय द्रावक संवाद को श्रवणकर चित्रकूट की सभा में उपस्थित सारा समाज प्रेमविभोर हो रहा था। सभी लोग रोमांच, पुलक, अश्रुपात आदि सात्विक भावों में मग्न होकर परमानंद में रसप्लावित हो रहे थे। एकदम निस्तब्धता छाई हुई थी। कियत् कालोपरान्त भरत की वाणी प्रस्फुटित हुई।

अब गोसाइँ मोहिं देउ रजाई । सेवौं अवध अवधि भरि जाई ।।
दोहा– जेहि उपाय पुनि पाय जनु, देखै दीनदयाल ।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसलपाल कृपाल ।।

2/313

श्रीराम ने सूत्ररूप में राजधर्म का रहस्य समझाते हुए राजा को मुख के समान निरूपित किया, जो देखने में ऐसा प्रतीत होता है कि वह सब कुछ वही खा पी रहा है। परन्तु वस्तुतः वह अपने पास एक कण भी नहीं रखता है। सब कुछ चर्बण कर सुपाच्य बनाकर अमाशय के माध्यम से रक्त रूप में सभी अंगों में पहुँचाकर उनको सुपुष्ट किया करता है। बस इतने में ही राजनीति का मर्म उसी तरह भरा हुआ है, जैसे मन में मनोरथों का अपार भंडार छिपा हुआ है।

दोहा– मुखिआ मुख सो चाहिऐ, खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ।। 2/315
राजधरम सरबसु एतनोई । जिमि मन माहँ मनोरथ गोई ।।

श्रीराम के उपदेश से आश्वस्त हो जाने पर भी बिना किसी सहारे के भरत को संतोष, धैर्य, शांति प्राप्त नहीं हो रही थी। वे बिना आधार प्राप्त किये व्याकुल हो रहे थे। वे पुनः प्रार्थना करते हैं कि मुझे वह सहारा तो अवश्य ही प्रदान करने की कृपा कीजिये, जिसका आश्रय लेकर तथा उसकी सेवा करके मैं चौदह वर्ष की अवधि को पा कर सकूँ।

सो अवलम्ब देव मोहिं देई । अवधि पारू पावौं जेहिं सेई ॥

2/307/8

भरत जिस अवलम्ब की प्रार्थनामय याचना कर रहे हैं, उनकी भावना के अनुसार वह अवलम्ब क्या हो सकता है ? यह अन्तर्यामी श्रीराम से छिपा नहीं है। वे भली भाँति जानते हैं कि भरत उनकी चरणपादुकाओं के भक्त हैं। मिथिला में सिद्धि–सदन की कोहवर लीला के एकान्तिक प्रसंग को मधुर रस के आचार्यों ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा है, जिसमें श्रीजनकनंदिनी की अंतरंगा सखियों ने श्रीराम पादुकाओं को वस्त्र से अवगुंठित करके देवी का स्वरूप बनाकर पूजनार्थ प्रस्तुत किया था।

मैथिली–विवाह पदावली में एतत्सम्बन्धी मधुर पद "लाल इन देवी के लागहु पायें" है, जिसमें सखियॉ दूलह राम से निवेदन करती हैं कि आप हमारी इन कुलदेवी जी को दण्डवत् प्रणाम करके इनका पूजन कीजिये। ये हमारी आराध्य भवानी हैं। इन्हीं की कृपा से आपको ऐसी अनुपम दुलहिन प्राप्त हुई है। राम तो सखियों की चतुराई समझ गये। उन्होंने कहा– "हमारे अनुज गण पूजन कर देंगे।" लक्ष्मण तो रामानुवर्ती हैं ही। जिस काम को बड़े भइया ने टाल दिया है, उसे वे कैसे करें ? अतः वे भी पृथक हो गये। भोले भाले साधु स्वभाव के श्रीभरत ने उन देवी को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। आखिरकार सखियों को एक दुलहा तो बुद्धू बनाने को मिल ही गया। उन्होंने अवगुंठन खोल दिया। सामने श्रीराम पनहियाँ प्रत्यक्ष रखीं थीं। सखियॉ सोचती थीं कि भरत लज्जित हो जावेंगे। परन्तु उनकी आशा के विपरीत भरत उन राम–पादुकाओं को सिर पर धारण करके उस कोहवर–कक्ष में ही नृत्य करने लगे कि आज मुझे अपनी आराध्य देवी मिल गई। वे सखियों को गुरू सदृश मानकर प्रणाम करने लगे कि आपने मुझे मेरे इष्टदेव की प्राप्ति कराई है। अतः आप मेरे लिए गुरू–तुल्य हैं। भरत के भाव से भावित होकर कोहवर कक्ष में श्रृंगार के स्थान पर भक्ति रस की धारा प्रवाहित हो गई। इस मधुर–रसमयी लीला पर संत "पतित जी" का भावपूर्ण पद उद्धृत किया जा रहा है।

बारहिं बार प्रनाम करत हैं ।

भरत प्रेमभक्ती सों सादर, राम पानहीं शरण परत हैं ॥
इष्टदेव ये भई हमारी, तुम सखियाँ गुरू जान परत हैं ।
राम पानहीं शरण लखे अब, मम हिय केर कपाट खुलत हैं ॥
एक प्रनाम राम पनहिन को, दूसर तुम्हहिं प्रनाम करत हैं ।
धन्य भरत रस केलि मध्य महँ, प्रेम उपासन ज्ञान भरत हैं ॥
अद्भुत भाव भरत को लखि के, नारि सबै मन बुधि बिसरत हैं ।
भरत मानि रहे गुरू नारिन को, नारि भरत कहँ गुरू करत हैं ।
"पतित" परस्पर दोउ गुरू मान्यो, ये उनको वे इनहिं नमत हैं ॥

वनपथ में अपने इन्हीं इष्टदेव का स्मरण करते हुए भरत प्रयाण कर रहे थे ।

मोरे सरन रामहिं की पनहीं । राम सुस्वामि दोसु सब जनहीं ॥

2/234/2

अब चित्रकूट की सभा में भरत मन ही मन श्रीराम से अपनी इन्हीं इष्टदेव की याचना कर रहे थे। श्रीराम के समक्ष दो कठिनाइयाँ थीं। एक तो श्रीराम विशेष उदासी वेश धारण करके पादुकाओं का भी त्याग करके वन में तपस्या कर रहे थे।

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ॥

2/211/8

दूसरी दुरभिसंधि थी कि समस्त गुरूजनों की उपस्थिति में अपनी पादुकायें प्रदान करना मर्यादा के विरूद्ध प्रतीत हो रहा था। अतः श्रीराम का संकुचित होना स्वाभाविक था।

भरत सील गुरू सचिव समाजू । सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥

2/316/3

अंततः भरत के प्रेम की विजय हुई। मानस के कतिपय मनीषी विद्वानों के मतानुसार आज श्रीराम को एक नवीन अवतार धारण करना पड़ा। जैसे अगले द्वापर युग में दुर्योधन की राजसभा में बहिन द्रौपदी की शीलरक्षा के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने वस्त्रावतार धारण किया था, जिसका वर्णन गोस्वामीपाद ने दोहावली के दो दोहों में इस प्रकार किया है।

सभा सभासद निरखि पट, पकरि उठायो हाथ ।
तुलसी कियो इगारहों, बसन बेष जदुनाथ ॥ 168 ॥

सब ओर से निरूपाय होकर अन्य की आशा त्यागकर तथा स्वयं अपना भी अवलम्बन छोड़कर एकमात्र शरणागत–वत्सल प्रभु का आश्रय ग्रहण करके जब द्रौपदी ने तीन बार "त्राहि–त्राहि–त्राहि" पुकारा, तो प्रथम त्राहि कहते ही वस्त्र बढ़ गया। दूसरी त्राहि से भगवान व्याकुल हो गये कि अब क्या किया जावे ? तीसरी त्राहि में चकित होकर अपने दुष्ट संहार कार्य का संकल्प कर लिया। इस प्रकार भक्त की एक भी पुकार व्यर्थ नहीं जाती । द्रौपदी की आर्त्त पुकार पर यादव पति भगवान् श्रीकृष्ण ने ग्यारहवाँ वस्त्रावतार धारण किया था–

त्राहि तीनि कह्यो दोपदी, तुलसी राज समाज ।
प्रथम बढ़े पट बिय बिकल, चहत चकित निज काज ।। दोहावली 169

भक्त की करूण पुकार पर व्याकुल होकर भगवान् सदा अवतार ग्रहण करते रहे हैं। सतयुग में भक्त शिरोमणि प्रहलाद ने पुकारा।

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ।।
1/26/4

कवितावली में गोस्वामिपाद ने चित्रित किया है कि प्रहलाद की अँगुली जिस ओर इंगित कर रही थी, वहीं से निकल पड़ने को भगवान आतुर हो रहे थे। अंततः "खंभ में"? प्रश्न का उत्तर "हाँ" सुनते ही उसी क्षण श्रीनृसिंह भगवान् पाषाण खंभ को विदीर्ण कर उसमें से प्रकट हो गये थे। निदान, भक्त लोगों का प्रेम और विश्वास बढ़ने से वे पाषाण–प्रतिमा की पूजा करने लगे।

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे ।
"राम कहाँ ?" सब ठाँउ हैं, "खंभ में", "हाँ" सुनि हाँक नृकेहरि जागे ।।
बैरि बिदारि भए बिकराल, कढ़ें प्रहलादहिं के अनुरागे ।
प्रीति–प्रतीति बढ़ी तुलसी, तब तें सब पाहन पूजन लागे ।।
कवितावली – उत्तरकांड–पद संख्या 128

अब त्रेतायुग में दूसरे भक्त शिरोमणि भरत सामने खड़े थे ।

राम भगत पर हित निरत, पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत ते,.. ।। 2/219

आज प्रभु का दुलारा भरत अपने लिए आधार देने हेतु आर्त्त–पुकार ही तो कर रहा था। उस दुलारे को "बिनु अधार मन तोषु न सांती" 2/316/2 की व्याकुल दशा में देखकर प्रभु श्रीराम ने पादुकावतार धारण किया ।

विचार कीजिये, पादुकाओं के रूप में भले ही प्रजा को प्राणरक्षा हेतु प्रहरी मिले थे। गूढ़ प्रेमी महाराज जनक के समान भरत को प्रेम रत्न सुरक्षित रखने हेतु सम्पुट (डिब्बा) के दोनों पलड़े जैसे थे। मंत्राराधक मुनिवरों को जीव के साधन "रा" और "म" के दो अक्षर दृष्टिगोचर हो रहे थे। माताओं की दृष्टि में दो कुलरक्षक किवाड़ जैसे थे। कर्मठ कलाकारों को कुशल कर्म हेतु दो हाथ जैसे थे, एवं सेवकों के लिए सेवाधर्म के मार्गदर्शक दो नेत्र थे । किन्तु प्रेममूर्ति भरत को तो जैसे साक्षात् सीताराम मिल गये थे। सचमुच वही करूणानिधान युगल सरकार युग पादुकायें बनकर उनके साथ चल रहे थे।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ।।
चरन पीठ करूनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।।
संपुट भरत सनेह रतन के । आखर जुग जनु जीव जतन के ।।
कुल कपाट कर कुसल करम के । बिमल नयन सेवा सुधरम के ।।
भरत मुदित अवलम्ब लहे तें । अस सुख जस सियराम रहे तें ।।

2/316/3–8

इसी संदर्भ में श्रीप्रेमरामायण में श्रीभरत द्वारा प्रभु–पद–पाँवरि शिरोधार्य करने पर वर्णित मर्मस्पर्शी दृश्य का परमानंद अनुशीलन करिये ।

सुनि गुरू राउ बचन रघुराई । शिर नत किये हृदय सकुचाई ।।
चरण पीठ निज करहिं उठाई । भरतहिं दिये प्रेम दृग छाई ।।
भरत दौरि आतुर हरषाने । पॉवरि धरे शीश रस साने ।।
"श्रीरामः शरणं मम" पागे । कीर्तन करन लाग अनुरागे ।।
अतिशय कृपा राम की जानी । नृत्यन लगे प्रेम सरसानी ।।
को हम कहाँ करैं का काजा । भूले भरत नेह नव भ्राजा ।।
प्रेम सिंधु उमड़ेव चहुँ ओरा । मिथिला अवध समाज विभोरा ।।
जय जय भरत राम जय देवा । कहत सुमन वरषहिं करि सेवा ।।
दुंदुभि हनत अनंद विभोरे । भरत प्रेम रस लेत हिलोरे ।।

दोहा– मिथिला अवध समाज हू, जय जय कहत विभोर ।
राम भरत शुचि प्रेम पगि, नृत्यन लगी हिलोर ।। 157 ।।

किंचित् काल तक सब सुधि बुधि भूलकर आनंद विभोर दशा में स्थित रहे। इस अवसर पर श्रीराम ने अपने ऐश्वर्य स्वरूप का दर्शन कराया। पूरा समाज कृतार्थ हो गया।

दोहा– श्यामल सुखकर चन्द्रमुख, निरखत मनहुँ चकोर ।
सुर नर मुनि आनँद भरे, तीनहु लोक विभोर ।। 162 ।।

दण्ड एक महँ सब थिर भयऊ। खड़े भरत सिर पॉवरि लयऊ ।।
कहेउ बहुरि धनि भाग हमारा। जो पै लहेउँ प्रसाद तुम्हारा ।।
पाइ पॉवरी पूत कृपाला । पूर्ण मनोरथ भो यहि काला ।।
रहि प्रभु साथ करत सेवकाई। पायों सुख सो आज सुहाई ।।
योग क्षेम सब अवधहिं केरा। करिय पादुका अवशि घनेरा ।।
सुख सह राखी प्रजहिं बसाई। चारहु फल देइय मन भाई ।।
सीय राम पद प्रेम अपारा। ज्ञान विराग योग शुभ सारा ।।
करि प्रदान पद त्राण विशेषी। सदा बढ़ाइय भाव अलेखी ।।
धरम करम जे वेद निरूपे। राखी जन जन सहज स्वरूपे ।।

दोहा– मो कहँ हिय विश्वास प्रभु, पाँवरि कृपा महान ।
अघटित घट अरू घट अघट, शक्ति अवध बस जान ।। 163 ।।

राम लखन सम मम हितकारी । चरण पादुका नाथ तुम्हारी ।।
अक्षर युगल रकार मकारा । तेहि सम जीवहिं करि भव पारा ।।
प्राण अधार नाथ पद त्राणा । जियौं अवधि लगि पाइ सुजाना ।।
पाँवरि आयसु प्रभु कैंकर्या । करिहौं सब विधि निज शिर धर्या ।।
प्रभु बिनु पाँवरि पाइ सहाई । प्रिय बहुरन हिय आस लगाई ।।
जियत करत गुरू मातु सुसेवा । देहुँ बिताय अवधि दिन देवा ।।
सकुचि छोड़ि इक विनय कृपाला । करहुँ सुनिय प्रभु प्रणतन पाला ।।
बीते अवधि प्रथम दिन नाथा । जो नहिं करिहैं आय सनाथा ।।
तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पइहैं । समय चुके बिरथा पछितैहैं ।।

दोहा– सत्य संध रघुनाथ तव, हौं प्यारो लघु भाइ ।
वृथा न कहौं समाज बिच, प्रभु सों कौन दुराइ ।। 164 ।।

कहत कहत अस हिय भरि आयो । सके न बोलि नयन जल छायो ।।
बहुरि गिरे प्रभु चरणन माहीं । लिय लगाय रामहु हिय पाहीं ।।
करि दुलार समुझाय अकामा । आवन कहेउ अवध सुख धामा ।।
भरत प्रेम लखि तिरहुत राजा । गुरू वसिष्ठ सह ऋषिन समाजा ।।
भे विभोर मति गई न तहँवा । मन थिति रही भरत की जहँवा ।।
प्रेम योग सरि कवनेहु योगा । करि न सकै यह शास्त्र नियोगा ।।
देखेव सब सो आँखिन माहीं । राम भरत गति अकथ अथाहीं ।।
प्राण प्राण रघुवीर पियारे । भरत भये तिन प्राण सहारे ।।

दोहा– अमित शक्ति प्रभु प्रेम में, कर्षे तीनहुँ लोक ।
कर्मठ योगी ब्रह्मविद, करि न सके निज रोक ।। 165 ।।

भरत प्रेम कणिका जल माहीं । डूबि गये तन मन सुधि नाहीं ।।
सबहिन आनँद लहे अपारा । जो निज साधन नाहिं निहारा ।।
ब्रह्मानंद सौं गुणो पाये । प्रेमानँद महँ गये लुभाये ।।
बड़े बड़े ज्ञानिहु जहँ भूलैं । तहँ की दशा कौन विधि तूलैं ।।

श्रीभरत ने श्रीराम पादुकाओं को सिर पर धारण करके प्रेमानंद में निमग्न होकर नृत्य किया। चित्रकूट की सभा में बड़े–बड़े कर्मकांडी, योगिराज, ब्रह्मविद् वरिष्ठ मुनिगण, विदेहराज जनक जैसे निर्लिप्त महापुरूष, अयोध्या–मिथिला के सुसंस्कृत प्रजागण, समाज में कौन ऐसा अभागा था, जो परमानंद में निमग्न न हो गया हो ? वहॉ ब्रह्मानंद से सौ गुणे अधिक प्रेमानंद का असीम साम्राज्य था। अतः अधिकारी अनधिकारी का भेद ही नहीं रह गया था। श्रीभरत के प्रेमविन्दु में डूबकर सभी विदेह बन गये थे।

राजनीति की दृष्टि से विचार करें तो श्रीभरत ने श्रीरामपादुकाओं को सिर पर धारण करके विश्व को यह संदेश दिया कि राजतंत्र हो या प्रजातंत्र, कोई भी तंत्र हो उसके सत्ताधारी को अपने आपको सत्ता का सेवक समझकर उसे आदरपूर्वक सिर पर धारण करना चाहिये। सत्ता की सेवा सेवक बनकर करना चाहिये, न कि स्वामी बनकर। तभी ऐसा सत्ताधारी कुशासन (कुश + आसन = कुशा के आसन) पर बैठकर सुशासन स्थापित कर सकता है। जबकि आज का सत्ताधारी सुआसन = सुन्दर आसन पर बैठकर कुशासन (कु + शासन = बुरा शासन) का

कहत कहत अस हिय भरि आयो । सके न बोलि नयन जल छायो ।।
बहुरि गिरे प्रभु चरणन माहीं । लिय लगाय रामहु हिय पाहीं ।।
करि दुलार समुझाय अकामा । आवन कहेउ अवध सुख धामा ।।
भरत प्रेम लखि तिरहुत राजा । गुरू वसिष्ठ सह ऋषिन समाजा ।।
भे विभोर मति गई न तहँवा । मन थिति रही भरत की जहँवा ।।
प्रेम योग सरि कवनेहु योगा । करि न सकै यह शास्त्र नियोगा ।।
देखेव सब सो आँखिन माहीं । राम भरत गति अकथ अथाहीं ।।
प्राण प्राण रघुवीर पियारे । भरत भये तिन प्राण सहारे ।।

दोहा– अमित शक्ति प्रभु प्रेम में, कर्षे तीनहुँ लोक ।
कर्मठ योगी ब्रह्मविद, करि न सके निज रोक ।। 165 ।।

भरत प्रेम कणिका जल माहीं । डूबि गये तन मन सुधि नाहीं ।।
सबहिन आनँद लहे अपारा । जो निज साधन नाहिं निहारा ।।
ब्रह्मानंद सौं गुणो पाये । प्रेमानँद महँ गये लुभाये ।।
बड़े बड़े ज्ञानिहु जहँ भूलैं । तहँ की दशा कौन विधि तूलैं ।।

श्रीभरत ने श्रीराम पादुकाओं को सिर पर धारण करके प्रेमानंद में निमग्न होकर नृत्य किया। चित्रकूट की सभा में बड़े–बड़े कर्मकांडी, योगिराज, ब्रह्मविद् वरिष्ठ मुनिगण, विदेहराज जनक जैसे निर्लिप्त महापुरूष, अयोध्या–मिथिला के सुसंस्कृत प्रजागण, समाज में कौन ऐसा अभागा था, जो परमानंद में निमग्न न हो गया हो ? वहाँ ब्रह्मानंद से सौ गुणे अधिक प्रेमानंद का असीम साम्राज्य था। अतः अधिकारी अनधिकारी का भेद ही नहीं रह गया था। श्रीभरत के प्रेमविन्दु में डूबकर सभी विदेह बन गये थे।

राजनीति की दृष्टि से विचार करें तो श्रीभरत ने श्रीरामपादुकाओं को सिर पर धारण करके विश्व को यह संदेश दिया कि राजतंत्र हो या प्रजातंत्र, कोई भी तंत्र हो उसके सत्ताधारी को अपने आपको सत्ता का सेवक समझकर उसे आदरपूर्वक सिर पर धारण करना चाहिये। सत्ता की सेवा सेवक बनकर करना चाहिये, न कि स्वामी बनकर। तभी ऐसा सत्ताधारी कुशासन (कुश + आसन = कुशा के आसन) पर बैठकर सुशासन स्थापित कर सकता है। जबकि आज का सत्ताधारी सुआसन = सुन्दर आसन पर बैठकर कुशासन (कु + शासन = बुरा शासन) का

निंदनीय उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

युग तुलसी पं. रामकिंकर उपाध्याय ने एक सुंदर भाव प्रस्तुत किया। जब भरत ने श्रीरामपादुकाओं को सिर पर धारण किया तो श्रीराम ने उनसे प्रश्न किया कि पादुकाओं को तो पद त्राण के रूप में उपयोग में लाया जाता है, न कि शिरस्त्राण के रूप में ? मैने तो तुम्हें आधार दिया था, परन्तु तुम तो भार की तरह सिर पर धारण कर ढो रहे हो। तो ये आधार हुए कि भार ? श्रीभरत ने उत्तर दिया– प्रभो मैने देखा है कि भारवाहक श्रमिक सिर पर बोझ रखने के पहले एक गोल कुंडी अपने सिर पर रख लेते हैं, फिर उस पर भार रखते हैं। तो उन्हें उस कुंडी के सहारे भार ढोना बहुत सरल हो जाता है। अतः मैने भी उनका अनुकरण करके कुंडी के रूप में इस सहारे को रख लिया है। अब इसके ऊपर अयोध्या के राज्य शासन का भार रखा जावेगा, तो उस भार को यही पादुकायें वहन करेंगी। मुझे वह भार सीधे अपने सिर पर वहन नहीं करना पड़ेगा। प्रभु इस चतुराई पर मुग्ध होकर सोचने लगे–तुम्हें तो आधार मिल गया। मुझे भी तो बताओ कि मैं किस आधार के सहारे यह अवधि पूर्ण करूँगा। मैं तो असहाय ही रह गया।

श्रीभरत चित्रकूट में ही श्रीरामराज्याभिषेक सम्पन्न करने के भाव से राजतिलक की सामग्री तथा अयोध्या का राजसिंहासन साथ में लेकर आये थे। मानस में वर्णन है–

कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू । बनहिं देब मुनि रामहिं राजू ।।

2/187/3

तदनुसार उन्होंने श्रीराम से प्रार्थना की कि,

तिलक समाजु साजि सबु आना । करिअ सुफल प्रभु जौ मनु माना ।।

2/268/8

यह प्रार्थना स्वीकृत होने का तो अवसर ही नहीं आया। अस्तु श्रीप्रेमरामायण में वर्णन आया है कि श्रीभरत ने गुरूदेव वशिष्ठ से प्रार्थना की कि राजसिंहासन पर श्रीरामपादुकाओं को विराजकर विधिवत् अभिषेक करने की आज्ञा प्रदान कीजिये। श्रीप्रेमरामायण के चित्रकूट कांड में इस मार्मिक प्रसंग का अनुशीलन करें।

छंदः– प्रभु पाइ आयसु भल भरत, द्रुत जाइ गुरू चरणन लगे ।
कर जोरि बिनवत प्रेम पगि, मन आस इक हिय महँ जगे ।।

जल कोटि तीरथ जो प्रभो, अभिषेक करि पद त्राणहीं ।
पुनि पूजि आदर भाव तें, नृप पद बिठा सुख पावहीं ।।
लखि लोग उत्सव सुठि सुखद, यहि ठौर आनँद मन भरैं ।
करि आस धीरज धारि पुनि, जन वर्ष चौदह तप करैं ।।
सुनि बैन गुरूवर हर्ष हिय, भरतहिं सुआयसु दीन्ह है ।
तुम अवशि पूजहु लाल पाँवरि, शरण हर्षण लीन्ह है ।।

सोरठ-सुनि सुनि तिरहुत राव, मगन होहिं प्रिय प्रेमजल ।
सुखद भरत भल भाव, सबहिं सिखावत प्रेम पथ ।। 167 ।।

भरत तुरत सब साज मँगाई । करन हेतु अभिषेक सुहाई ।।
कनक थार धरि प्रभु पद त्राना । करहिं शुभद अभिषेक महाना ।।
वेद मंत्र मुनिवरन उचारे । देखत नभ सुर भये सुखारे ।।
वरषि सुमन धुनि करत नगारा । जय जय छाये शब्द अपारा ।।
चढ़ी विमानन सुर मृग नयनी । नाचहिं गावहिं कोकिल बयनी ।।
तीरथ जल सों करि अभिषेका । पाँवरि दीन्हें आसन एका ।।
पूजे सविधि समय अनुहारी । भरत दिये परदक्षिण चारी ।।
करि वर विनय दण्डवत कीन्हे । हिय लगाय पुनि शीशहिं लीन्हें ।।
अश्रु जलहिं पुनि सींच सुहाये । सिंहासन पाँवरि पधराये ।।
छत्र चमर गहि निज कर माहीं । सेवत भरत खड़े पुलकाहीं ।।

दोहा- मिथिला अवध समाज दोउ, पाँवरि शरण सुलीन ।
यथा समय उत्सव मगन, छिन छिन भाव नवीन ।। 168 ।।

श्रीरामचरित मानस में श्रीराम पादुका–द्वय का राज सिंहासन में अभिषेकोत्सव अयोध्याधाम वापस पहुँचने पर सम्पन्न हुआ। श्रीवशिष्ठ जी का शुभाशीर्वाद प्राप्त कर ज्योतिष शास्त्र सम्मत सिंहासनारोहण, शुभ मुहूर्त्त पर, साक्षात् श्रीसीताराम की स्वरूपभूता इन पादुका–द्वय का विधिवत् राज्याभिषेक सम्पन्न कर, राजसिंहासन पर सुस्थापित किया गया।

सुनि सिख पाइ असीसबड़ि, गनक बोलि दिन साधि ।
सिंघासन प्रभु पादुका, बैठारे निरूपाधि ।। 2/323

तदनन्तर नित्य प्रति श्रीभरत विधिवत् षोडशोपचार पूजन आरती वंदन प्रार्थना सम्पन्न करके राज्य–कार्य में दत्त–चित्त होते थे। श्रीभरत द्वारा श्रीरामपादुका पूजन नित्य नैमत्तिक कार्य की तरह औपचारिक नहीं था, वरन् प्रीतिपूर्वक मनोयोग से पूजते थे, जिसमें प्रेम हृदय के भीतर समा नहीं पाने से अश्रु विन्दुओं द्वारा छलक–छलक जाता था। ऐसा भी नहीं है कि रूदनपूर्वक पूजा करने से वे राजकार्य में पर्याप्त ध्यान न दे पाते रहे हों। वे राजकार्य सतत्–चैतन्य रहकर निर्वहन करते थे। वे इस पादुका–पूजन को अपनी कर्म–पूजा से समन्वित करते थे। ऐसी स्थिति ही पद–मद को नियंत्रित करके सत्ताधारी को "कर्म ही पूजा है" का पाठ पढ़ाती है। श्रीभरत की कर्मपूजा का प्रत्यक्ष प्रमाण उनका अर्द्ध रात्रि में भी जागरूक रहकर अयोध्या की रक्षा में तत्पर रहना है।

नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
मागि मागि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति ।। 2/325

तात्पर्य यह है कि राजसिंहासन पर विराजमान इन पादुकाओं ने अपने अनुवर्ती भरत से एकान्तिक वार्तालाप किया है। उन्होंने प्रत्येक समस्या में अपने सेवक भरत को मार्गदर्शन दिया है। नंदिग्राम में साधनारत होने के लिए भी पादुकाओं से राजाज्ञा प्राप्त की थी। मानस में राजाज्ञा प्राप्त होने का स्पष्ट संकेत **"प्रभु पद पीठ रजायसु पाई"** 2/324/1 में अंकित किया गया है।

श्रीमद् "वाल्मीकीय रामायण" में भी स्पष्ट वर्णन है कि राज्य–कार्य सम्बन्धी जो समस्या समुपस्थित होती थी, उसे भरत पहले पादुकाओं से निवेदन करते थे, तदुपरान्त उनसे जैसा निर्देश मिलता था, तदनुसार कार्य सम्पन्न करते थे ।

तदा हि यत् कार्यमुपैति किन्चिदुपायनं चोपहृतं महार्हम् ।
सः पादुकाभ्यां प्रथमं निवेद्य चकार पश्चाद् भरतो यथावत् ।।

2/115/27

श्रद्धालु सुधी पाठकों को तो उक्त वर्णन में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न ही नहीं होगी, किन्तु कुतार्किक पाठकों के समाधान के लिए इस विषय में कुछ चर्चा आवश्यक प्रतीत होती है। भक्तमाल में तो अनेक दृष्टान्त उपलब्ध हैं जिनमें प्रतिमाओं ने भक्तों को साक्षात् दर्शन देकर उनके साथ लीलायें करके उन्हें कृतार्थ किया है। भक्तप्रवर श्री नामदेव के साथ पंढरीनाथ श्रीविट्ठल भगवान् की वार्ता एवं श्रीरामकृष्ण परमहंस के साथ दक्षिणेश्वर में माता काली देवी

की वार्ता सुप्रसिद्ध है। प्रतिमाओं की प्राण–प्रतिष्ठा होने से वे चैतन्यवत् व्यवहार करती हैं। वस्तुतः भक्त की प्रीति–प्रतीति उन्हें जड़ नहीं रखती, प्रत्युत् चेतन बना देती है। भक्तमाल में तो एक विचित्र मनोरंजक साथ ही विश्वास का महत्व प्रकट करने वाली घटना का वर्णन मिलता है।

एक भक्त कई महीने तक भगवान् श्री विष्णु की प्रतिमा का औपचारिक पूजन करता रहा। उनका दर्शन न पाने पर उसने निराश होकर भगवान् की मूर्ति हटाकर उसे आल्मारी के ऊपरी भाग पर रख दिया। भगवान् के स्थान पर अन्य देव की मूर्ति रखकर पूजा करने लगा। जब उसने अपने इन देव की पूजा में सुगन्धित अगरबत्ती लगाई, तो उसका धुआँ ऊपर की ओर गया। उसने सोचा कि मैंने जो सुगन्ध अपने इन नये देव को अर्पित की है, उसे वे भगवान् सूँघे जा रहे हैं। उसने क्रुद्ध होकर रूई लेकर भगवान् के नथुनों को बंद करने का प्रयास किया, ताकि वे सुगन्ध न ले सकें। जब वह इस क्रिया में संलग्न था, तभी भगवान् प्रकट हो गये । उसने चकित होकर प्रश्न किया– "प्रभो ! मैंने महीनों आपका पूजन किया, तब तो आपने दर्शन न दिया। जब मैंने आपका अपमान किया, तो कैसे दर्शन देने की कृपा कर दी ?" भगवान् ने उत्तर दिया– "इतने समय तक तुम मुझे पाषाण–प्रतिमा मानकर पूजन करते रहे। आज तुमने मुझे साक्षात् सजीव माना कि मेरी अर्पित सुगन्ध ले रहे हैं। जब तुमने विश्वासपूर्वक मुझे सजीव मान लिया, तो मुझे भी प्रत्यक्ष प्रकट होना पड़ा।" इस दृष्टांत का तात्पर्य यह है कि विश्वास से ही भगवान् की प्राप्ति संभव होती है। संस्कृत में प्रसिद्ध उक्ति है–

मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे, दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ।।

श्रीरामहर्षण लीला–पीयूष में संत श्री अवधकिशोरदास ने आचार्य महाप्रभु की प्रार्थना पर खजुरीताल आश्रम के श्रीकिशोरी जी के श्रीविग्रह की नासिका से श्वाँस प्रश्वाँस चलने की मार्मिक घटना का वर्णन किया है।

पुजारी श्रीरामऔतारदास शास्त्री केवल यांत्रिक ढंग से मंदिर की पूजा समय कुसमय सम्पन्न कर दिया करते थे। आचार्य महाप्रभु से उन्होंने उत्तर दिया था कि भगवान् कुछ ग्रहण थोड़ी करते हैं, अतः नैवेद्य का थाल दिखाकर ले आता हूँ। आचार्यपाद् ने आवेश में भरकर कहा– "देखिये ये अर्चा–विग्रह साक्षात् भगवान हैं। विश्वास नहीं हो तो अनुभव कर लीजिये। रूई के इस फोहे को श्री किशोरी जी के नासा–छिद्र के पास रखिये और फिर जैसा कुछ

अनुभव हो बताइये।" इस बीच आचार्यश्री ने श्रीकिशोरी जी से हार्दिक मर्मस्पर्शी प्रार्थना की ।

हे करूणामयि । शीलमयी, जड़ चेतन में जगी ज्योति तुम्हारी ।
व्यापक, ब्याप्य, सबै तुमही, सबमें प्रभुता प्रकटावन वारी ।।
आजु कृपा करिये इतनी, तव मूरति ले निश्वास सुधारी ।
पूर्ण करैं अभिलाष "किशोर", करूँ विनती मेरी राजदुलारी ।।

हृदय की मार्मिक पुकार सुनकर श्रीकिशोरी जी ने चमत्कारिक दृश्य उपस्थित कर दिया।

सुनकर वर आदेश रूई को त्वरित उठाया ।
नवल नासिका के समीप, फिर उसे लगाया ।।
विद्युत की सी इक प्रवाह गति गई समाई ।
दिव्य श्वाँस प्रश्वाँस प्रवाहित पड़ी दिखाई ।।
बोले अति आश्चर्य है, श्वाँस सिया की चल रही ।
भव्य भक्त भल भावना, सदा पली सो पल रही ।।

पुजारी ने भावविह्वल होकर पुनः आगे सेवापराध न करने की सौगन्ध खाकर आचार्य श्री को दण्डवत प्रणाम किया।

आचार्यपाद बाल–काल से ही मैथिल युवराज कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि के भावापन्न थे। एक महात्मा ने (जो भावोपासना रहस्य से अनजान थे) आक्षेप किया कि ये झूठे ही लक्ष्मीनिधि का स्वाँग रचते हैं। आचार्य श्री ने रीवा के समीप चिरहुला स्थान में विराजित सिद्ध स्वरूप श्रीहनुमान जी के समक्ष उपस्थित होकर प्रार्थना की–

हे हनुमान सुजान शिरोमणि, भक्त वृन्द सुखकारी ।
तुम आचार्य रसन पाँचहुँ के, जन मन रंजन हारी ।।
जो मम भाव सत्य है स्वामी, अनुमोदन तौं कीजै ।
कमल पुष्प जो शीश चढ़यो है, मोहिं प्रसाद में दीजै ।।
करत प्रार्थना शीश को, कमल फूल सोइ झरि परयो ।
पाई हनुमत की कृपा, विह्वल ह्वै महि सिर धरयो ।।

श्रीहनुमान जी से वांछित पुष्प–प्रसाद पाकर उसी प्रकार भाव सम्बन्ध की पुष्टि हुई, जिस प्रकार पुष्पवाटिका में श्रीगिरिजा माता द्वारा श्रीकिशोरीजी को श्रीराम जी की प्राप्ति हेतु माला का प्रसाद प्रदान किया गया था ।

बिनय प्रेम बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ॥

1/236/5

इस दास (लेखक) के आचार्यप्रभु की सेवा में रत रहने के समय की एक घटना की चर्चा प्रस्तुत की जा रही है। अयोध्या धाम के श्रीरामकुंज रामघाट मंदिर के लिए श्रीसीताराम जी के श्रीविग्रह लेने हेतु आचार्य श्री जयपुर पधारे। श्रीदीक्षित जी जज साहब के श्वसुर श्री कमलाकांत पाण्डेय के आवास पर विराजे। मूर्तिकार नित्य निर्देश लेकर तदनुसार श्रीविग्रह गढ़ रहा था, श्रीकिशोरी जी के श्रीविग्रह आचार्य श्री के भावानुसार बन गये, किन्तु श्रीराम जी के स्वरूप में प्रौढ़ता झलक रही थी। आचार्य श्री ने कहा– "ये तो बुद्ध भगवान जैसे उपदेशक दिखाई दे रहे हैं। हमें तो अपने दूलह सरकार चाहिये जो किशोर वय के हों, देखने में शर्मीले, मनमोहक, चितचोर प्रतीत हों।"

कई दिनों के प्रयास के बाद भी मूर्तिकार वैसे श्रीविग्रह बनाने में सफल न हो सका। तब यहाँ तक कह दिया गया कि तुम इन मूर्तियों को अन्यत्र विक्रय कर देना। इन्हें हम न ले जावेंगे। मूर्तिकार की प्रार्थना पर उसे एक दिन और प्रयास करने का समय दिया गया। उसी रात्रि आचार्य श्री ने रोकर अपने भाम श्रीराम से प्रार्थना की। वे स्वप्न में पधारे तथा पूछा "हम आपको सुंदर नहीं लग रहे हैं ?" इस ब्रह्मवेला के स्वप्न की चर्चा आचार्य प्रभु ने हम लोगों से की तथा प्रातः कालीन नियम पूजा के समय श्रीरामचरित मानस की प्रति खोलते ही यह प्रसंग निकला।

जौ छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंदरू सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ॥

दोहा– एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय समतूल ॥ 1/247

निदान स्वप्न की परिपुष्टि हो गई। यथा समय मूर्तिकार की दूकान पर पहुँचे। वह मूर्तियों के कक्ष में अंदर गया तथा वहीं से आश्चर्यमग्न पुकार करता बाहर आया। "यह तो मेरी बनाई मूर्ति नहीं है। न जाने रात्रि में कौन इन्हें बना गया है। मेरे हाथों में तो इतनी नाजुक मूर्ति बनाने की कला ही नहीं है।" कहने की आवश्यकता नहीं है कि आचार्य श्री की प्रार्थना पर जड़ प्रस्तर में चेतन स्वरूप दूलह श्रीराम प्रकट हो गये। इन्हीं श्रीविग्रहों की प्राण प्रतिष्ठा श्रीराम कुंज में हुई तथा इन्हीं के अनुकरण पर आचार्य महाप्रभु के स्थापित निम्नांकित स्थानों पर दूलह दुलहिन

युगल सरकार विराजमान हुए हैं। इन सभी स्थानों पर आचार्य महाप्रभु के कृपापात्र पुजारीगण मनोयोग एवं भावपूर्वक सेवा पूजा सम्पन्न करते हैं। उन्हें समय समय पर श्रीसीताराम जी की कृपानुभूति प्राप्त होती है।

(1) श्री मिथिला बिहारी कुँज खजुहा जिला रीवा (म.प्र.)

(2) श्री सिद्धि सदन अयोध्या धाम नया घाट (उ.प्र.)

(3) श्री रामहर्षण कुँज मंदिर पी.टी.एस.चौराहा रीवा (म.प्र.)

(4) श्री रामहर्षण कुँज मंदिर शाहनगर जिला पन्ना (म.प्र.)

(5) श्री रामहर्षण कुँज मंदिर विजयराघवगढ़ जिला कटनी (म.प्र.)

(6) श्री रामहर्षण कुँज मंदिर केरबना जिला सागर (म.प्र.)

(7) श्री रामहर्षण कुँज मंदिर शहर के उत्तरी छोर पर टेकरी स्थित मंदिर जिला–सीधी (म.प्र.)

(8) श्री रामहर्षण कुँज श्री राधाकृष्ण मंदिर मुट्ठीगंज प्रयाग (उ.प्र.)

(9) श्री रामहर्षण कुँज श्री मिथिला बिहारी मंदिर साजा (छत्तीसगढ़)

(10) श्री रामहर्षण कुँज श्रीसीताराम मंदिर राँगी जिला गोंडा (उ.प्र.)

(11) श्री रामहर्षण कुँज आचार्य पीठ पौंड़ी धाम जिला सतना (म.प्र.)

(12) चित्रकूट धाम में श्रीप्रेमरामायण मंदिर का निर्माण प्रगति पर है ।

संत प्रवर श्री अवधकिशोरदास द्वारा इनकी वंदना–

जय अर्चाविग्रह सियराम ।
जय अति मधुर, मनोहर, सुंदर, पावन शोभा धाम ।।
खजुरी सर के मधुर युगलवर, खजुहा के प्रभु रूप निधान ।
मिथिलापुरी बिहारी जय जय, हे मदीय जीवन हे प्रान ।।
रामकुंज के सियरघुवर जय, रीवा के दूलह वपु श्याम ।
सिद्धि सदन के नैन विमोहन, छबि निधान अतिशय अभिराम ।।
शाहनगर के मिथिल बिहारी, प्रकटावत माधुरी ललाम ।
विजयराघोगढ़ के मन भावन, जय जय मिथिला वल्लभ राम ।।

जानकि वल्लभ लाल जयति जय, सीधी के ठाकुर रसधाम ।
विविध स्वरूप सुलभ भये सब कहँ, शिरसा मनसा आजु प्रणाम ।।
श्री हर्षण प्रभु के प्रगटाये दुलराये दिये मंजुल नाम ।
"दास किशोर" प्रणतजन पालहु, जारत मोहिं दुसह भव धाम ।।

श्री प्रेमरामायण साकेत कांड में श्री जनकराज नंदनी के वियोग में व्याकुल भाभी श्रीसिद्धिकुँवरि को कोहवर कक्ष में दुलह राम की पनहियाँ प्राप्त हुई थीं। उन्हें शिरोधार्य करके पति मिथिलेश कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि को सौंपती हैं। युगल दम्पति श्रीराम पनहियों को रत्नसिहांसन पर विराजकर भावपूर्ण पूजन क्रम अपनाते हैं।

प्यारी मोहिं राम पद त्राणा । जीवन यात्रा भई विधाना ।।
ताते मोरे हित चित लाई । पाँवरि पूजन बनहु सहाई ।।
कही कुँअरि पिय धनि धनि भयऊँ । मो कहँ आदर जो प्रभु दयऊ ।।
यहि प्रकार दम्पति अनुरागे । प्रभु पनहीं नित पूजन लागे ।।

श्री प्रेमरामायण साकेत कांड 118/5–8

श्री प्रेमरामायण में मिथिलेश कुँवर श्रीलक्ष्मीनिधि तथा श्रीसिद्धिकुँवरि की वंदना के श्लोक में उन्हें श्रीराम पनहियाँ प्रपूजक दर्शाया गया है –

प्रेमसिंधौ सदा मग्नं वैदेहं जनकात्मजम् ,
महाभावे समासक्तं लक्ष्मीनिधिं स सिद्धिकम् ।
यो नाप्नोति पिबन्तृप्तिं सीताराम कथामृतम् ,
वन्दे तं हि रसाकारं रामोपानत्प्रपूजकम् ।।

इसी आदर्श का अनुसरण करके आचार्य महाप्रभु श्री रामहर्षणदास ने श्रीराम पनहियों को अपना आराध्य बना लिया है। श्रीराम पादुका पूजन ही आचार्य श्री की उपासना पद्धति का प्राण है। प्रेमेच्छु भक्त जनों के लिए आचार्य श्री द्वारा श्रीराम पनहियों की आरती एवं प्रार्थना उपादेय होने से तत्सम्बन्धी उद्धरण समीचीन हैं।

श्री राम–पनहियन की आरती

आरति श्री सियराम पनहियन की ।
जग जग ज्योति मुनिन मन मोहियन की ।।

मानत अपनी इष्ट अधारी । जेहिं अभिषेकत अँसुअनधारी ।।
शरण शरण मुख गिरा उचारी । जनक सुवन सिर सोहियन की ।।
जग जग ज्योति मुनिन मन मोहियन की ।।

स्वर्ण सिंहासन छत्र विराजे । चँवर ढुरत सिद्धि सजि साजे ।।
नृत्य गीत वर वाद्य बिराजे । रत्न जटित छबि छोहियन की ।।
जग जग ज्योति मुनिन मन मोहियन की ।।

प्रजा प्राण की प्रहरी मानो । प्रेम रत्न की सम्पुट जानो ।।
युग विभूति जनु प्रकट बखानो । उभय आँख अभ्यंतर जोहियन की ।।
जग जग ज्योति मुनिन मन मोहियन की ।।

जीव यत्न हित मन को भावत । मनहुँ रकार मकार सुधावत ।।
कुल कपाट कर कर्म सुहावत । राम लखन सम आनँद दोहियन की ।।
जग जग ज्योति मुनिन मन मोहियन की ।।

सर्वस दानि देत साकेता । राम सिया को प्यार पुनीता ।।
अरू कैंकर्य स्वसुख को जीता । "हर्ष" शरण प्रभु पाद पनहियन की ।।
जग जग ज्योति मुनिन मन मोहियन की ।।

(आरती भावान्जलि से उद्धृत)

श्रीराम-पादुका-प्रार्थना

जय परम प्रभु पद पादुके, प्रिय प्रणत जन सुखदायिनी ।
प्रभु प्रेम पूर्ण पियूष प्रद, जो परम आनँद लायिनी ।।
शुचि कर्म विरती योग ज्ञानहु, भक्ति भर चित चायिनी ।
गति अन्य नहिं जेहिं के अहर्निशि, योग क्षेमहिं छायिनी ।।
सियराम उर करूणा कृपा कहँ, भक्त हित उपजायिनी ।
अह-मम-अविद्या-आस-नाशिनि, दुःख दोष दुरायिनी ।।
"हर्षण" तुम्हारी आस केवल, शरण आयो ज्ञायिनी ।
निज माथ मणि करिके तुम्हें, चह प्रीति प्रभु अनपायिनी ।।

आचार्य महाप्रभु प्रणीत विनय वल्लरी पद 113

संत श्री अवधकिशोरदास (भइयाजी) द्वारा रचित श्रीहर्षण अष्टयाम में आचार्य महाप्रभु के पादुका–पूजन–पद्धति–प्रदर्शक पद

रघुवर पाँवरि पूजन लागे।
सम्पुट उचरत पुलकत तन मन, सात्विक प्रेम भाव सब जागे।।
दोउ कर कमल उठाइ पाँवरी, शीश धर्यो राख्यो दृग आगे।
धूप दीप तुलसीदल चंदन, पुष्पमाल अरप्यो रस पागे।।
आनँद भरे उतारत आरति, नित्य स्वरूप भाव अनुरागे।
"दास किशोर" दोउकर जोरे, स्तुति करत कलह कलि भागे।।

प्रतिमाओं द्वारा अपने पूजक भावुक भक्तों से चैतन्यवत् वार्ता करने के प्रमाण प्रस्तुत करने के बाद भी यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या लेखक की भी कोई अनुभूति है, जिसमें प्रतिमा ने प्रेम के प्रत्युत्तर में कोई संकेत प्रदान किया हो। भक्त– प्रवर काकभुसुंडि को इसीलिए यह कहना पड़ा कि

कहेउँ न कछु करि जुगुति बिशेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी ।।

महात्मा कबीर की यह विश्वासपूर्ण उक्ति थी–

तू कहता कागद की लेखी। मैं कहना आँखिन की देखी ।।

अस्तु एक घटना का संक्षिप्त विवरण सेवार्पित किया जा रहा है। जब यह दास अजयगढ़ जिला पन्ना में शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में व्याख्याता पद पर कार्यरत था, तो एक वैवाहिक कार्य वशात् ग्राम पुंगरी तहसील नरैनी जिला बाँदा (उ.प्र.) गया था। वहाँ एक बाग में श्रीहनुमान जी की सिद्ध प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। उनके दर्शनार्थ अपने विद्यालय के शिक्षक श्रीराम औतार तिवारी के साथ गया। श्रीहनुमान जी के समक्ष खड़े होकर नेत्र मूँदकर भाव विभोर दशा में श्रीहनुमान चालीसा का पाठ करने लगा । पाठ चल ही रहा था कि मुझे श्रीराम औतार तिवारी ने झकझोर कर चिल्लाते हुए कहा– "मास्टर साहब, पाठ बंद करिये। आप श्रीहनुमान जी को रूला रहे हैं। देखिये उनके नेत्रों से आसुओं की धार बह रही है।" दृश्य यथार्थ था। हम दोनों श्रीहनुमान जी की कृपानुभूति पाकर धन्य हो गये थे। इस घटना का वर्णन श्री रसिकेश्वरदास पूर्व नाम न्यायमूर्ति श्री आर.बी. दीक्षित लिखित "प्रेमावतरण" ग्रंथ के प्रथम खंड में पृष्ठ 82 पर प्रकाशित हो चुका है।

प्रेममूर्ति श्री भरत द्वारा प्रभु–पद–पॉवरि पूजन की मार्मिक विधि के वर्णन युक्त आचार्य महाप्रभु प्रणीत विनय–वल्लरी के पद संख्या 112 के उद्धरण के साथ इस अध्याय का समापन–

प्रभु पद-त्राण पूजि सुख पावत ।
देखत भरि दृग नेह वारितें, नित्य नित्य नहवावत ।।
नयन शीश हिय बार बार बहु, छटपटात छ्पकावत ।
वस्त्र पौंछि इत्रादि अरपि पुनि, चंदन पुष्प चढ़ावत ।।
प्रेम विभोर आरती फेरत, गिरत भरत भहरावत ।
रूदत राम हा राम सिया कहि, नयन नीर बरषावत ।।
पुनि उठि सिर धरि राम पादुका, रामः शरणं गावत ।
"हर्षण" हा कब राम पनहियाँ, पुजिहौ नेह नहावत ।।

अध्याय - सोलह

वियोगावस्था में प्रेमी श्रीभरत की रहनि

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।

श्रीमद् भगवद्गीता अध्याय 8/7

श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने जिज्ञासु अर्जुन को आदर्श जीवन प्रणाली का उपदेश देते हुए कहा कि तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन–बुद्धि से युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा।

कविवर रहीम के समक्ष यह भीषण समस्या थी कि संसारी लोगों से यथावत् व्यवहार करते हुए सफल सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए ईश्वर की प्राप्ति कैसे संभव हो सकती है, क्योंकि लोगों से मुँहदेखी का झूठा व्यवहार करना पड़ता है। तभी वे प्रसन्न रहते हैं। अगर मुँहदेखी बनावटी बात न करें, तो वे रूष्ट हो जाते हैं। एक लौकिक कहावत है– "साँची बात सचुल्ले कहैं, सबके मन से उतरे रहैं।" उधर ईश्वर तो अन्तर्यामी है। उसे झूठ पसंद नहीं है। झूठा व्यवहार करने पर हम ईश्वर को कभी नहीं पा सकते। दोनों ओर सफल निर्वाह करना अत्यंत कठिन है।

अब रहीम मुश्किल परी, गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे को तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ।।

निदान, अपनी इस कठिन समस्या के समाधान के लिए उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को पत्र लिखा। हम संसार और ईश्वर दोनों को एक साथ कैसे प्राप्त करें क्योंकि इन दोनों में छत्तीस का आँकड़ा लग रहा है। दो घोड़ों पर एक साथ सवारी कैसें संभव है? दोनों घोड़े अलग–अलग दिशा में खींचतान करेंगे। अतः स्वाभाविक है कि दो घोड़ों का घुड़सवार धराशायी हो जावेगा।

चलन चलैं संसार की, मिलन चहैं करतार ।
कह रहीम कैसे निभै, दो घोड़ा असवार ।।

गोस्वामी तुलसीदास ने इस जटिल प्रश्न का समाधान करते हुए प्रत्युत्तर में लिखा आप सदा सर्वकाल में ईश्वर चिंतन करते हुए अपने आप को ईश्वराधीन करके उसके निर्देशानुसार

लोक व्यवहार करिये। फिर तो दोनों घोड़ों को एक रथ में दायें–बायें जोतकर रथ का सारथी ईश्वर को बना दीजिये। निःसंदेह आप संसार में सफल जीवन के साथ ईश्वर की प्राप्ति कर लेंगे।

चलन चलौ संसार की, हरि सों राखो टेक ।
यों तुलसी बन जाय ज्यों, दो घोड़ा रथ एक ।।

यह है श्रीमद् भगवद्गीता के उक्त श्लोक में वर्णित सफल जीवन जीने की कला। यही तो श्री भरत जीवन शैली है। श्रीराम का वनवास धर्म–मर्यादा रक्षणार्थ था। उन्होंने पिता की आज्ञा पालनार्थ वान–प्रस्थ व्रत ग्रहण किया था। इसमें उन्हें कोई हर्ष विषाद न था। माता कौशल्या ने वन प्रस्थान करते समय का चित्रण भरत से किया था।

पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ।। 2/165

तदनुसार वे चित्रकूट में मंदाकिनी तट पर पर्णकुटी बनाकर निवास कर रहे थे । निषादराज गुह ने श्री भरत से कहा था।

ए तरू सरित समीप गोसाई । रघुबर परनकुटी जहँ छाई ।। 2/237/6

इसकी तुलना में श्रीभरत पितृ–प्रदत्त राज्य को स्वेच्छा से त्याग कर अयोध्या नगर से बाहर नंदिग्राम में पर्णकुटी बनाकर तपस्यारत हुए हैं। उन्होंने श्रीराम के बराबर भूमि में निवास उचित नहीं समझा अतः सेवक धर्म के नाते प्रभु से नीचा आसन होना आवश्यक है। अतः पृथ्वी को खोदकर नीचे भुइँधरा के रूप में अपना निवास स्थान बनाया है।

नंदिगाँव करि परन कुटीरा । कीन्ह निवास धरम धुरधीरा ।।
जटाजूट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ।।

2/324/2–3

वे पहले भी वन–पथ में जाते समय इस सेवाधर्म की गुरूता का निरूपण कर आदर्श प्रस्तुत कर चुके थे।

राम पयादेहिं पॉय सिधाये । हम कहँ रथ गज बाजि बनाये ।।
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ।।

2/203/6,7

वीतराग तपस्वी श्रीभरत की नियम निष्ठामय रहनि का गीत गाते हुए गीतावली रामायण में कवि–कुल–चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास स्वयं भाव विभोर हो गये हैं। तत्सम्बन्धी मार्मिक चित्र दो गीतों में दर्शन करते हुए किस सहृदय का चित्त भाव विभोर होकर द्रवित न हो जावेगा ?

जब तें चित्रकूट तें आये ।

नंदिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परनकुटी करिछाये ।।

अजिन बसन, फल असन, जटा धरे, रहत अवधि चित दीन्हें ।

प्रभु-पद-प्रेम नेम व्रत निरखत, मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ।।

सिंहासन पर पूजि पादुका, बारहिं बार जोहारे ।

प्रभु अनुराग माँगि आयसु, पुरजन सब काज सँवारे ।।

"तुलसी" ज्यों ज्यों घटत तेज तनु, त्यों त्यों प्रीति अधिकाई ।

भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ, भुवन भरत से भाई ।। पद संख्या 79

श्री भरत की अकथनीय रहनि सम्बन्धी दूसरी झाँकी का दर्शन कीजिये ।

मोहिं भावति, कहि आवति नहिं, भरत जू की रहनि ।

सजल नयन, सिथिल बयन, प्रभु-गुण-गन कहनि ।।

असन-बसन-अयन-सयन, धरम गरूअ गहनि ।

दिन दिन पन प्रेम-नेम, निरूपधि निरबहनि ।।

सीता-रघुनाथ-लखन-विरह-पीर सहनि ।

"तुलसी" तजि उभय लोक, राम-चरन-चहनि ।। पद संख्या 81

इन गीत पदों की रचना करते समय महाकवि का हृदय कैसा विदीर्ण हो रहा होगा ? कैसे–कैसे अश्रुपात करते हुए एक–एक शब्द उनसे लिखे गये होंगे ? अद्यावधि इन गीतों के अंतराल में झाँकते हुए सहृदय भक्तगण फूट–फूटकर रोते हैं।

गीतावली रामायण के पूर्व पद संख्या 76 में वर्णित है कि भरत श्रीराम से यह सौगंध खाकर चित्रकूट से अवध के लिए प्रस्थित हुए थे, कि यदि आप अवधि बीतते ही अगले दिन अयोध्या पहुँच कर दास को दर्शन न देंगे, तो आपका यह दास जीवित न मिलेगा।

"तुलसी" बीते अवधि प्रथम दिन, जौ रघुबीर न ऐहौ ।

तौ प्रभु चरन सरोज सपथ, जीवित परिजनहिं न पैहौ ।।

गीतावली अयोध्या कांड पद 76 / 4

तदनुसार अवधि के अंतिम दिन का एक–एक क्षण भरत को कल्प सदृश प्रतीत हो रहा था। वे निरन्तर इसी सोच में कालयापन कर रहे थे कि अगर अवधि बीतते ही मेरे प्राणों ने इस अधम शरीर को न छोड़ा, तो मुझसे महान पापी ब्रह्मा की सृष्टि में कोई न होगा।

बीतें अवधि रहहिं जौ प्राना । अधम कवन जग मोहिं समाना ।। 7/1/8

प्रेमोन्मत्त भरत की यह विह्वलता श्रीराम के हृदय में भी ऐसी ही छटपटाहट पैदाकर रही थी। वे विभीषण से निहोरा कर रहे थे कि यदि अवधि बीतते ही मैं अयोध्या नहीं पहुँचा, तो मेरा दुलारा भरत मुझे जीवित न मिलेगा। अतः मैं तुम्हारा आभार मानूँगा कि तुम ऐसा यत्न कर दो, ताकि मैं समयावधि में पहुँचकर अपने भाई को हृदय से लगा सकूँ। अन्यथा मुझे भय है कि मैं सदा–सदा के लिए अपने दुलारे भाई को न खो दूँ।

तोर कोस गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहिं, निमिष कल्प सम जात ।। 6/116/(क)
तापस बेष गात कृस, जपत निरंतर मोहिं ।
देखौं बेगि सो जतन करू, सखा निहोरउँ तोहिं ।। 6/116/(ख)
बीते अवधि जाउँ जौ, जियत न पावउँ बीर ।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु, पुनि पुनि पुलकि सरीर ।। 6/116/(ग)

निदान, अवधि के अंतिम दिन नंदिग्राम में प्रेमभावमूर्ति, भाव–रस–सागर में आकंठ निमग्न, श्रीभरत, जो चौदह वर्ष अनवरत रूप से "राम राम रघुपति जपत, श्रवत नयन जलजात" 7/1(ख) की दशा में मग्न थे, उनका दर्शन करके "रामायण–श्रवण– संजात–रोमांच, लोचन सजल, शिथिल वाणी" "राम–पद–पद्म–मकरंद–मधुकर", हनुमान (विनय पत्रिका पद 29) हर्षमग्न होकर पुलकित शरीर से प्रेमाश्रु धारा बहाते हुए अपनी देह की सुधि–बुधि भूल गये थे।

देखत हनूमान अति हरषेउ । पुलक गात लोचन जल बरषेउ ।।

7/2/1

ऐसी झाँकी का दर्शन करने वाले भक्तगण के लिए ही महाकवि की यह सटीक टिप्पणी है–

कहत सुनत सति भाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ।।
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को । जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ।।

2/304/2,3

श्रीराम जिन नियमों का पालन वाणप्रस्थ–मर्यादा रक्षण हेतु करते हैं, उनका परिपालन

प्रेम–निष्ठाव्रती श्रीभरत स्वेच्छा से कर रहे हैं। वास हेतु पर्णकुटी एवं शयन हेतु कुश की केवल साँथरी निर्मित की गई है। उनका उपयोग कहाँ हो पा रहा है? शयन करने के लिए श्रीभरत के पास समय ही कहाँ है ? अहर्निश अश्रुधारा बहाते हुए राम–राम–राम की रट लगाने वाले के नेत्रों में नींद के लिए स्थान ही कहाँ है ? वह तपस्वी शिलोन्छ–वृत्ति से यत्किंचत् भगवत्प्रसाद ग्रहण कर लेता है। अन्यथा उसे उदर–पोषण की सुधि ही कहाॅ है ? समस्त नेम–व्रत का निर्वाह कष्ट–पूर्वक नहीं, प्रत्युत सरस प्रेमपूर्वक चल रहा है। विद्वानों की ठीक ही उक्ति है– "हृदय में राम–प्रेम, बुद्धि में वैराग्य और आचरण में त्याग तथा कर्तव्य कर्म के रूप में श्रीराम द्वारा सौंपे गये अयोध्या शासन के लिए सतत् जागरूकता, यह है उस महाव्रती का संक्षिप्त परिचय।"

किले के अन्दर रहकर युद्ध करने वाले योद्धा से मैदान में खड़े होकर लड़ने वाला योद्धा सराहनीय माना जाता है। श्रीराम तो वन में रहते हुए तपस्वी बने हैं, जो तपस्वियों के लिये किले की तरह सुरक्षित स्थान है। श्रीभरत अयोध्या नगर के वैभव– विलास के मध्य रहकर तपस्वी बने हैं, अर्थात् वे मैदान में खड़े होकर युद्धरत हैं। देवेन्द्र–दुर्लभ वैभव–विलास के मध्य रहकर तपस्यारत रहना अत्यंत दुष्कर होता है। यह सुदुष्कर कर्तव्य–पालन या तो वीतराग विदेहराज जनक जैसे परम योगी के लिए संभव था, या जन्मजात परमहंस शुकदेव जैसे महर्षि इसे संभव बना सकते थे। उसे भरत ने अपने जीवन में वैसे ही सहज भाव से पालन करके प्रमाणित किया, जैसे रसग्राही भौंरा चम्पक वन में निर्लिप्त रहता है। कहा जाता है कि रस–लोलुप मधुप सर्वत्र रसग्राही होते हुए भी चम्पक–पुष्प को मातृवत वन्दनीय मानकर ही उसका रस भोक्ता नहीं बनता। इस विषय में दो दोहों में प्रश्नोत्तर उपलब्ध है।

प्रश्नः– चम्पा तो में तीन गुण, रूप, रंग अरू वास ।
कारण ऐसो कौन है, भ्रमर न आवत पास ।।
उत्तरः– चम्पक वर्णी राधिका, भ्रमर श्याम का दास ।
माता अपनी मानि कै, भ्रमर न आवत पास ।।

इसी भाँति भरत अवध–राज–सिंहासन को श्रीराम का भोग्य मानकर अपने लिए मातृवत् पूज्य मान्यता प्रदान करते हैं।

अवधराजु सुर राजु सिहाई । दसरथ धन सुनि धनदु लजाई ।
तेहि पुर भरत बसत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ।।

2/324/6,7

ऐसी रहनि अपनाने वाले प्रेमी भक्त के लिए गोस्वामिपाद ने दोहावली में सटीक निर्णय दिया है।

जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेहँ ।
तुलसी ते प्रिय राम को, कानन बसहिं कि गेह ।। 61।।

क्योंकि घर करने से (गृहस्थी में रहने से) अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है और घर छोड़ने से (सन्यास ग्रहण करने से) यहाँ का घर (गृहस्थी) नष्ट होता है। अतएव तू घर और वन के बीच में ही (घर में ही वीतराग रहकर) रहते हुए श्रीराम के प्रेम की पुरी बसा ले।

घर कीन्हें घर जात है, घर छाँड़े घर जाइ ।
तुलसी घर वन बीच हीं, राम प्रेमपुर छाइ ।। 256 ।।

श्रीभरत की देह भले ही कृशता धारण कर रही है, किन्तु मुख–चंद्र से तेज की किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं। श्रीराम–प्रेम नित्य–नित्य नूतनतर परिपुष्टता के शिखर पर चढ़ रहा है। शरद ऋतु में जैसे मलीन पंथ–जल शुष्क हो जाने से भूमि से लेकर आकाश तक शुभ्र निर्मलता का प्रसार हो जाता है। मेघहीन आकाश नील छटा प्रकाशित करता है। कमल विकसित होकर पराग विकीर्ण करते हैं। ऐसे ही श्रीभरत के निर्मल हृदयाकाश में शम, दम, संयम, नियम, उपवास के नक्षत्र जगमग–जगमग प्रकाशित हो रहे हैं। विश्वास का ध्रुवतारा अटल अचल पद पर प्रतिष्ठित है। चौदह वर्षों की अवधि पूर्णमासी की रात्रि हैं, तो स्वामि श्रीराम की अहर्निश स्मृति की आकाश– गंगा छटा बिखेर रही है।

श्रीभरत के इस निर्मल हृदयाकाश में श्रीराम–प्रेम का दोष रहित निश्छल, अचल चन्द्रमा नक्षत्र–समाज सहित नित्य निरंतर प्रकाशमान है, जो प्रेमसुधा–रस–वर्णन करके विश्व को जीवनदान दे रहा है। भरत के गुण–गण, आचरण, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, निर्मल विभूति का दिग्दर्शन कराने में शेष, गणेश, शारदा जैसे सर्वमान्य प्रतिष्ठित वक्ता भी अक्षम सिद्ध हो गये हैं। तो अन्यान्य कवि–गण संकोचवश वर्णन करने का साहस ही नहीं करते हैं।

देह दिनहिं दिन दूबरि होई । घटइ तेज बलु मुख छबि सोई ।।
नित नव राम प्रेम पनु पीना । बढ़त धरम दलु मनु न मलीना ।।
जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे । बिलसत बेतसु बनज बिकासे ।।

सम दम संजम नियम उपासा । नखत भरत हिय बिमल अकासा ।।
ध्रुव बिस्वासु अवधि राकासी । स्वामि सुरति सुर बीथि बिकासी ।।
राम प्रेम बिधु अचल अदोषा । सहित समाज सोह नित चोखा ।।
भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ।।
बरनत सकल सुकवि सकुचाहीं । सेष गनेस गिरा गमु नाहीं ।।

2/325/1-8

भरत की यह रहनि शेष, गणेश, शारदादि समस्त देववृन्द से अभिवन्दनीय क्यों न हो ? यह चक्रवर्ति राजाधिराज कौशलराज की राजधानी है, जो देवराज इन्द्र के लिए भी स्पृहणीय है। जहाँ का वैभव धन—सम्पत्ति देवपुरी के धनद कुबेर के लिए परम दुर्लभ है, परन्तु श्रीभरत की दृष्टि में भोग्य नहीं, प्रत्युत् मातृवत् पूज्य है। श्रीभरत के हृदय में राम के प्रति सहजानुराग लबालब भरा है। वह साधना—साध्य नहीं है। वह तो सिद्धों के लिए भी दुर्लभ है। उनकी साधना सहज रूप में लोक—संग्रह के आदर्श की पूर्ति करती प्रतीत होती है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में प्रभु की वाणी है कि मेरे लिए कोई कर्तव्य निर्धारित नहीं है। फिर भी मैं लोक—संग्रह के लिए सदा कर्तव्यपरायण रहता हूँ।

कर्मणैव हि संसिद्धमास्थिता जनकादयः ।
लोक संग्रह मेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।। 3/20
यद्यदाचरति श्रेष्ठसतत्तदेवेतरो जनः ।
सयत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते ।। 3/21
न में पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किश्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एवं च कर्मणि ।। 3/22
सक्ताः कर्मण्य विद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।। 3/25

अर्थात् जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसलिए तथा लोक—संग्रह को देखते हुए तू कर्म करने के योग्य है। अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है। श्रेष्ठ पुरूष जो—जो आचरण करता है, अन्य पुरूष भी वैसा ही वैसा आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य—समुदाय उसी के अनुसार वर्तने लग जाता है। हे पार्थ ! मुझे तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है, और न कोई भी प्राप्त करने योग्य

वस्तुयें अप्राप्त हैं। तो भी मैं कर्म में ही वर्तता हूँ। हे भारत ! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्ति–रहित विद्वान भी लोक–संग्रह हेतु उसी प्रकार कर्म करें।

श्रीमद्भगवद्गीता के इन्हीं सिद्धांतो के अनुसार ही नित्य सिद्ध महापुरूष श्रीभरत की साधना है। श्रीभरत ही ऐसे महापुरूष हैं, जिन्होंने कर्तव्य की जड़मूर्ति में भावना की प्राण–प्रतिष्ठा की है। प्रेममूर्ति श्रीभरत का सहजानुराग साधक के लिए सर्वोत्कृष्ट साधना–पद्धति है। वही सिद्ध के लिए पूर्ण प्रेम का दर्शन है। वह लोक–संग्रह के निमित्त न होते हुए भी लोक–संग्रह–आदर्श बन गया है।

अयोध्यावासी अनुरागी जन ही नहीं, बड़े–बड़े नामी सिद्ध, संत, महात्मा, मुनीश्वर चुपके–चुपके गुप्त रूप से नंदिग्राम पहुँचकर प्रेमोन्मत्त तपस्वी को प्रेमाश्रु–परिप्लुत दशा में पुलकित हृदय से सीताराम–सीताराम रटते हुए दर्शन करते हैं। वही दर्शक चित्रकूट पहुँचकर त्रिमूर्ति श्रीराम, सीता, लक्ष्मण की वनवासी झाँकी का भी दर्शन करते हैं, किन्तु नंदिग्राम के दर्शन में जो प्रेम–विभोरता उन्हें पुलकित कर देती है, चित्रकूट में उसका स्पर्श नहीं होता है। अतः वे सभी द्रष्टा पुकार–पुकार कर बोल उठे– "हमारी धारणा है कि चित्रकूटवासी त्रिमूर्ति की तुलना में नंदिग्रामवासी तपस्वी भरत अधिक प्रशंसनीय हैं। श्रीराम को तो श्रीसीता तथा श्रीलक्ष्मण का साहचर्य एवं उनकी सेवा प्राप्त है। इस तपस्वी भरत को किसी की सेवा लेने का प्रश्न नहीं, प्रत्युत यह स्वयं प्रभु–पादुकाओं तथा प्रभु–प्राण–प्रजाजनों की सेवा में निमग्न रहता है। इसे विरहाग्नि में तपाया भी जा रहा है। फिर प्रेम रूप कसौटी में कसकर परीक्षा की जा रही है कि कितना खरा सोना है ? फिर जब शुद्ध–टंच खरा कुंदन दिखाई देता है, तो वे समस्त दर्शक क्यों ने एक स्वर से पुकार उठें कि यह तपस्वी भरत सब प्रकार से सराहना करने योग्य हैं। यह धन्यातिधन्य है।

पुलकि गात हियँ सिय रघुबीरू । जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं । भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥

2/326/1–4

इस अध्याय के समापन में "प्रेम–वल्लरी" के पद संख्या 29 में प्रेम–मधु की मिठास क रसास्वादन कर लें। जो कोई इस प्रेम–रस–मदिरा का पान करेगा, उसके अंग–अंग मे

पुलकावली छा जावेगी। वह अपने तन, मन, की स्मृति भुला कर रात–दिन आनंद के सिंधु में डूबता उतराता रहेगा। उसके हृदय में कभी भवरस का बीज भी अंकुरित नहीं होगा। जीव के कलेजे की जलन सदा सदा के लिए शांत हो जावेगी। हृदय में परम प्रकाश छाया रहेगा। उसका तन, मन, बचन, बुद्धि एवं आत्मा सब कुछ अत्यंत सुंदर हो जावेगा। इस रस की महिमा अवर्णनीय है। बस यही समझ लीजिये कि यह परम अनुपम है।

आओ अपने मधु की मधुरिमा सुनाऊँ ।
जो कोऊ पीवै या मधु मेरो, अँग अंगनि पुलकाऊ ।।
आनँद अम्बुधि अहनिशि उमड़त, भूलत तन मन भाऊ ।।
भव रस बीज न जामत कबहूँ, जीव जरनि जर जाऊ ।।
परम प्रकाश रहै उर छाई, बिन साधन सब पाऊ ।
सुंदर तन अरू सुंदर मनुआ, सुंदर बचन बनाऊ ।।
सुंदर बुद्धि आत्मा सुंदर, सुंदर गमहिं गाऊ ।
"हर्षण" अनुपम अकथी महिमा, कहहु कथा किमि गाऊँ ।।

आचार्य महाप्रभु प्रणीत "प्रेम–वल्लरी" पद 29

❁

❁ ❁

अध्याय – सत्रह

परस्पर परिपूरक श्रीराम-भरत

भक्ति भक्त भगवंत गुरू, चतुर्नाम वपु एक ।
इनके पद वंदन कियें, नासहिं विघ्न अनेक ।।

श्री नाभादास रचित भक्तमाल

भरत भाग्य प्रभु कोमलताई । सेष कोटि सत सकहिं न गाई ।।

7/11/6

असंख्येय कल्याण गुण गण–महोदधि, निरतिशय सौन्दर्य–सौशील्यादि गुण–गण– निलय, अघटित घटना सामर्थ्ययुक्त, सच्चिदानंद आनंदकंद परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर भगवान तथा उनके परम प्रेमी निस्पृह भक्त, दोनों में सम्बन्ध–योग स्थापित करने वाला पंचम पुरूषार्थ भक्ति योग एवं भगवान् का आचार्यावतार गुरूदेव–यह चतुर्व्यूह वस्तुतः एक ही है, ऐसा संत एवं शास्त्र–सम्मत–सिद्धांत है। उस पूर्ण तत्व ने पूर्ण में से पूर्ण को ही निकालते हुए, लीला हेतु चार रूपों में प्रकट होकर अपने भक्त को अपने से अधिक मान्यता प्रदान करने में आनंदानुभूति प्राप्त की। इस सर्वमान्य सिद्धान्त का उद्घोष करते हुए महर्षि अगस्त्य ने कहा–

जद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता । अनुभवगम्य भजहिं जेहि संता ।।
अस तव रूप बखानउँ जानउँ । फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ ।।
संतत दासन्ह देहु बड़ाई । ताते मोहिं पूँछेहु रघुराई ।।

3/13/12–14

प्रभु के इसी विरद् के अनुसार इस ग्रंथ के पूर्व अध्यायों में प्रेमी भक्त श्रीभरत को प्रभु श्रीराम से विशिष्टता प्राप्त करने के प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं। वस्तुतः युगल बन्धु एक दूसरे के पूरक बने हुए हैं। जैसे देह एवं प्राण दोनों परस्पर सम्बद्ध होते हैं, वैसे ही श्रीराम की देह में प्राण रूप से श्रीभरत प्रतिष्ठित हैं तथा श्रीभरत की देह में प्राण रूप से श्रीराम प्रतिष्ठित हैं। प्रमाण हेतु विचार करलें कि श्रीराम का श्रीविग्रह (देह) है धर्म। श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण में **"रामो विग्रहवान धर्मः"** 3 / 37 / 13 कहा गया है तथा उनका प्राण है प्रेम (भरत)। माता कौशल्या का वचन है–

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे । तुम रघुपतिहिं प्रानहु तें प्यारे ॥

2/169/1

उधर श्री भरत का श्री विग्रह है **"प्रेम"**

"राम प्रेम मूरति तनु आही" 2/184/4

तथा उनका प्राण है धर्म (राम)। गुरूदेव वशिष्ठ के वचन–

"धर्म सारू जग होइहि सोई" 2/323/8 तथा

"करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा" 2/324/4

श्रीराम अपने प्राणस्वरूप भरत को कितना स्नेह दुलार प्रदान करते हैं कि राज्य सिंहासनासीन होते समय अपनी जटायें सुलझाकर स्वयं स्नान करने के पूर्व अनुज भरत को अपनी गोद में बिठलाकर अपने हाथों से उनकी जटायें सुलझाते हैं तथा स्नान कराते हैं। मानो भक्त की उलझनों को भगवान सुलझाते हैं। तथा सुशीतल परितोष प्रदान करते हैं।

पुनि करूनानिधि भरतु हँकारे । निज कर राम जटा निरूआरे ॥
अन्हवाये प्रभु तीनिउ भाई । भगत बछल कृपाल रघुराई ॥

7/11/4,5

इस प्रकार श्रीराम ने उस महाभागवत भरत के प्रति कृतज्ञता–ज्ञापन किया, जिसने अपने त्याग, तपस्या, कर्तव्यनिष्ठा, जागरूकता, निःस्वार्थ सेवा आदि सद्‌गुणों के द्वारा रामराज्य के स्वप्न को साकार कर दिया था।

इतना ही नहीं श्रीराम ने सिंहासनासीन होने पर अपने सिर पर छत्र धारण करने की प्रधान सेवा भरत को प्रदान किया, मानों वे जगत को संदेश देते हैं कि मेरा राज्य भरत की छत्रछाया में सुरक्षित है। राज्य सिंहासनासीन श्रीराम की सेवा में नियुक्त परिकरों की झाँकी का दर्शन करिये, जिसमें भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अंगद एवं हनुमान क्रमशः छत्र, चँवर, व्यजन, धनु असि, चर्म (ढाल) एवं शक्ति धारण किये सेवारत हैं,

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते ।
गहे छत्र चामर व्यजन-धनु असि चर्म सक्ति बिराजते ॥

7/12/छंद1

श्रीराम ने चित्रकूट में भरत से आग्रह किया था कि यदि तुम दोनों भाई राष्ट्र–रक्षा के लिए

अयोध्या की आंतरिक व्यवस्था सँभाल लो, तो हम दोनों भाई बाहरी शत्रुओं से संघर्ष करते हुए बाह्य मोर्चा सँभालने में समर्थ हो सकते हैं। ऐसा विचार कर वियोग का असहनीय संकट सहकर भी तुम्हें प्रजापालन का गुरूतर भार सँभालना होगा।

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनिकुल पालक होहू ।।
साधक एक सकल सिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय बेनी ।।
सो बिचारि सहि संकटु भारी । करहु प्रजा परिवारू सुखारी ।।

2/306/3–5

निष्कर्षतः अनर्थ की मूल प्रेरक मंथरा को शुद्ध करने का कार्य शत्रुघ्न ने तथा माता कैकयी की ममता को ठुकरा कर उन्हें पश्चाताप् की अग्नि में तपाकर विशुद्ध बनाने का दुष्कर कार्य श्रीभरत ने किया। ममता घनघोर अंधकार की तरह व्यक्ति के हृदय–प्रदेश को आच्छादित करके उसे सुमार्ग से च्युत कर देती है। उस दशा में रागद्वेष के उलूक अपना उल्लू सीधा करते हैं। तब व्यक्ति अपयश का भागी बन जाता है।

ममता तरून तमी अँधियारी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ।।   5/47/3

एवं

ममता केहि कर जस न नसावा ।।   7/71/2

इसलिए श्रीभरत ने माता कैकेयी की ममता की डोरी को काट दिया, ताकि मेरी ओर से पूर्णतः निराश होकर भगवान राम से जुड़कर परम श्रेय की प्राप्ति कर लेवें । गीतावली रामायण में स्पष्ट उल्लेख है–

कैकेयी जौ लौं जियत रही ।
तौ लौं बात मातु सों मुँह भरि, भरत न भूलि कही ।।
मानी राम अधिक जननी तें, जनिनिहुँ गँस न गही ।
सीय लखन रिपुदवन राम रूख, लखि सबकी निबही ।।

गीतावली उत्तर कांड पद संख्या 37/1–4

विनय–पत्रिका में भी इसका प्रमाण उपलब्ध है ।

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।

तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषण बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरू तज्यो, कंत ब्रज बनितन्हि, भे मुद मंगलकारी ।।

पद संख्या 174/1-2

निदान भरत से उपेक्षिता कैकेयी अम्बा ग्लानि और पश्चाताप की अग्नि में तपकर श्रीराम से इस प्रकार जुड़ गई कि गोस्वामिपाद ने समग्र श्रीरामचरित मानस में श्रीराम के मुखारविन्द से केवल कैकेयी अम्बा के लिए "जननी" शब्द का सम्बोधन लिखा है। ध्यान देने की बात यह है कि "जननी" शब्द सामान्य अर्थ में समस्त माताओं के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द नहीं है। जनन (पैदा) करने वाली माता ही "जननी" सम्बोधन पाने की अधिकारिणी होती है। मानस में श्रीराम द्वारा केवल कैकेयी अम्बा ही त्रिवाचा "जननी" शब्द से सम्बोधित की गई है।

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।

दोहा– मुनिगन मिलन बिसेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ।। 2/41

इस प्रकार भरत ने ममता त्याग कर ऐसा वातावरण बनाया कि अम्बा कैकेयी यथार्थ में श्रीराम–जननी बन गई। उधर पश्चात्ताप की प्रतिमूर्ति असहाय भरत को मातृत्व की ममता प्रदान करने के लिए कौशल्या अम्बा ने अपने हाथ बढ़ाकर गोद में ले लिया। वे तो बचपन से ही श्रीराम की जननी कैकेयी अम्बा को एवं अपने आपको भरत की जननी कहती थी। कवितावली में वे सुमित्रा से कहती हैं कि मैंने कैकेयी को कभी सौत नहीं समझा। सदा अपनी छोटी बहिन के समान उसका पालन पोषण किया है। जब राम मुझे मैया कहता, तो मैं यही कहती थी कि मैं तेरी माँ नहीं हूँ, मैं तो भरत की माता हूँ। भैया मैं तेरी बलैया लेती हूँ। तेरी माता तो कैकेयी है। श्रीराम ने भी सरल भाव से इसे स्वीकार करके मन, बचन, कर्म से कैकेयी को माता ही माना, कभी विमाता नहीं समझा। परन्तु वाम विधाता ने हमारे सिरस सुमन सदृश सुकुमार सुख को काटने के लिए छल रूपी छुरी को वज्र पर पैनाया है।

सिथिल सनेहँ कहैं कौसिला सुमित्रा जू सों,
मैं न लखी सौति, सखी ! भगिनी ज्यों सेई है ।
कहैं मोहिं मैया, कहौ मैं न मैया, भरत की,
बलैया लेहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है ।।

तुलसी सरल भायँ रघुरायँ माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है ।
बाम बिधि मेरो सुखु सरिस-सुमन-सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है ।।

कवितावली अयोध्याकांड कवित्त संख्या 3

चित्रकूट में उन्होंने मिथिला–राज–अधीश्वरी सुनयना से अश्रु–पूरित गद्–गद् कंठ से विनय की थी कि मेरे दुलारे भरत की प्राणरक्षा का उपाय येन केन प्रकारेण अवश्य किया जावे।

लखन रामु सिय जाहुँ बन, भल परिनाम न पोचु ।
गहबरि हियँ कह कौसिला, मोहिं भरत कर सोचु ।। 2/282

इस बात पर विशेष बल देने के लिए कौशल्या ने श्रीराम की सौगन्ध खाकर भरे हृदय से कहा कि भरत ही मेरे कुल का दीपक है। यह दीपक बुझने न पावे, अन्यथा अंधकार से प्रपूरित अयोध्या में महाविनास तमस का दृश्य उपस्थित हो जावेगा। भले ही मेरे नेत्रों की पुतली जानकी के साथ प्राणाधिक दुलारा राम वनवासी बना रहे पर भरत उनसे वियुक्त न रहे। उसे लक्ष्मण के स्थान पर नियोजित कर राम का सहवासी बना दिया जावे। अन्यथा राम से वियुक्त होने पर भरत की प्राणरक्षा मुझे संभव नहीं दिख रही है।

रानि राय सन अवसरू पाई । अपनी भाँति कहब समुझाई ।।
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन । जौ यह मत मानै महीप मन ।।
तौ भल जतनु करब सुबिचारी । मोरें सोचु भरत कर भारी ।।
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं । रहे जीक मोहिं लागत नाहीं ।।

2/184/1-4

वात्सल्यमूर्ति कौशल्या का स्नेह पाकर मानों श्रीभरत कौशल्या–पुत्र बन गये, तथा कैकेयी अम्बा श्रीराम जननी बन गई। इस परिस्थिति के अनुसार पिता की और्ध्व–दैहिक अन्त्येष्टि–क्रिया के अधिकारी भरत बने। शास्त्रों ने बड़े पुत्र को ही पिता को मुखाग्नि देने का अधिकारी बनाया है, न कि मँझले पुत्र को। कविरत्न भैरव द्विवेदी रामायणी अपनी **"मानस–तरंग"** में इस क्रिया को राम की भक्त वत्सलता के रूप में व्यंजित करते हैं।

पितु की अंतक्रिया करिबे को, बड़ो पुत्र अधिकारी ।
सो पितु-क्रिया भरत को छोड़ी, प्रभु खग-क्रिया सँवारी ।।

लोक–व्यवहार की मर्यादानुसार पहले बड़े की जय बोली जाती है, बाद में उससे छोटे की। पर पग–पग पर भरत की बड़ाई देखकर देवगण इस सामान्य नियम को ताक पर रखकर पहले श्रीभरत को धन्य–धन्य बोलने लगे। बाद में उन्होंने राम की जय–जयकार बोली।

धन्य भरत जय राम गोसाई। कहत देव हरषत बरिआई।।

2/309/1

इसका मूल भाव यह है कि अंत में विजय तो श्रीराम की दिखाई देती है, कि उन्हें पिता की आज्ञा की अवहेलना करके अयोध्या वापस नहीं लौटना पड़ा, परन्तु इसका वास्तविक श्रेय श्रीभरत जी को है, जिन्होंने धर्म मर्यादा रक्षणार्थ श्रीराम को जिताया है। उन्हें हार से बचाने में श्रीभरत प्रेरक बने हैं। श्रीभरत ने ही दोनों के सत्य की रक्षा की है। अतः पहले श्रीभरत धन्यातिधन्य हैं। बाद में श्रीराम की जय हो, जो देव–रक्षणार्थ वनवासी बन गयें हैं।

पक्षधरता का उदाहरण काकभुसुंडि–गरूड़ संवाद में प्राप्त होता है। जो जिस पक्ष का है, वह उसका नाम प्रथम रखकर अपनी बात प्रस्तुत करता है। ज्ञान को महत्व देने वाले गरूड़ का प्रश्न था–

ग्यानहिं भगतिहिं अंतर केता । सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता ।।

7/115/11

भक्ति पक्षधर काकभुसुंडि का उत्तर था–

भगतिहिं ग्यानहिं नहिं कछु भेदा । उभय हरहिं भवसंभव खेदा ।।

7/115/13

लौकिक व्यवहार की दृष्टि से भी यह बात सिद्ध होती है। भरत का पहले नाम लेने से देवगण अब श्रीभरत के पक्ष वाले बन गये हैं। विवाह के निमंत्रण–पत्रों में वर–पक्ष वाले पहले अपने वर का, बाद में वधू का नाम प्रकाशित करते हैं, जबकि वधू पक्षवाले पहले अपनी कन्या का, बाद में वर का नामोल्लेख करते हैं। मानस में एक और प्रमाण उपलब्ध होता है। वाह्य रूप से संतवेषधारी कालनेमि स्वभावतः अनजाने में पहले अपने पक्ष रावण का नाम बोल जाता है, तब दूसरे पक्ष राम का नाम लेता है।

होत महारन रावन रामहिं । 6/57/5

जबकि सभी लोग इसे राम–रावण–युद्ध की संज्ञा देते हैं। इसी प्रकार अपनी पक्षधरंता के कारण ही लक्ष्मण–परशुराम–संवाद और अंगद–रावण–संवाद बोलने की परम्परा बन गई है

अतः अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने के बाद देवगण का श्रीभरत पक्षधर बन जाना अस्वाभाविक नहीं है।

ध्यान देने की बात है कि यही भरत जब श्रीराम से भेंट करने चित्रकूट प्रयाण कर रहे थे,तो यही देवगण देवगुरू बृहस्पति से विनय कर रहे थे कि कोई ऐसा उपाय करिये, जिससे श्रीराम से भरत की भेंट ही न होने पावे।

देख प्रभाउ सुरेसहिं सोचू । जगु भल भलेहिं पोच कहुँ पोचू ॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई । रामहिं भरतहिं भेंट न होई ॥

2/217/7-8

उस समय देवगुरू ने उन्हें समझाया था कि श्रीराम अपने भक्तापराध को कदापि क्षमा नहीं करते। अपराधी को अपनी रोषाग्नि में जला डालते हैं। अतः श्रीभरत के मार्ग में आड़े आने का विचार मन से निकाल दो। इस समझाइस से किंचित्काल के लिए वे सद्बुद्धि पाकर श्रीभरत के मार्ग में प्रसून बरसाते हुए सेवारत हो गये थे। किन्तु पुनः चित्रकूट में श्रीरामभक्तिमग्न भरत को देखकर अपने अनिष्ट की आशंका से भयभीत होकर वे बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी शारदा से प्राथना करते हैं कि अपनी माया से भरत की बुद्धि पर छल का पर्दा डालकर मतिभ्रम पैदाकर दो।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही । देबि देव सरनागत पाही ॥
फेरि भरत मति करि निज माया । पालु बिबुध कुल करि छल छाया ॥

2/295/1,2

उस समय देवी शारदा ने उन्हें जड़ समझकर उनकी भर्त्सना की थी तथा भरत–महिमा का ज्ञान कराकर ब्रह्म–लोक वापस चली गई थी। तब से देवगण ऊहापोह में पड़े हुए थे। अब जब श्रीभरत ने रामाज्ञा–परिपालन में अपना कल्याण बतलाकर श्री रामवनवास में गतिरोध उत्पन्न नहीं किया, तो वही देवगण अब भरत की सदाशयता से प्रभावित होकर उनके पक्षधर बन गये। अब उनके लिए श्रीभरत प्रथम एवं श्रीराम द्वितीय हो गये। तभी वे यह उदघोष कर रहे थे।

धन्य भरत जय राम गोसाई । कहत देव हरषत बरिआई ॥

2/309/1

तत्वतः तो श्रीराम निरूपमेय ही हैं । यह तो वेदों का उद्घोष है ।

निरूपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै ।
जिमि कोटि सत खद्योत सम, रबि कहत अति लघुता लहै ।।

7/92/10

परन्तु श्रीराम तो अपने श्रीमुख से यह कहते हैं कि भरत के समान केवल भरत है। चित्रकूट की सभा में उनके स्पष्ट वचन हैं– मनसा, वाचा, कर्मणा निर्मल स्वभाव वाले भरत तुम्हारे समान केवल तुम हो। अन्य कोई नहीं है। इस गुरूजन–समाज के मध्य में तुम्हारे गुणों का वर्णन मैं कैसे करूँ?

करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात ।
गुरू समाज लघु बंधु गुन, कुसमयँ किमि कहिजात ।।   2/304

इसी प्रकार विदेहराज जनक ने भरतजी को अनुपमेय महापुरूष की संज्ञा दी थी।

निरवधि गुन निरूपम पुरूष, भरतु भरत सम जानि ।
कहिअ सुमेरू कि सेर सम, कबिकुल मति सकुचानि ।।

2/288

इस प्रकार दोनों में अनन्वय अलंकार की सिद्धि है। अतः **"को बड़ छोट कहत अपराधू" 1/21/3** सिद्धान्त को मान्यता देना ही श्रेयष्कर है। गोस्वामिपाद की विनय–पत्रिका में श्रीभरत–स्तुति के उद्धरण से इस अध्याय का समापन–

जयति भूमिजा–रमण–पद पंकज–मकरंद–रस–
रसिक–मधुकर भरत भूरि भागी ।
भुवन–भूषण, भानुवंश–भूषण, भूमिपाल–मणि
रामचन्द्रानुरागी ।। 1 ।।
जयति विबुधेश–धनदादि–दुर्लभ महाराज–
–संभ्राज–सुख–पद–विरागी ।
खड्ग–धाराव्रती–प्रथम रेखा प्रकट
शुद्धमति–युवति पति–प्रेम पागी ।। 2 ।।
जयति–निरूपाधि–भक्ति भाव–यंत्रित–हृदय
बंधु–हित चित्रकूटाद्रि–चारी ।

पादुका-नृप-सचिव, पुहुमि-पालक-परम

धरम-धुर-धीर वर वीर भारी ।। 3 ।।

जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान

धनुबान-महिमा बखानी ।

बाहुबल विपुल, परमिति पराक्रम अतुल

गूढ़-गति जानकी-जानि जानी ।। 4 ।।

जयति रण-अजिर गंधर्वगण-गर्वहर,

फिर किये रामगुण गाथ-गाता ।

मांडवी-चित्त-चातक-नवांबुद-बरन

सरन तुलसीदास अभय-दाता ।। 5 ।।

विनय-पत्रिका पंद संख्या 39

श्रीराम प्रेमप्रदाता दैन्य मार्गाचार्य श्रीभरत

करमठ कठमलिया कहैं, ग्यानी ग्यान बिहीन ।
तुलसी त्रिपथ बिहाइगो, राम दुआरे दीन ।।

दोहावली संख्या 9

यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।
दीनदयालु दीन तुलसी की, काहु न सुरति कराई ।।

विनय पत्रिका पद संख्या 165/

कलि पावनावतार गोस्वामी तुलसीदास के प्रतिपादित दैन्य भावापन्न दास्य–रस के आचा श्रीभरत हैं। महाकवि को क्षोभ था कि कर्मकांडी लोग उन्हें कठमलिया (काठ की मालाधार करने वाला) कहकर तिरस्कृत करते हैं। ज्ञानमार्गी योगीजन उन्हें आँसू बहाने वाला अज्ञा कहकर पास नहीं बैठने देते। उपासना सिद्ध भक्त होने का दावा भी वे कैसे करें ? अत वेद–वर्णित तीनों मार्गों को छोड़कर वे दैन्य–मार्ग का आश्रय लेकर रामद्वारे पहुँचते हैं। उन्हों संतवाणी में यह सुना है कि श्रीराम दरबार में दीन हीन जन का अबाध प्रवेश है, क्योंकि श्रीरा को दीनदयाल, दीनबंधु, दीनानाथ की संज्ञा दी गई है। इसी विरद को श्रवण करके य महादीन तुलसी जो भिक्षा माँगने वाले (ब्राम्हण) कुल में तो उत्पन्न हुआ, जिसके उपलक्ष्य बधावा कौन बजाता, क्योंकि उसका अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेना सुनकर माता–पिता क पुत्र–जन्म के आनंद के विपरीत परिताप और कष्ट हुआ। माता–पिता द्वारा परित्यक्त य बालक बालपन से ही अत्यंत दीन दशा को प्राप्त होकर द्वार–द्वार ललचाता और बिलबिला फिरा। चने के चार दानों को ही अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप चार फलों की तरह मूल्यवा मानता रहा।

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि,
भयो परितापु पापु जननी जनक को ।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हों चारि फल चारि ही चनक को ।।

कवितावली – कवित्त संख्या 7

यह महादीन तुलसी दीनदयाल, दीनबन्धु, दीनानाथ रामराय का नाम सुनकर आज बड़े सबेरे से ही उनके द्वार पर अड़कर बैठ गया है। वह रें–रें करके रटन लगाये हुए हैं। गिड़गिड़ाकर भीख माँग रहा है। उसे और कुछ अधिक नहीं चाहिये। उसका काम तो केवल एक कौर उच्छिष्ट से बन जावेगा। सरकार की जरा सी कृपा– दृष्टि पाकर वह पूर्णकाम हो जावेगा। यदि उससे पूछा जावे कि कोई उद्यम न करके गिड़गिड़ाकर भीख क्यों माँगता है ? तो उसका उत्तर है कि इस भयंकर कलियुग में बड़ा दारूण दुर्भिक्ष (अन्यान्य साधन रूपी उद्यमों का अकाल) पड़ गया है। जितने भी योग यज्ञादि उपाय–साधन उद्यम हैं वे कोई भी निर्विघ्न पूरे नहीं होते हैं। पूर्ण भी हो जावें तो उनसे प्राप्त फल क्षणिक है। कलियुगी मनुष्य विषय–प्राप्ति के लिए पापों में रत रहते हैं। उनका मन भले ही ऊँचा हो कि सच्चा सुख मिल जावे, किन्तु सच्चा मोक्ष रूप सुख बिना भगवत्कृपा मिलता नहीं है। जैसे कोढ़ की खाज को खुजलाते समय तो सुख सा मिलता है। किन्तु बाद में मवाद निकलने पर भीषण जलन पैदा हो जाती है। ऐसे ही इन्द्रियों के साथ विषय का संयोग होने पर क्षणिक सुखाभास होता है, परन्तु परिणाम में महादुःख होता है। तुलसी का कथन है कि कलियुगी मनुष्यों को ऐसा दुर्दशा–ग्रस्त देखकर मैंने हृदय में डरकर कृपालु संत–समाज से पूछा कि मुझ सरीखे दीन उद्यम–हीन को शरण में लेने वाला कोई स्वामी है क्या ? उन दयालु संतों ने एकस्वर से कहा कि कौशलाधीश श्रीराम ही अनाथों के नाथ हैं। वे तुम जैसे अनगिनत दीन अनाथों के आश्रय बने हैं। आपका यही विरद सुनकर मैं आपके द्वार पर गोहार लगा रहा हूँ। हे कृपा के समुद्र ! आपको छोड़कर दीनता और दरिद्रता का नाश दूसरा कौन कर सकता है ? हे दशरथ नंदन ! दानियों का बाना धारण करने वालों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। हे गरीब निवाज ! मैं जन्म–जन्मान्तर का भूखा दीन भिखमंगा हूँ। बस, अब इस अनाथ तुलसी को भक्ति रूपी अमृत के समान सुन्दर भोजन पेट भर खिलाकर पूर्णकाम बना दीजिये। अपने चरणों में ऐसी प्रेमाभक्ति प्रदान कर दीजिये कि फिर अन्य कुछ पाने की कामना ही न रह जावे।

द्वार हौं भोर ही को आजु ।
रटत रिरिहा आरि और न, कौर ही तें काजु ।। 1 ।।
कलि कराल दुकाल दारून, सब कुभाँति कुसाजु ।
नीच जन, मन ऊंच, जैसी कोढ़ में की खाजु ।। 2 ।।
हहरि हिय में सदय बूझ्यो, जाइ साधु-समाजु ।

मोहु से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराजु ।। 3 ।।

दीनता-दारिद दलैं को, कृपा बारिधि बाजु ।

दानि दशरथ राय के, तू बानइत सिरताजु ।। 4 ।।

जनम को भूखो भिखारी, हौं गरीब निवाजु ।

पेट भरि तुलसिहिं जेंवाइय, भगति-सुधा-सुनाजु ।। 5 ।।

विनय पत्रिका पद संख्या 219

एक अन्य पद में दीनबन्धु ,दीनानाथ के विरद का बखान करते हुए गोस्वामिपाद कहते हैं कि हे रघुनाथ जी ! समस्त स्वामी कहलाने वाले देवी देवों में केवल आपकी ही यह बड़ाई है कि आप गण्यमान धनान्धों (धन, विद्या, पद, कुल जाति आदि के अभिमानियों) का अनादर करके दीन हीन जनों का आदर करते हैं। उन पर बड़ी कृपा करते हैं। स्वर्ग के अभिमानी देवता अनेक साधन करके थक गये, परन्तु उन्हें आपने स्वप्न में भी दर्शन नहीं दिया। जबकि अस्पृश्य निषाद एवं कपट शरीरधारी रीछ, बंदर और राक्षस (विभीषण) के साथ भाई चारा सखा रूप में प्रेमसम्बन्ध बना लिया क्योंकि वे सभी दीन निरभिमानी बनकर शरणागत हुए थे । वनवास काल में दण्डकारण्य में अनेक मुनि–गण मिले थे। परन्तु अयोध्या पहुँचने पर आपने उन सबकी चर्चा तक नहीं चलाई। जबकि गीध जटायु और शबरी माता के प्रेम का बारंबार बखान करना आपको सदा अच्छा लगा। उक्त उदाहरणों से यह सिद्ध है कि आपके दरबार में रामराज्य में दीनों का आदर करने की रीति सदा से चली आ रही है। किन्तु हे दीनदयालु रघुवर, क्या इस दीन तुलसी की चर्चा आपके समक्ष आज तक किसी ने नहीं की, अन्यथा यह इस तरह उपेक्षित न पड़ा रह जाता ?

रघुबर रावरि यहै बड़ाई ।

निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई ।।1।।

थके देव साधन करि सब, सपनेहुँ नहिं देत दिखाई ।

केवट कुटिल भालु कपि कौनप, कियो सकल सँग भाई ।।2।।

मिलि मुनिवृन्द फिरत दंडक वन, सो चरचौ न चलाई ।

बारहिं बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ।।3।।

यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।

दीन दयालु, दीन तुलसी की, काहु न सुरति कराई ।।4।।

विनय पत्रिका पद सं. 165

पुनः अगले पद **"ऐसे राम दीन-हितकारी" सं.** 166 में साधनहीन दीन अहिल्या, हिंसारत तापस वपु निषाद, स्वद्रोही सुरपति–सुत जयंत, आमिष आहारी विहंग गीध जटायु, अधम जाति जड़ योषित शबरी, बंधुभय व्याकुल कपि सुग्रीव, रिपु–अनुज निशाचर विभीषण, विकारग्रस्त वानर रीछ आदि अगणित दीनों का परिगणन करते हुए स्वयं कलिमलग्रसित तुलसीदास पर कृपा–याचना करते हैं। कृपालु राम से **"तोहिं मोहिं नाते अनेक मानियै जो भावै"** की याचना में सर्वप्रथम नाता स्वयं दीन होने से उन दीनदयालु से सहज सम्बन्ध स्थापित होने का आधार है।

"तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी"

पद सं. 79

दीन गोस्वामिपाद ने दैन्य भावाश्रित श्रीभरत को अपने आचार्य रूप में वरण करके उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलना अपने लिए श्रेयष्कर माना है। श्रीभरत ही दैन्य मार्ग के परमाचार्य है। प्रमाण हेतु पूर्ववर्णित अध्याय तेरह में "श्री प्रेमरामायण में वर्णित भरत–सिद्धांत" में विस्तार पूर्वक दैन्य–भाव की महिमा प्रतिपादित की गई है। श्रीभरत ने अष्टाक्षर शरणागति मंत्र **"श्रीरामः शरणं मम"** को अपना प्राण संजीवन बनाया है। गीतावली–रामायण में भी श्रीभरत प्रभु श्रीराम से यही प्रार्थना करते हैं कि हे दीन–बन्धु इस दीन भरत की दीनता भूल में न पड़ जावे, क्योंकि हे नाथ मेरे लिए आप जैसे प्रभु तो आप ही हैं। जबकि आपके लिए मेरे समान सेवक अनेकों हैं। यह जानकर और मेरी आंतरिक प्रीति पहचानकर आप मेरे अपराध और अवगुण क्षमा करने की कृपा करें।

बिनती भरत करत करजोरे ।
दीनबंधु ! दीनता दीन की, कबहुँ परै जनि भोरे ।।1।।
तुम्ह से तुम्हहिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे ।
इहै जानि, पहिचानि प्रीति, छमिये अघ औंगुन मेरे ।।2।।

गीतावलीरामायण अयोध्या कांड पद सं. 76

ऐसे दैन्य भवापन्न दूसरे शब्दों में खिन्न जीवात्मा प्रभु के परमप्रिय बन जाते हैं। गोस्वामिपाद ने युगल सरकार की वंदना करते हुए इस सिद्धांत की पुष्टि की है।

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न ।

बँदउँ सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥ 1/18 ॥

जगत्पिता ब्रह्मा द्वारा परमप्रभु श्रीराम की स्तुति में उनके द्वारा वेदों का यह उद्‌घोष घोषित किया गया है कि भगवान् को दीन भावापन्न जीव अत्यंत प्यारे हैं।

जेहिं दीन पिआरे बेद पुकारे, द्रवउ सो श्री भगवाना ।

1/186/छंद 4

अस्तु दैन्य भाव के आचार्य श्रीभरत गोस्वामिपाद के गुरू हैं ।

"तुम्ह तें अधिक गुरूहिं जियँ जानी।

सकल भायँ सेवहिं सनमानी।" 2/129/8

इस सिद्धान्तानुसार रसाचार्य श्रीभरत के प्रति उनकी स्वकीय मति, गति, रति है। इसमें उन्हें अन्य के प्रवेश से परहेज है। इसी कारण अयोध्याकांडान्तर्गत भरत–चरित्र को केवल तुलसीदास ही गाते हैं। इस कांड में प्रयुक्त समस्त तेरह छंदों तथा अंतिम दोहे में उन्हीं के नाम का भोग लगाया गया है। इस समग्र कांड में मानस के तीन घाटों के वक्ता भगवान शंकर, पक्षिप्रवर काकभुसुंडि तथा महर्षि याज्ञवल्क्य मुनिवर्य इन तीनों विभूतियों का कहीं नामोल्लेख तक नहीं है। यहाँ किसी वक्ता ने अपने श्रोता क्रमशः उमा–पार्वती, पक्षिराज गरूड़ एवं महर्षि भरद्वाज मुनि को सम्बोधित नहीं किया है। अयोध्या कांड समाप्त होते ही अरण्यकांड के प्रारंभ में भगवान शंकर अपनी श्रोता भगवती उमा को सम्बोधित करके बोल उठते हैं।

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं बिरति ।

पावहिं मोह बिमूढ़, जे हरि बिमुख न धर्मरति ॥

3/प्रारंभ सोरठ

आगे कथा बढ़ते ही भक्तप्रवर काकभुसुंडि अपने श्रोता भगवान् विष्णु के वाहन पक्षिराज गरूड़ से कहते हैं।

मातु मृत्यु पितु समन समाना । सुधा होइ बिष सुनु हरि जाना ॥

3/2/6

अयोध्याकांड में अपने रसाचार्य श्रीभरत की महिमा के विषय में गोस्वामिपाद की प्रशस्ति अनिर्वचनीय है।

जासु बिलोकि भगति लवलेसू । प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू ।।
महिमा तासु कहै किमि तुलसी । भगति सुभाँय सुमति हियँ हुलसी ।।
आपु छोट महिमा बड़ि जानी । कबि कुलकानि मानि सकुचानी ।।
कहि न सकति गुन रूचि अधिकाई । मति गति बाल बचन की नाई ।।

दोहा– भरत बिमल जसु बिमल बिधु , सुमति चकोर कुमारि ।
उदित बिमल जन हृदयँ नभ, एकटक रही निहारि ।। 2/303।।

अस्तु अपने चरित्र नायक रसाचार्य श्रीभरत की कथा अयोध्याकांड के उपसंहार में महाकवि ने डिमडिम घोष करते हुए घोषणा की कि इस कलिकाल में श्रीभरत–चरित्र के गायन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन के अतिरिक्त अन्य कोई साधन श्रीराम के सम्मुख पहुँचाने में सक्षम नहीं है। केवल भरत–चरित्र के गायन ने ही मुझ तुलसी जैसे सठ को श्रीराम के सम्मुख खड़ा कर दिया है। अस्तु इस कलियुग में यही सर्वोत्तम, सुलभ, सुसाध्यसाधन है।

सिय राम प्रेम पियूष पूरन, होत जनमु न भरत को ।
मुनिमन अगम जम नियम सम दम, विषम ब्रत आचरत को ।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन, सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि, हठि राम सनमुख करत को ।।

दोहा– भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु, अवसि होइ भव रस बिरति ।। 2/326

अयोध्या कांड की फलश्रुति में अपने चरित्रनायक श्री भरत को महिमा प्रदान करने के बाद अगले कांडों में भी उनकी चर्चा महाकवि करते हैं। अरण्यकांड में श्रीभरत का कोई योगदान न था, तो इस कांड का प्रारंभ ही श्रीभरत प्रेम की चर्चा से कर दिया।

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई । मति अनुरूप अनूप सुहाई ।।

3/1/1

किष्किंधा कांड में तो वानर गणों की कथा थी। वहॉ तो चर्चा के पात्र बालि, सुग्रीव, तारा, अंगद, हनुमान, जाम्बवंतादि थे। श्रीभरत को किष्किंधा की कथा में कैसे लाया जावे ? यह यक्ष–प्रश्न जैसा था। तो इसके समाधान के लिए श्रीराम कार्य भुला देने के अपराधी वानरराज सुग्रीव के पश्चाताप के अवसर पर उसे सान्त्वना प्रदान करते हुए श्रीराम ने भावविभोर होकर

श्रीभरत का स्मरण करते हुए कहा–

तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय मोहिं भरत जिमि भाई ।।

4/21/7

सुंदर कांड में लंका नगर की कथा थी। वहाँ तो केवल निशाचरों का निवास था। श्रीभरत को कैसे पहुँचाते ? पुनः अटपटी स्थिति थी। श्रीराम की शरणागति ग्रहण करने हेतु विभीषण चिन्तन मग्न थे। उनके चित्त में श्रीशंकर भगवान का प्रवेश होते ही भावमग्न प्रेममूर्ति श्रीभरत का दर्शन सुलभ हो गया।

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मनलाइ ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ, इन्ह नयनन्हि अब जाइ ।। 5/42।।

आगे लंका कांड में श्रीलक्ष्मण–मूर्च्छा के विपत्तिकाल में संजीवनी–बूटी का विशाल पर्वत लाते समय श्रीहनुमान को अयोध्या के आकाश–मार्ग से लाया गया, ताकि प्रेममूर्ति श्रीभरत का दर्शन प्राप्त करके वे कृत्कृत्य हो सकें।

भरत बाहु बल सील गुन, प्रभु पद प्रीति अपार ।
मन महँ जात सराहत, पुनि पुनि पवन कुमार ।। 6/60।।(ख)

उत्तरकांड का तो प्रारंभ ही श्रीभरत के भावविभोर–चिन्तन–मग्नस्वरूप–दर्शन से होता है।

भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहिं बार ।
जानि सगुन मन हरष अति, लागे करन बिचार ।। 7/प्रारंभ दोहा

निष्कर्ष यह कि गोस्वामिपाद ने दैन्यमार्गाचार्य प्रभु प्रेमी श्रीभरत को प्रत्येक कांड में प्रतिष्ठित किया है। जिस प्रकार श्रीराम के पावन चरित्र की महिमा है कि जो भी व्यक्ति प्रभु के पावन चरित्र का गायन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करता है, वह वैराग्य, जप, तप, योगसाधना आदि के बिना दृढ़ रामभक्ति प्राप्त कर परमधन्य हो जाता है। यही तो हम सबका अभिप्रेत है।

रावनारि जसु पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग ।
राम भगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग ।। 3/46(क)

ठीक इसी प्रकार श्रीभरत–चरित्र श्रवण करने मात्र से ही दुष्कर योग–साधनादि का अवलम्बन लिये बिना भव–रस से अवश्यमेव वैराग्य हो जाता है, एवं श्रीसीता–राम– पादारविंद

में प्रेमभक्ति प्राप्त हो जाती है। इस फलश्रुति में "अवसि" शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। जो प्रेम–प्राप्ति में लेशमात्र संदेह का अवकाश न रहने का बोधक है।

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय रामपद प्रेमु, अबसि होइ भवरस बिरति ।। 2/326

एक स्वरचित छप्पय में श्रीभरत–वन्दना द्वारा इस अध्याय एवं ग्रंथ का समापन–

राम प्रेम अवतार भरत अभिनंदन योगू ।
सब बिधि अहैं सराहनीय, कहते सब लोगू ।।
अवधराज को मातु मानि, त्यागे सब भोगू ।
भरत नाम जो लेत, मिटत ताके भव रोगू ।।
रामहु सुमिरत नाम उर, परम प्रीति पुलकावनी ।
चरण परयो वंदन करत, नत सुरेन्द्र रामायणी ।।

चतुर्युग के प्रमुख प्रेमाचार्यों की स्तुति

(1) प्रेमाचार्यों के परमाराध्य श्री सीताराम

गिरा अर्थ जल बीचि भाँति दोउ एकहिं तत्वा ।
दोउ चकोर दोउ चंद परस्पर अति अनुरक्ता ॥
प्रेम रूप सियराम युगल सरकार बिराजैं ।
भक्तजनन सुखदेन परिकरन सँग अति भ्राजैं ॥
जहाँ नाम संकीर्तन, प्रेममग्न जन गावहीं ।
सदा प्रकट तेहिं ठौर महँ परमानंद प्रसारहीं ॥

(2) श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण, श्रीशत्रुघन भ्रातात्रय

राम नाम निशि दिवस रटत नैनन जल ढारत ।
जय श्रीभरत कुमार जगत महँ प्रेम प्रसारत ॥
रघुपति कीर्तिपताक दंड बनि सेवालीना ।
जय श्रीलखन कुमार, रामप्रेमी जिमि मीना ॥
श्रीशत्रुघन कुमार जय, धर्म भागवत पालहीं ।
रामभक्त ही पूज्य है, इष्टदेव जिमि मानहीं ॥

(3) श्रीहनुमान जी

लैकर महँ करताल, कीर्तन निरत अधीरा ।
जय श्रीपवन कुमार, प्रेममय श्रीमहवीरा ॥
मंगलमूरति मारूतिनंदन सब सुखदाता ।
सकल अमंगलमूल निकंदन सुमति प्रदाता ॥
राम नाम अवलम्बलै, रामहुँ को वश में कियो ।
दुलरायो माँ जानकी, पुत्रप्रेम प्रभु ने दियो ॥

(4) श्रीउमामहेश्वर

राम नाम रस रसिक, जयति जय उमा महेश्वर ।
कर डमरू धरि करत, कीर्तन जय अखिलेश्वर ॥
श्रीशंकर भगवान परम वैष्णव विख्याता ।
रामभक्ति रसलीन अहर्निशि मन तहँ राता ॥
उमाशंभु आराधना, सबहिं भाँति हितकारिणी ।
राम कथा महँ लीन दोउ, प्रेमाभक्ति प्रसारिणी ॥

(5) श्रीसिद्धि लक्ष्मीनिधि समेत मैथिलकुमार

प्रेमसिंधु महँ मग्न रसहिं रस के अवतारा ।
जनक लाड़िली बन्धु, राम के अति प्रिय सारा ॥
श्रीलक्ष्मीनिधि सिद्धि कुँअरि सँग शोभाधामा ।
लघु बड़ सकल कुमार, रामप्रिय अति अभिरामा ॥
कमला तीरे कीर्तन, करत प्रेम महँलीन है।
धन्य धन्य मिथिलामही, प्रेमसनी रसधारच्वै ॥

(6) श्रीसनकादि कुमार

पंचवर्षवय सतत, जयति सनकादिकुमारा ।
हरिगुण गावत सुनत, लसत त्रैलोक्य मँझारा ॥
ब्रह्मनंद सदा लवलीना, जिन्ह कर रूपा ।
जद्यपि बहु कालीन तदपि नित बालस्वरूपा ॥
अनावरण प्रभु रूपलखि, प्रेमविभोर विराजहीं ।
श्रवत नयन प्रेमाश्रु लखि, प्रभुहूँ शीश नवावहीं ॥

(7) देवर्षि श्री नारद जी

सतत रामगुणगान निरत जय वीणाधारी ।

हे देवर्षि उदार, देहु अंतर झंकारी ।।
चारहुँ युग त्रैलोक्य, सदा हरि भक्ति जगाई ।
सुर नर असुर अधम सब कहँ भव पार लगाई ।।
हरि हर दूनहुँ के भये, प्रेमपात्र सुखदायका ।
जद्यपि लीला अटपटी, तऊ भक्तन के नायका ।।

(8) श्री शुकदेव परमहंस

सर्वभूतमय श्रीशुकाख्य मुनिवर्य उदारा ।
करत भागवत गान सतत रसमत्त अपारा ।।
जन्महिं तें वैराग्य मातु पितु कहँ नहिं जान्यो ।
परमहंस अवधूत, जिन्हहिं सब मुनि गुरू मान्यो ।।
अमर ज्ञानफल चाखि कै, प्रेमामृत वर्षण कियो ।
सुनि न मृत्युभय शेष रह, रस ही रस भीगोहियो ।।

(9) प्रेमामूर्ति श्री सुतीक्ष्ण मुनि

दिशि अरू विदिशि भुलाय, प्रेम उन्मत्त अपारा ।
जय सुतीक्ष्ण मुनिवर्य, प्रेम के जनु अवतारा ।।
पुलकावली विशाल, पनसफल जैसी शोभित ।
प्रभुहूँ भये निहाल, दशा देखत मन मोहित ।
जनुतमाल अरू कनकतरू, मिले हृदय लिपटाय कै ।
एकहिं एक न छोड़हीं, प्रेमपियास मिटाय कै ।।

(10) श्री प्रहलाद कुमार

राम नाम जप निरत, जयति प्रहलाद कुमारा ।
सँग सहपाठी सकल, तिन्हहुँ को भव से तारा ।।
पिता काल को रूप, देत नित प्रति बहुत्रासा ।

होलिकाग्नि बैठाय, जलावन कियो प्रयासा ॥
कह्यो बुलावहु राम को, होवै तेरो नाथ जित ।
खम्भ फारि नरसिंह तब, प्रकट भये उद्धार हित ॥

(11) श्री विभीषण जी

बसत निशिचरन्ह मध्य, नाम को प्रेम न छोडयो ।
जयति विभीषण राम शरण तकि जगमन मोडयो ॥
परम नीतिमय बचन, सदा दशमुखहिं सुनाये ।
त्यागेहुँ पै कल्याण चहत, सन्मार्ग दिखाये ॥
राम भजे हित तोर है, कहत कहत शरणहिं गये ।
आरतिपूर्ण प्रपत्ति लखि, सखा सदृश प्रभुकहँ भये ॥

(12) श्री उद्धव जी

ज्ञानयोग आचार्य जानि भेज्यो ब्रज पाहीं ।
लखि गोपिन को प्रेम, ज्ञान भूल्यो क्षण माहीं ॥
भे प्रेमिन सिरताज, धूलि ब्रज की सिर धारैं ।
लता कुंज बनिबे को, प्रभु सन बिनय उचारैं ।
नित बृन्दावन बास की, चाह हृदय महँ दृढ़ जगी ।
संकीर्तन महँ निरत ह्वै, प्रेमाभक्ति सुमति पगी ॥

(13) समस्त ब्रजांगनायें

जय जय जय रसमयी, परम अहलादिनि श्यामे ।
श्रीराधे अनुरागरूपिणी, अति अभिरामे ॥
श्रीललिते जय देवि, बिशाखे जय छबिशीला ।
श्याम प्रेम आचार्य, पगी सब प्रभु की लीला ॥
रतिरसमयी ब्रजांगना, सकल कृष्ण की प्रान हैं ।

सब प्रभु पर बलिहार हैं, भूलीं जग को भान हैं ॥

(14) जगद्गुरू श्रीरामानन्दाचार्य जी

जयति जगतगुरू राम तत्व दरशावन वारे ।
श्रीमद् रामानंद स्वामि, बहु खल उद्धारे ॥
जाति पाँति पूछैं नहिं कोई बचन उचारे ।
हरि को भजै सो हरि का होई सबको तारे ॥
(श्री)रामषड़ाक्षर मंत्र दै, वैष्णव धर्म सिखायऊ ।
सन्मार्गहु को बोधनहिं, तिन्हहिं सुपंथ लगायऊ ॥

(15) सपार्षद श्री चैतन्य महाप्रभु

दोउ भुजदंड उठाय, नयन जलधार बहावत ।
बिलखि बिलखि उन्मत्त भावमय हरिगुण गावत ॥
जय जय श्री चैतन्य सनातन नित्यानंदा ।
जय जय रूप अनूप जयति हरिदास अनंदा ॥
सकल गौरगण जयति जय, कलि जन के उद्धारका ।
हरी बोल हरि बोल कहि, भे पतितन के तारका ॥

(16) प्रेमोन्मत्ता श्रीमीरा जी

प्रेममयी तजि लोकलाज, हरि प्रेम अधीरा ।
राणाकुल को भय न मानि, जय जय श्रीमीरा ॥
पग महँ घुँघरू बाँधि, नृत्यमहँ मग्न सुहावति ।
लै कर महँ करताल, करत कीर्तन सुख पावति ॥
विष को प्याला पायहूँ, तेहि महँ चरणामृत लख्यो ।
साँचहुँ अमृत बनिगयो, जयति कृष्ण सबहीं कहयो ॥

(17) कलिपावनावतार श्रीतुलसीदासजी

वाल्मीकि मुनिवर्य भये त्रेतायुग पाहीं ।
रामायण रचिमहाकाव्य, सुरभाषा माहीं ॥
कलियुग महँ दुर्बोध सुपाठ्य न पावत कोई ।
जनभाषा महँ रचना करी ललित अति सोई ॥
भवसागर के पार हित, रामचरित मानस लिख्यो ।
धनिधनि तुलसीदास जय जय जय जय सबहीं कह्यो ॥

(18) आचार्य महाप्रभु श्रीरामहर्षण दास स्वामी जी

जयति जन्मना तिलकवंत, जय प्रेमागारा ।
डूबे रामसनेह बहति नयनन जल धारा ॥
नवल प्रेमरामायण रचि, मैथिल रस दीन्हो ।
रस ही रस के सिन्धु मग्न, सब रसमय कीन्हो ॥
लक्ष्मीनिधि अवतार जनु, प्रकट लख्यो सब भक्त जन ।
जय श्रीहर्षण देव गुरू, दरश प्रेम रस मग्न मन ॥

चतुर्युग के वन्दनीय प्रेमाचार्यों की आरती

आरति प्रेमाचार्य जनन की । राम प्रेमरस जगवर्द्धन की ॥
जय जय भरत लखन रिपुसूदन । प्रेममूर्ति जय मारूतिनंदन ॥
जय जय शिव गौरी गुण आकर । जयति सिद्धि लक्ष्मीनिधि नागर ॥
आरति मैथिल परिकर गन की । आरति प्रेमाचार्य जनन की ॥ 1 ॥
जयति जयति सनकादि कुमारा । जय देवर्षि कृपालु उदारा ॥
जय शुकदेव सुभक्त सुतीक्षण । जय प्रहलाद अरू जयति विभीषण ॥
दीजै भीख प्रेम के कण की । आरति प्रेमाचार्य जनन की ॥ 2 ॥
जयति जयति जय उद्धव ज्ञानी । जय गोपीजन जय रसखानी ॥
जय श्रीराधे जय रसरूपा । जय रासेश्वरि भाव अनूपा ॥
प्रेमविभोर करहु गति मन की । आरति प्रेमाचार्य जनन की ॥ 3 ॥
जयति जगत गुरू रामानंदा । जय चैतन्य गौर वपु चंदा ॥
जयति गौर गण जय श्रीमीरा । मगन प्रेम रस उज्ज्वल हीरा ॥
परमाराध्य मूर्ति जन जन की । आरति प्रेमाचार्य जनन की ॥ 4 ॥
जय जय तुलसीदास गोसाई । करिय कृपा गुरूदेव की नाई ॥
जयति चतुर्युग भक्त अनेका । राम प्रेम मय जिन्ह की टेका ॥
आरति वन्दनीय गुणगण की । आरति प्रेमाचार्य जनन की ॥ 5 ॥
जय जय श्रीगुरूदेव उदारा । जयति प्रेम के नव अवतारा ॥
दीजिय विमल भक्ति अब देवा । करउँ सदा पद पंकज सेवा ॥
करिये सुरति आपने पन की । आरति प्रेमाचार्य जनन की ॥ 6 ॥

परिशिष्ट क्र. 2

प्रेम-प्रभा-प्रकाशक श्री बाँके सिद्ध मुनिका प्रेमाख्यान

श्री चित्रकूट धाम पंचक्रोशी क्षेत्रान्तर्गत समीपवर्ती पर्वत पर श्री बाँके सिद्ध गुफा आश्रम प्रकृति द्वारा निर्मित है। चित्रकूट–प्रवास के समय वनवासी भगवान श्रीराम, श्रीसीता एवं श्री लक्ष्मण की त्रिमूर्ति ने सन्त महात्माओं तथा सेवक कोल, भिल्लों सहित पधारकर इस आश्रम को कृतार्थ किया था। तदनन्तर प्रभु–पद अंकित अवनि के चप्पे – चप्पे में विचरते हुए श्री भरत जी ने समग्र चित्रकूट क्षेत्र का दर्शन पाँच दिन में सम्पन्न किया था।

"देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ। मानस 2/312

इस परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रेमीभक्त पदयात्रा द्वारा पाँच दिन में समग्र चित्रकूट क्षेत्र की परिक्रमा करते हैं। वे प्रथम दिन श्री बाँके सिद्ध आश्रम से दर्शन प्रारंभ करते हैं। आगे इसी पर्वत पर कोटि तीर्थ, देवांगना, श्री सीतारसोई एवं श्री हनुमान–धारा तीर्थ स्थित हैं। सौभाग्य से लेखक की जन्म भूमि भी श्री बाँके सिद्ध आश्रम की तरहटी में स्थित सिद्धपुर ग्राम में है जिसका नामकरण सिद्ध बाबा के आश्रय से हुआ है।

प्रेम मूर्ति महामुनि श्री सुतीक्ष्ण जी की भांति श्री बाँके सिद्ध मुनि श्री अनुपम प्रभु –प्रेमी संत थे। हमारे आचार्य महाप्रभु ने श्री प्रेमरामायण महाकाव्य के चित्रकूट काण्ड में इन बाँके सिद्ध मुनि के विलक्षण प्रभु–प्रेम का दिग्दर्शन कराया है। सुधी पाठकों के रसास्वादनार्थ इस प्रसंग को अविकल रूप से उद्घृत किया जा रहा है।

बाँके सिद्ध नाम मुनि एका। प्रभु पद नेह निधान विवेका।

दोहा– सो नहिं आयो दरश हित, भाव भरेउमतिधीर।
कृपा सिंधु इत आय मोहिं, दरश देहिं रघुवीर।।276

रखि हैं आस मोर रघुराया। विरद गरीब निवाज सुभाया।।
भक्त हृदय कहँ जानन हारे। अवशि आइहैं गेह हमारे।।
एक दिवस भक्तन हितकारी। भाव वस्य रघुनाथ अधारी।
पूँछेउ बाँके सिद्ध मुनीशा। इहाँ बसत कोउ नयन न दीशा।।

पूरब दिशा लोग बतराये। चले दरश हित राम सुभाये।।
संग लखन सियसुठि सुकुमारी। मुनिगन कोल भिल्ल मगकारी।।
बाँके सिद्ध सुनत प्रभु आवत। प्रेम विभोर पुलकि भल भावत।।
निकस कुटी अगुआनी हेता।। चलेउ हृदय भरि शिष्य समेता।।

दोहा– नृत्यत गावत हुलसि हिय, कीर्तन सीताराम।
प्रभु स्वभाव सुमिरत मुनि, भूलत निज तन धाम।। 277।।

छंद - प्रभु प्रीति सुमिरत प्रेम पगि, भूलत दशा निज देह की।
जल, नयन ढारत हर्ष अति, सोचत हृदय गति नेह की।।
ममनाथ यज्ञ स्वरूप जो, यज्ञेश यग–भुक् श्रुति कहैं।
मन वेद वाणी पार अज, अविगत अलख इक रस रहैं।।1।।
मम गृहहिं सो जग ईश आवत, बन अतिथि धनि भाग मम।
विधि शम्भु विष्णु सेव्य जो, मम करन पूजा लेहिं नम।।
लखि श्याम सुन्दर गात शुभ, सीता लखन युत आज मैं।
धनिधन्य होइहौं लोक मधि, "हर्षण" कृपा प्रभु पाय मैं।।2।।

सो. यहि विधि करत विचार, प्रेम मगन बाँके मुनी।।
श्रवत हृदय रसधार, सुमिरि सिया रघुनाथ कहँ।।278

नेह विवश कहुँ गिर भुईं परहीं। डगमग चलत पैर लरखरहीं।
शिष्य सँभारत तिन कहँ जाहीं। मुनिवर छके प्रेम पथमाहीं।।
सात्विक भाव उदय ये सिगरे। वरषहिं सुमन देव रँग रँगरे।।
रघुपति लखे मुनीशहिं आवत। प्रेम मत्त नाचत अरुगावत।।
सहित लखन सियराम सुजाना। भये मगन लखि भक्त महाना।।
देखि रामछवि भुनिहरषाने। जाइ गिरे चरणन लिपटाने।।
तुरंत उठाय राम हिय लाई। दीन्हे नेह नीर नहवाई।।
पुनि मुनि सिया चरण गहि लीन्हीं। सकुचि मनहिं सोउ आशिष दीन्ही।।

लछिमन चरण नायपुनि माथा। चलेउ लिवाय कुटिहिं रघुनाथा।।

दोहा– पावन आश्रमआनि कर, मुनिवर अति हर्षाय।

पाद्यादिक दै सविधि पुनि, पूजेउ अश्रु बहाय।।279

रिषयन पूजा पुनि तेहि कीन्हीं। कुशल प्रश्न पूँछेउ रसभीनी।।

कोल भिल्ल आदिक सनमाने। कहि प्रिय वचन भावशुचिआने।।

कंद मूल फल अरपित कीन्हा। पाये सब समाज प्रभु लीन्हा।।

करि विश्राम बैठ सब कोई। पानि जोरि बोले मुनि सोई।।

सब विधिनाथ मोहिं अपनायो। सत्य कियो निज विरद सुहायो।।

कहँ मैं कहँ प्रभु दीनदयाला। निज प्रण प्रणतपाल प्रभु पाला।।

प्रेमाभक्ति देहुअब मोहीं। पावौं सेवा बिना बिछोही।।

कीर्तिन कथानाम तब छाकी। प्रेमिन संग सदा बुधि बाँकी।।

दोहा– और न चाहिय नाथ कछु, सब विधि करहु अकाम।

द्वार पड़े दरशन करत, तुमहिं लखौं सब गाम।।280।।

सीतासह प्रभु दूनहुँ भाई। बसे रहहु नितहियमहँ आई।।

एवंमस्तु कहि रघुकुल वीरा। बोले वचन सुखद गंभीरा।।

कस न कहहु असमुनिवर ज्ञानी। जानन योग्य लीन्ह सब जानी।।

पावन योग्य सबहिं तुम पाये। बाँके सिद्ध नाम सतभाये।

सुन–सुन यश नित पावन तोरा। दरश आसमोहिं बढ़ी अथोरा।।

पायउँ आज दरश मुनिराई। सोइ देखा जो सुना सुहाई।।

पूत भयों मुनि दरशन तोरे। आश्रम जान होय रुचि मोरे।।

प्रभु मुख सुनि मुनिवर वर बानी। बहु विधि स्तुति कीन सुहानी।

दोहा– प्रभु साथहिं निज चलन कहँ, कामद दरशन हेत।

कृपा सिन्धु लै साथ तेहिं, आये परण निकेत।।28।।

आचार्य महाप्रभु प्रणीत प्रेमरसमय गीतों से प्रपूर्ण गीति काव्य प्रेम–वल्लरी में श्री बाँके सिद्ध

मुनि के दिव्य प्रेम का दर्शन करिये।

पूँछे प्रभु राम कहाँ मुनि बाँके।

विप्र मुखहिं सुनि चले तासु ढिग, जन मन पूरण काम हैं जाके।

प्रेम विवश ऋृषि के बिनु बोले, पहुँचे सँग महँ लखन सियाके।।

नृत्यत गावत करत कीर्तन, अश्रु पुलक तन धीर न ताके।

निकस कुटी तें तुरतहिं द्विज़वर, मिल्यों प्रेम ते प्रभु कहँ आके।।

निज व्रत हरिहिं बतायो प्रमुदित, भेंट कियो नहिं नाथहिं जाके।

भक्तबछल जो होइहैं रघुवर, अइहैं मम ढिंग अपनेहिं धाके।।

सो अभिलाष पूर करि स्वामी, कियो कृतारथ मोहिं अपनाके।

सुनि सुनि वचन 'हर्ष' हँसि हिय महँ, लिये मुनिहिं प्रियतम रस छाके।। पद सं. 279

इन प्रेमोन्मत्त श्री बाँके मुनि के गुफा आश्रम की तरहटी में बसे ग्राम सिद्धपुर में जन्में इस दासानुदास पर सुप्रसिद्ध भक्त माल वक्ता एवं श्री मधुर भक्तमाल रचयिता आचार्य महाप्रभु के कृपापात्र श्री सीतारामदास (श्री स्वामीशरण उपाध्याय) जी ने इस छप्पय में कृपाप्रसाद वृष्टि कर दी है।

चित्रकूट के निकट सिद्धपुर ग्राम सुहावन।
तपोभूमि तहँ जन्म लिये विद्वान सुपावन।।
शिक्षक बने सुजान कृपा सदगुरू की पाई।
वैष्णव धर्म प्रचार कथा मानस की गाई।।
ग्रंथ समैया को सरस, रच्यो सबहिं सुखकारणी।
अति विनम्र मैथिल सखा, श्री सुरेन्द्र रामायणी।पद सं.77

———

श्री निमिवंश – वर्णन

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

जयति जनकजायाः पादपद्मं मनोज्ञं
हरिहरविधिवन्द्यं साधकानां सुसेव्यम्।
नखर निकरकान्तं मुद्रिका नूपुराद्यैः
वर मुनि हृदि मध्ये योगयोगीश भाव्यम्।।
राजाभूत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा।
निमिः परम धर्मात्मा सर्वसत्ववतां वरः।।1।।

तस्य पुत्रो मिथिर्नाम मिथिला येन निर्मिता।
प्रथमो जनको नाम जनकादप्युदावसुः।। 2।।

उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वैनन्दिवर्धनः।
नन्दिवर्धनपुत्रस्तु सुकेतुर्नाम नामतः।।3।।

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः।।4।।

बृहद्रथस्य शूरोमून्महावीरः प्रतापवान्।
महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः।।5।।

सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः।
धृष्टकेतोस्तु राजर्षेर्हर्यश्व इतिविश्रुतः।।6।।

हर्यश्वस्य मरूः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतिन्धकः।
प्रतिन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः।।7।।

पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः।
देवमीदस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः।।8।।

महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः।।
कीर्तिरातस्य राजर्षेमहारोमा व्यजायत।। 9।।

महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत।
स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजात।।10।।

ह्रस्वरोमसुतः श्रीमान् शीरध्वज इति स्मृतः।
शीरध्वज नृप धर्मात्मा जनकनामेन विख्यातः।।11।।

मिथिलाधिप श्री ह्रस्वरोमा महाराज की तीन रानियाँ थीं -

प्रथम श्रीशुभजाया महारानी के दो पुत्र -

1. श्री शीरदध्वज (जनक) 2. श्री कुशध्वज

द्वितीय श्री सदामहारानी के पाँच पुत्र -

1. श्री यशध्वज 2. श्री वीरध्वज 3. श्री रिपुतापन 4. श्री हंसध्वज 5. श्री केकिध्वज

तृतीय श्री सर्वदा महारानी के नौ पुत्र -

1. श्री शत्रुजित 2. श्री यशःशाली 3. श्री तेजःशाली 4. श्री अरिमर्दन 5. श्री विजयध्वज 6. श्री प्रतापन 7. श्री महीमंगल 8. श्री बलाकर 9. चन्द्रभानु।

(अ) श्री शीरध्वज (जनक) महाराज का विवाह विकाशा नरेश श्री भूरिमेघा महाराज जिनकी रानी श्री सुधाग्रा की दोनों पुत्रियों 1. श्री सुनमना 2. श्री कान्तिमती से सम्पन्न हुआ।

(1) श्री सुनयना के पुत्र युवराज श्री लक्ष्मीनिधि जी तथा सुपुत्री जनकराज किशोरी श्री सीता (जानकी) जी।

(2) श्री कान्तिमती के पुत्र श्री गुणनधि तथा पुत्री श्री उर्मिला जी।

(ब) श्री कुशध्वज महाराज के पुत्र श्री सुनिधि एवं श्री निधानक तथा पुत्रियां श्री मांडवी जी एवं श्री श्रुतिकीर्ति जी। युवराज श्री लक्ष्मी निधि जी का विवाह विडावल देश के

वेडाला नगर में महाराज श्रीधर की श्री सुकान्ति महारानी की सुपुत्री श्री सिद्धिकुँवरि जी के साथ हुआ। महाराज श्रीधर के दो पुत्र 1. श्री कान्तिधर 2. श्रीयशोधर तथा चार पुत्रियाँ (1) श्री सिद्धा (श्री सिद्धिकुँवारी) (2) श्रीवाणी (3) श्री उषा (4) श्री नन्दा थीं।

श्री जनकजी जी महाराज के द्वितीय पुत्र श्री गुणनिधि (श्री गुणाकर) का विवाह श्री वाणी से। श्री कुशध्वज महाराज के पुत्र श्री सुनिधि का विवाह श्री उषा से एवं श्री निधानक का विवाह श्री नन्दा से सम्पन्न हुआ।

माता श्री सदाजी के पुत्र –

1. **श्री यशध्वज** – पुत्र श्री धीरवर्ण

   पुत्रियाँ – 1. श्री सुषमा 2. श्री परमा 3. श्री स्नेहपरा।

2. **श्री वीरध्वज** – तीन पुत्र 1. श्री देवदानी 2. श्री आज्ञापार 3. श्री वंशप्रवीण

   तीन पुत्रियाँ – 1. श्री उमंगा 2. श्री तरंगा 3. श्री मोहिनी।

3. **श्री रिपुतापन** – दो पुत्र 1. श्री आज्ञाप्रवीण 2. श्री चित्रभानु, एक पुत्री श्री क्षेमा।

4. **श्री हंसध्वज** – पुत्र श्री प्रेमनिधि। पुत्री श्री शुभशीला।

5. **श्री केकिध्वज** – पुत्र श्री सेवापरा।

   दो पुत्रियाँ – 1. श्री विहारिणी 2. श्री माधुर्या।

माता श्री सर्वदा जी के नौ पुत्र –

1. **श्री शत्रुजित** – पुत्र श्री श्रृंगारनिधि एवं श्री नेहनिधि। पुत्री चारुशीला।

2. **श्री यशःशाली** – पुत्र श्री अंशपर/पुत्री श्री लक्ष्मणा।

3. **श्री तेजःशाली** – पुत्र श्री अनूपनिधि/पुत्री श्री सुलोचना।

4. **श्री अरिमर्दन** – पुत्री श्री हेमा।

5. **श्री विजयध्वज** – पुत्री श्री उदयप्रभा।

6. **श्री प्रतापन** – पुत्र श्री क्षेमनिधि/पुत्री श्री सुभगा।

7. **श्री महीमंगल** – पुत्र श्री मंगलनिधि/पुत्री श्री वरारोहा।

8. **श्री बलाकर** – पुत्र श्री शीलनिधि/पुत्री श्री पद्यगंधा।

9. **श्री चन्द्रभान** – पुत्री श्री चन्द्रकला।

उक्त विवरण के अनुसार मैथिल युवराज श्री लक्ष्मी निधि के कुल 18 भ्रातागण तथा 23 भगिनीगण हैं।

(आर्ष मैथिल ग्रन्थों से उद्‌धृत)

इस प्रेमासव का पान करने वाले इन महाभागवतों के नामों की माला का जाप करने से हमें वे रस–सिक्त करने की महती कृपा प्रदान करेंगे।

मनुआ पियो प्रेम का प्याला।
भरत लखन रिपुदमन पवनसुत, सहित राम को श्याला।।
केवट शबरि सुतीक्षण शंकर, शुक सनकादिक बाला।
नारद अरु प्रहलाद लहे जेहिं, बने विभोर विहाला।।
मिथिला अवधपुरी ब्रजवासी, अतिहिं अतृप्त रसाला।
श्री चैतन्य, सूर, श्री तुलसी, मीरा सुयश विशाला।।
सबहिं रसिक प्रिय प्रेम रसहिं के, पी पी भे मतवाला।
"हर्षण" पियहु ताहि तनि तुमहूँ, कैसो स्वाद निराला।

प्रेमवल्लरी पद सं. 12

प्रभु पादुका प्रपूजक आचार्य महाप्रभु

''हर्षण तुम्हारी आस केवल, शरण आयो ज्ञायिनी

लेखक – परिचय

गुरु प्रदत्त नाम – **कौशल किशोर दास (सुरेन्द्र कुमार रामायणी)**

पिता – स्व. श्री मिठाई लाल, प्रधानाध्यापक।

माता – स्व. श्रीमती विषया देवी

पत्नी – श्रीमती रामजियाई

जन्म तिथि – माघ शुक्ल 13 सं. 1988

जन्म स्थान – ग्राम सिद्धपुर (श्री बाँकेसिद्ध आश्रम के नीचे), जनपद – चित्रकूट धाम, कर्वी (उ.प्र.)

शरणागति दीक्षा संस्कार – फाल्गुन शुक्ल पंचमी, गुरुवार सं. 2024

शैक्षणिक योग्यता – एम. ए. (हिन्दी), एम.एड., ''साहित्य – रत्न''

शिक्षण–कार्य – प्रधानाध्यापक पूर्व मा. शाला से प्रारंभ कर शा. उच्चतर मा. वि. के प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त।

पता – सुरेन्द्र रामायणी, ''नेह–निकुंज'', उत्तरी पतेरी, पोस्ट–महदेवा,
सतना (म.प्र.) 485 002 फोन: 07672–230012

वाङ्मयी सेवा – मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, उड़ीसा, प. बंगाल, मेघालय राज्यों के नगरों के सम्मेलनों में मानस–प्रवचन।

साहित्य सृजन – विद्यार्थी जीवन से ही ''विन्ध्य–भूमि'' पत्रिका में ''बाल–कल्लोल'' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित लेखों से प्रारंभ। तदनन्तर सन् 1953 से मानस–मणि, कल्याण, अवध–संदेश, चित्रकूट–सत्संग, तुलसी–दल, विप्र–संदेश, ज्ञान–ज्योति, रामायणम्–संस्कृति, आरोग्य प्रभृति पत्रिकाओं में शताधिक लेख एवं कवितायें प्रकाशित।

पूर्व प्रकाशित ग्रंथ – पौंड़ी की श्रीसीताराम विवाहोत्सव समैया पद्धति

सम्प्रति – अध्यक्ष–सरस्वती शिशु मंदिर प्रबंध समिति, पतेरी, अध्यक्ष–हिन्दी साहित्य परिषद, पतेरी तथा संचालक–श्री रामहर्षण मंडल, सतना

मुद्रक : सतना आर्ट प्रिन्टर्स–234969